हिन्दी

शीराज़ा

कहानी-मूल्यांकन विशेषांक
(जम्मू-कश्मीर)

जे. एण्ड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

द्विमासिक

शीराज़ा

हिन्दी

अक्तूबर–नवम्बर 2007

कहानी–मूल्यांकन विशेषांक
(जम्मू–कश्मीर)

प्रमुख संपादक

डॉ. रफ़ीक़ मसूदी

संपादक

नीरू शर्मा

जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू-180 001

SHEERAZA Regd. No. : 28871/76 October-November – 07
(Hindi)

पूर्णांक : 184 वर्ष : 43 अंक : 4

★ पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक : सचिव, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001

पत्र-व्यवहार : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी जम्मू-180 001; दूरभाष : (0191)-2577643, 2579576

मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चंद, जालंधर, पंजाब-144 004
दूरभाष : (0181)-2640025

शुल्क दर : एक प्रति 10 रुपये; वार्षिक 50 रुपये
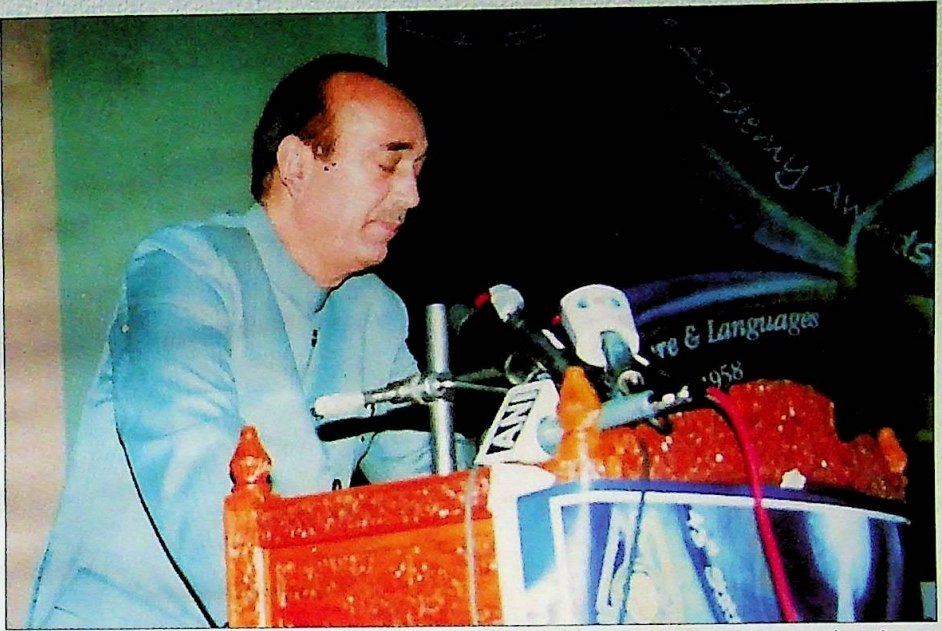
जनाब गुलाम नबी आज़ाद, अध्यक्ष जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी (मुख्यमंत्री जम्मू-कश्मीर) एस. के.आई.सी.सी. श्रीनगर में 6 सितम्बर 2007 को आयोजित सर्वश्रेष्ठ पुस्तक सम्मान समारोह में साहित्यकारों को संबोधित करते हुए।
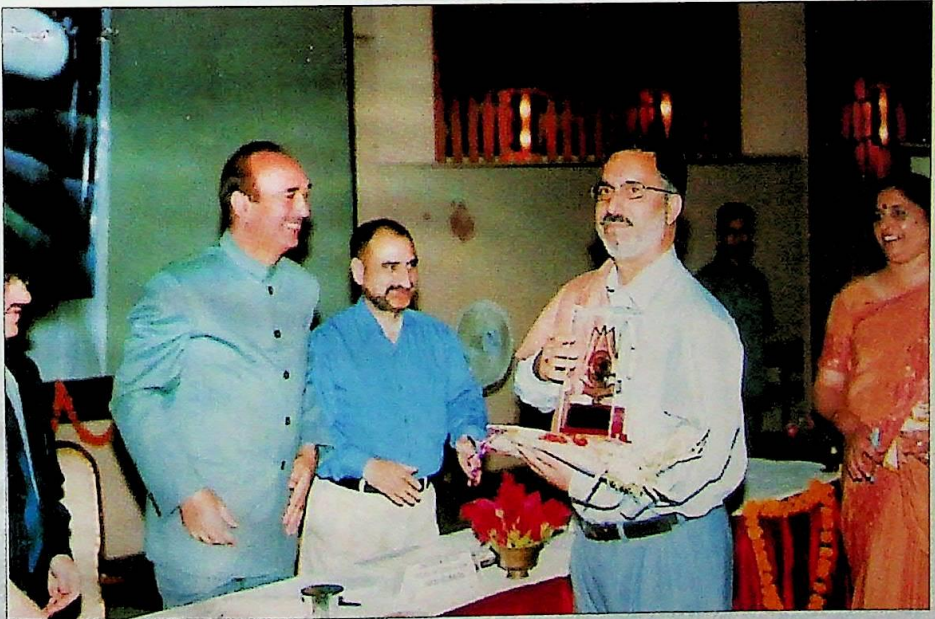
जनाब गुलाम नबी आज़ाद, अध्यक्ष जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी (मुख्यमंत्री जम्मू-कश्मीर) एवं डॉ. रफ़ीक़ मसूदी, सचिव, अकैडमी, एस. के. आई. सी. सी. श्रीनगर में आयोजित सर्वश्रेष्ठ पुस्तक सम्मान समारोह में हिन्दी के लेखक श्री महाराज कृष्ण संतोषी जी को सम्मानित करते हुए।

संपादकीय

आधुनिक कहानी में कथावस्तु की अपेक्षा तकनीकी शिल्प व्यवस्था देखने को मिलती है। कई बार तो कथावस्तु पर तकनीक थोप देने से कहानी दुर्बोध बन जाती है। पर यदि कथावस्तु में से तकनीक को विकसित करके कहानी रची जाए तो उसमें कथावस्तु और तकनीक एकीकृत होकर पाठक के समक्ष आती हैं जिसे कहानीकार की सफलता माना जाता है।

आज कहानी अपने परिवेश को बहुत सूक्ष्मता से वाणी दे रही है जिससे कहानी का परिवेश व्यापक हो रहा है, इसीलिए वह अधिक लोकप्रिय भी होती जा रही है। आजकल राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं वैचारिक शोषणों को आधार बनाकर अधिक कहानियां रची जा रही हैं। समकालीन जीवन में घटित यथार्थ और सूक्ष्म परिवर्तनों का एक प्रामाणिक दस्तावेज़ आज की कहानियों में मिलता है। इनमें अधिकतर जिज्ञासा, संवेदनात्मक अनुभूति, मर्मस्पर्शी स्थल, मनोविश्लेषणात्मक अंतर्द्वन्द्व आदि का चित्रण मिलता है। कल्पना शक्ति कहानी का प्राण है, इसी के आधार पर कहानीकार वातावरण की सृष्टि कर, परिवर्तनशील विचारों के माध्यम से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करता है। आज कहानी ने अपना कलेवर भी संकुचित कर लिया है। इसीलिए कलेवर के अनुरूप इसका नामकरण 'लघु कहानी' किया गया है।

कहानी ही साहित्य का वास्तविक स्वरूप है जो आधुनिक युग में सबसे लोकप्रिय विधा है क्योंकि सरल स्वाभाविक भाषा, सीधी अभिव्यक्ति, अनुभूति की प्रामाणिकता लेखक की विशेषताएं हैं। कहानी जब मानवीय संदर्भ को लेकर चलेगी तो उसका एक पूर्ण अस्तित्व होगा। कहानी को पढ़ते ही पाठक को मनुष्य के ऊष्मापूर्ण हृदय के स्पर्श की अनुभूति होगी।

जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकैडमी की स्वर्ण जयन्ती का शुभारंभ अक्तूबर 2007 से हो रहा है। इस अवसर पर शीराज़ा का प्रादेशिक कहानी मूल्यांकन विशेषांक (जम्मू-कश्मीर के कथा-साहित्य पर आधारित) पाठकों को सौंपते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। अकैडमी के सचिव एवं शीराज़ा के प्रमुख संपादक डॉ० रफ़ीक़ मसूदी, जो स्वयं एक जाने-माने साहित्यकार हैं, का कहना है कि राष्ट्रभाषा होने के कारण हिन्दी का क्षेत्र विस्तृत है एवं इसके पाठक अधिक हैं। इसलिए हमें रियासत में बोली जाने वाली अन्य भाषाओं यथा-डोगरी, कश्मीरी, पंजाबी, उर्दू, गोजरी, पहाड़ी एवं लद्दाखी भाषा से अनूदित साहित्य को भी प्रकाशित करना चाहिए ताकि बाहर के पाठकों को भी पता चले कि बहुभाषी प्रदेश जम्मू-कश्मीर में कैसा साहित्य रचा जा रहा है।

प्रस्तुत अंक में प्रादेशिक हिन्दी कहानी के अतिरिक्त रियासत में लिखी जा रही अन्य भाषाओं की कहानियों को उनके मूल्यांकन के साथ प्रकाशित किया गया है। आशा है आपको हमारा यह प्रयास अच्छा लगेगा और आप इस अंक को सहेजने के साथ-साथ इसकी भरपूर चर्चा भी करेंगे।

नीरू शर्मा

इस अंक में

विशेष आवरण /SPECIAL COVER

जे एण्ड के अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़ के ५० वर्ष
GOLDEN JUBILEE OF J&K ACADEMY OF ART, CULTURE & LANGUAGES

स्वर्ण-जयन्ती समारोह

उद्घाटन 25 अक्तूबर 2007

विशेष आवरण दा विमोचन माननीय श्री ए. आर किदवई (राज्यपाल हरियाणा), जनाब गुलाम नबी आज़ाद, अध्यक्ष, जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाशा अकैडमी (मुख्यमंत्री जम्मू-कश्मीर) एवं अकैडमी सचिव डॉ० रफ़ीक़ मसूदी द्वारा किया गया।

आधी नदी का सूरज

❒ डॉ० संजना कौल

कॉलेज के उन दिनों में जब लड़कियां हफ्ते में कम-से-कम दो बार क्लास गोल करके सिनेमा हॉलों में जा बैठती थीं या फिर चिनार के छतनार पेड़ों के नीचे सिर-से-सिर मिलाए अपने भोले-भाले, निष्पाप प्रेम-सम्बन्धों के किस्से फुसफुसाती थीं। उसी कॉलेज की विशाल लाइब्रेरी का एक अकेला कोना शिवानी को अपनी गोद में शरण देता था जहां से वह अपनी आख़िरी क्लास में चली जाती थी और क्लास ख़त्म होते ही बिना किसी से बात किए गेट की तरफ निकलती थी घर के लिए।

आज दौरा नहीं पड़ा। सड़क चलते गहरा इत्मीनान होता था।

घर में उसका छोटा-सा कमरा। दूर पहाड़ों की तरफ लौटता हुआ शाम का सूरज। सामने बहती हुई नदी के आधे से ज़्यादा पानी के ऊपर सुनहरा रंग बिछलने लगता था। बिना घड़ी की तरफ देखे उसे वक़्त का अन्दाज़ा हो जाता था। हाथ सामने की टेबल पर रखी भूरे रंग की शीशी की तरफ बढ़ जाते थे। पानी के साथ गले के नीचे उतरती हुई दो छोटी-छोटी गोलियां। दिन में ली जाने वाली दवाई की दूसरी डोज़। दिमाग पर छाने वाले खुमार के साथ बन्द होती हुई आंखें। तकिए पर सिर टिकाने से पहले एक बार यह ख़्याल ज़रूर आता था, 'हो सकता है आज दौरा न पड़े।'

बीमारी को शुरू हुए तब दो साल हो चुके थे।

आज अपनी ज़िंदगी का लेखा-जोखा करने बैठ जाती है तो हाथ लगते हैं। बीमारी में होम हुए ज़िन्दगी के सबसे खूबसूरत, बेशकीमती साल, खून में दौड़ती हुई दवाइयां, तेज़ दवाइयों के साइड इफ़ैक्ट से वक़्त से बहुत पहले खराब हो चुके दांत। इसके साथ यूनिवर्सिटी की दो-तीन बड़ी-बड़ी डिग्रियां और शहर के सबसे बड़े शिक्षा-संस्थान की अच्छी खासी नौकरी।

उम्र के चालीस साल पार कर चुकी है शिवानी। इनमें सिर्फ़ उम्र के सोलह साल सामान्य चिन्तामुक्त रहे हैं। उसके बाद यह बीमारी।

अक्सर उसे लगता है, ऐसा क्या है उसकी बीमारी में कि वह सबके लिए, पूरे कॉलेज के लिए और वहां काम करने वाले इतने पढ़े-लिखे लोगों के लिए तमाशे की वस्तु बन जाए? इतने लोग तो वहां बीमार रहते हैं। किसी को डायबिटीज़ है तो कोई महीने में दो-दो, तीन-तीन बार होने वाले माइग्रेन से परेशान। किसी को हड्डियों की बीमारी ने जकड़ रखा है तो कोई कमर के दर्द से बार-बार छुट्टियां लेने को मजबूर / लेकिन कोई तो आंखें फाड़-फाड़

कर उनकी तरफ नहीं देखता। फिर बीमार शिवानी को लेकर छिपी नज़रों से एक-दूसरे को देखते हुए फुसफुसाने वाले वे लोग?

मिरगी की बीमारी इतनी खराब, इतनी गन्दी है कि उसे छिपाने की ज़रूरत पड़े या फिर लोगों की तमाशाई नज़रों को झेलना पड़े?

ऐसा क्यों ?

वह बार-बार सोचती है। कुछ समझ में नहीं आता।

उस दिन उसका चित्रकार दोस्त अजय उसे रोते हुए देखकर प्यार से डांटने लगा, ''पागल हो तुम तो! यह छोकरियों वाला रोना-धोना छोड़कर ज़िन्दगी को अपने मन से जीना सीखो। दैट इज़ योर राइट। खास तौर पर लड़कियों को तो अपना हर अधिकार छीनना पड़ता है। फिर तुम तो इतनी पढ़ी-लिखी हो। ऐसे देखोगी दुनिया को और इसमें रहने वाले उन उल्लू के पट्ठों को? आंसू बहाते हुए? जानती नहीं, दोस्तोयव्स्की एपिलैप्टिक थे? पढ़ी है उनकी किताबें?''

''लोग मुझे देखते हैं।'' वह रोती रही।

''क्यों देखते हैं? तुम पढ़ी-लिखी नहीं हो? नाक, कान या आंखें नहीं हैं तुम्हारी? फिर क्यों देखते हैं? तुम तो कहती हो, लोग तुम्हारी इच्छा-शक्ति की तारीफ़ करते हैं। जानती नहीं इच्छा-शक्ति और आत्मविश्वास एक ही चीज़ होती है?'' वह उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर दुलार से सहलाने लगा, ''मैं चाहता हूं, तुम में ढेर सारा कॉन्फ़िडेंस हो। रोना-धोना तो उन लड़कियों का नसीब होता है जो कमज़ोर होती हैं, पराश्रित होती हैं या बेवकूफ़ होती हैं।''

''तुमने तो इतनी दुनिया देखी है। जानते नहीं, बीमार लड़कियों के साथ लोग किस तरह का सुलूक करते हैं? कैसी क्रूरता?'' शिवानी ने आंसू पोंछते हुए उसकी तरफ़ देखा, ''और मेरी बीमारी? जैसे मैं कोई अजूबा हूं।''

''ऐसा क्यों सोचती हो? अपने आस-पास ही देखो। तुम्हें बहुत से अच्छे लोग मिलेंगे।'' अजय ने उसके हाथ को कसकर पकड़ लिया। आवाज़ धीमी हो गई, ''और शिवानी, ऐसे मत रोया करो। तुम नहीं जानतीं। छोटे बच्चों की तकलीफ बची हुई ज़िन्दगी को और भी भारी कर देती है?''

शिवानी से उम्र में आठ-दस साल बड़ा है अजय। इसीलिए लाड़-प्यार के साथ डांट-डपट भी करता है। उसकी आस्थाओं पर शिवानी को आश्चर्य होता है। दुनिया को, इन्सान को इतनी गहराई से प्यार करने वाला आदमी कि उसके सामने बैठकर जो उसकी बातें सुने, इस संसार के कण-कण को कलेजे से लगाने की चाहत से भर उठे। ऐसा है अजय। शिवानी का सबसे प्यारा दोस्त। उसका साथ शिवानी को निष्ठा से भर देता है। मां के बाद अजय इस उम्र में शिवानी को अपने सबसे क़रीब लगता है।

''तुम शान से, अपनी मर्ज़ी से नहीं जी सकती?'' शिवानी ने एक बार अपनी मौत की कामना की तो वह लड़ पड़ा।

''यह भी कोई ज़िन्दगी है? रोज़ दवाइयों की नौ-दस गोलियां गटक जाओ। इसके बाद भी कोई ठिकाना नहीं, कब दौरा पड़े। कब सड़क पर गिर पड़ूं और सामने से आती हुई बस कुचल जाए। ऊपर से लोगों की नज़रें। उनके सवाल-जवाब।''

''जो लोग ऐसा करते हैं, उनसे कहना सीखो कि आप भाड़ में जाइए। मुझे आपकी ज़रूरत नहीं है। और याद रखो लोगों की नज़रों के डर से खून सुखाती रहोगी, उतना ही वो सिर पर सवार हो जाएंगे। ज़िन्दगी की आंखों में आंखें डालकर उसे चुनौती देना सीखो। बहुत-सी उलझनें सुलझ जाएंगी।'' वह एक स्वर में बोलता गया।

नहीं समझता अजय कि क्या बीत जाती है तब उसके ऊपर जब करुणा और संवेदना के मुलम्मे के भीतर से ऐसी तीखी, ऐसी बींधने वाली बेरहमी झांकने लगती है कि उसका अन्दर-बाहर अंधेरे की मोटी-मोटी पर्तों से भर जाता है। लगता है, यह किस अन्धे कुएं में धकेल दिया गया है उसे, जहां से बाहर निकलने की कोई कोशिश कारगर नहीं हो पाती।

अजय की बात का उसने कोई जवाब नहीं दिया, न अपनी आंखों को पोंछने की कोशिश की।

''और अब तो तुम पहले से काफ़ी अच्छी हो गई हो। नहीं तो क्लास में इतने धमाकेदार लैक्चर कैसे देती हो?''

अजय का मन रखने के लिए वह हल्के से मुस्करा दी।

लेकिन यह कौन-सा ठीक होना हुआ? जवानी की दहलीज़ पर अभी ठीक से पांव भी नहीं रखा था कि स्नायुतन्त्र को मिला यह भयानक अभिशाप। सड़कों पर गिरने के बाद कई-कई बार घायल होता हुआ जिस्म। सीढ़ियों से गिरने के बाद टूटने वाले दांत। थकी हुई आत्मा और बीमारी के हमले से टूटा-बिखरा शरीर।

करीब पच्चीस साल से चल रहे इलाज से इतना ज़रूर हुआ है कि अब बेहोश होकर सड़कों पर नहीं गिर पड़ती। लेकिन हर दिन घर-बाहर जो जंग उसे लड़नी पड़ती है उसकी कहानी किसे सुनाए?

कॉलेज में हो रहे डिबेट में उसे दूसरा जज बनाया गया था। सुनते-सुनते और नम्बर देते-देते अचानक उसकी तबीयत खराब होने लगी। स्नायुओं का तनाव। विकृत होता हुआ चेहरा। दायां हाथ मशीन की तरह मुंह पर आ ठहरा था और मुंह से बहते हुए लार को पोंछने लगा था। बग़ल की कुर्सी पर बैठे अंग्रेज़ी के प्रोफ़ैसर फुसफुसाए, ''शिवानी, तबीयत ख़राब हो तो जाओ। हम संभाल लेंगे।''

वह कुर्सी से उठ नहीं पाई। कहीं गिर पड़ी तो? कलम उठा ली उन्हें आंख के इशारे से समझा दिया। लड़खड़ाती हुई ज़बान से भला क्या जवाब देती?

भीतर जिस्म का एक-एक रेशा चस्त।

घर लौट कर बिना कुछ खाए-पिए बांह का तकिया बना कर सो गई। नींद खुली तो उठकर खिड़की के पास जाकर बैठ गई। नदी के आख़िरी छोर पर डूबते हुए दिन का सुनहरापन।

आधी नदी का सूरज।

वह सिहर उठी। क्या उसके अन्दर से भी कुछ चला जा रहा है? खत्म हो रहा है? सुन्न हो रहा है? दवाइयों से सोया पड़ा स्नायुतन्त्र। क्या बनेगा आख़िर उसका?

उसने इस विचार को परे झटक दिया। आजकल शुक्ल-पक्ष था और उसे नदी की रजतवर्णी तरंगों को अपनी आंखों में भर लेना बहुत भला लगता था। रात अभी बाकी थी और उसे कल के लिए अपने आपको तैयार करना था। अगला दिन ठीक-ठाक भी तो जा सकता है। पूरी नदी का सूरज।

मां की तरह दुलार से उसे सहलाती हुई चांदनी रात। रूपहली निस्तब्धता से बरसता हुआ शान्त रस। खोह से बाहर निकलती हुई शिवानी। उंह! ज़रूरी तो नहीं कि कल दौरा पड़े ही।

डिबेट में तबीयत ख़राब होने के अगले दिन कंजी आंखों वाली आयशा उसकी बगल में आकर बैठ गई, "कल तुम्हारी तबीयत कितनी ख़राब हो गई थी। अब क्या हाल है?"

"पहले से ठीक हूं।" शिवानी का नपा-तुला जवाब।

"पूरा कॉलेज था वहां। लोग फिर तरह-तरह की बातें बनाते हैं। इतने पढ़े-लिखे हैं, ज़हनियत वैसी-की-वैसी।"

"सही बात है।" शिवानी ने बात को टालने की मुद्रा में कहा।

"मुझे बहुत बुरा लगा, शिवानी। इलाज किसका करवा रही हो?" आयशा के पतले होंठ करुणा से लटक गए। शिवानी को उसकी आंखें देखकर मुसमरे उस शेर की याद आ गई जिसकी आंखों की जगह शायद कंचे फिट किए गए थे। आयशा की आंखों में वैसी ही संवेदनशून्य चमक थी।

"बहुत डर लगता है। सड़क चलते कहीं ऐसा कुछ हुआ तो?" आयशा ने आंखें फैलाकर कहा।

"अभी तक तो कुछ भी नहीं हुआ। आगे भी नहीं होगा।" शिवानी मुस्कुराई, "छोटे-छोटे डर तुम्हें बहुत सताते हैं।"

वह भूली नहीं थी। अभी छः महीने भी नहीं हुए, आयशा के साथ लाइब्रेरी से लौटते हुए उसे चक्कर आ गया था। चेहरा विकृत हो गया था, लेकिन उसने भीतर की पूरी ताकत को समेटते हुए पास वाले खम्भे को थाम लिया था। कुछ मिनट बाद पर्स से दवाई निकाल कर निगलते हुए देखा, आस-पास कोई नहीं था। आयशा इस हालत में उसे अकेली छोड़ कर चली गई? कहीं वह मार्बल के फर्श पर गिर पड़ती तो?

अगले दिन वह हालचाल पूछने पास आ बैठी।

''तुम कल कहां चली गई थी?'' शिवानी ने कड़वाहट को भरसक दबाते हुए पूछा।

''मुझे डर लग रहा था।'' आयशा का चेहरा भावहीन था।

''किस बात से?''

''तुम्हारी तबीयत बहुत खराब हो गई थी। सुना तो मैंने कई बार था, हालत तुम्हारी पहली बार देखी। वहां खड़ा नहीं रहा गया।''

''बड़ा नाज़ुक है तुम्हारा दिल?'' शिवानी ने मीठा-सा व्यंग्य किया, ''कहीं मुझ से भी ख़राब हालत वाले लोगों से आमना-सामना हो तो क्या करोगी?''

''बहरहाल! अब जल्दी से शादी कर डालो।'' आयशा ने बात बदल डाली, ''बाद में उम्र निकल जाएगी तो मैच मिलना मुश्किल होगा। यहां तो लोग अभी से कहने लगे हैं कि बीमारी की वजह से ही शिवानी शादी से चिढ़ जाती है। फिर बात और बढ़ जाएगी।''

''आयशा बेगम, शिवानी की आवाज़ तेज़ हो गई, ''बात बढ़ाने में कौन-सी बहुत बड़ी दिमागी कसरत करनी पड़ती है? वह भी लड़कियों के मामले में और ऊपर से लड़की जब बीमारी से लड़ रही हो? यहां तो हालत यह है कि लड़की किसी एक्सीडेंट में ज़ख्मी हो जाए, जिस्म से खून निकलने लगे, लोग यह कहेंगे कि एबार्शन हुआ था, वह भी शादी से पहले लोग बातें बनाते हैं, बनाने दो। अपना क्या जाता है।''

''तुमने तो मेरी बात का बुरा मान लिया। तुम्हें नाराज़ करने का मेरा इरादा नहीं था।'' आयशा ने आवाज़ को रूआंसी बनाने की कोशिश की।

आदमखोर संवेदनाएं। शिवानी ने मन-ही-मन सोचा।

''मैं इतनी बदतमीज़ नहीं हूं, शिवानी। तुम्हें बुरा नहीं मानना चाहिए।'' आयशा कुछ ऐसे बोली जैसे शिवानी से शिष्टाचार का सर्टिफिकेट हासिल करना निहायत ज़रूरी हो।

प्रिंसीपल ने बुलवा भेजा तो पिंड छूट गया।

समाजशास्त्र पढ़ाने वाली सलमा को एक दिन कॉलेज की लाइब्रेरी में आयशा की बातें सुनाते-सुनाते वह फूट-फूट कर रोने लगी।

"सलमा, मुझे मर जाना चाहिए। मुझे खुदकुशी कर लेनी चाहिए। नहीं तो लोग मुझे पागल कर देंगे।" उसने मोटी-मोटी किताबों को एक तरफ सरका दिया और दोनों बांहों को मेज़ पर टिकाकर उनमें अपना गीला चेहरा छिपा लिया।

सलमा को बहुत तेज़-मिज़ाज और मुंहफट माना जाता था। कई पुरुष प्रोफैसर उसे दूर से सलाम करते थे। महिलाएं मुंह पर तारीफ़ों के पुल बांधती थी। पीठ पीछे उसकी बुराई करते नहीं थकती थीं। शिवानी को वह बहुत सख्त किस्म की औरत लगती थी। गुस्सैल, अपनी भावुकता को कमज़ोरी समझकर हर बात छिपाने वाली सलमा।

सलमा ने शिवानी का चेहरा ज़बरदस्ती उसकी बांहों से अलग किया और रुमाल से उसके आंसू पोंछने लगी, "शिवानी, मेरी बात गौर से सुनना।"

वह चुपचाप मेज़ की सतह को देखती रही।

"मैंने तुम्हें एक बार अपने एबनॉर्मल बेटे के बारे में बताया था।"

सलमा की पहली शादी से पैदा हुआ एबनॉर्मल बच्चा जो दिल्ली के किसी होम में पल रहा था। दूसरी शादी रचाने के बाद बाप ने कभी बेटे की सुध नहीं ली। खुद सलमा साल में दो बार कॉलेज से छुट्टी लेकर उससे मिलने चली जाती थी। वही बच्चा अब बीस बाईस साल की उम्र का हो गया था जो न मां को पहचानता था, न बोल पाता था। इसी उम्र में जिसके आधे से ज़्यादा दांत गिर गए थे, जिसके लिए डॉक्टरों ने यह कहा था कि पच्चीस तीस साल की उम्र तक आते-आते उसकी मौत हो जाएगी।

"शिवानी, सोचो तो! वह मेरा सगा बेटा है। मेरे कलेजे का टुकड़ा। लेकिन मैं उसे ज़िन्दगी की दुआ भी नहीं दे सकती। मैं ज़रा सख़्त जान हूं शिवानी। नहीं तो उस मां पर क्या बीतती होगी। जिसे बेटे की क़ब्र के लिए ज़मीन का एक टुकड़ा खरीद कर रखने की ज़रूरत अभी से महसूस हो?"

शिवानी सिर झुकाए सुनती रही। सलमा के मुंह से फूटती हुई व्यथा उसकी अपनी बेबसी, अपनी पीड़ाओं में घुलमिल गई।

"खुदा न करे, तुम्हारे साथ तो ऐसा कुछ भी नहीं है। फिर रोने की क्या बात?

जब भी तबीयत घबराए, मेरे पास आकर बैठो। यास्मीन और सायरा तुम्हें कितना प्यार करती हैं, उनके पास जाओ। अपने-आप समझ जाओगी, कितने लोगों को तुम्हारी ज़रूरत है।" सलमा ने कलम डायरी के ऊपर रख दी।

"अच्छा, तुम अपना काम करो। तुम्हारा बहुत वक़्त बरबाद किया।" थोड़ी देर बाद शिवानी ने उठते हुए कहा।

"कोई वक़्त बरबाद नहीं हुआ।" सलमा ने प्यार से उसका चेहरा अपनी हथेली में भर लिया, "मिलती रहना और याद रखना कि रोना-धोना अपने आपको बेचारा बनाना है।"

लाइब्रेरी के दूसरे सैक्शन में जाकर उसने किताबें नहीं देखीं, कुर्सी खींच कर खिड़की के पास बैठ गई। यास्मीन और सायरा के भोले-भाले हंसमुख चेहरे आंखों में तैर गए। उसके लहरें लेते हुए, लड़खड़ाते शरीर को संभालती हुई सायरा, टेढ़ी हुई बांह को पकड़ कर उसके हाथ से चाय का प्याला थामती हुई यास्मीन, चक्कर आ जाने पर उसे सोफे पर लिटाकर अपने हाथों से उसकी चप्पलें उतारती हुई सायरा, चाय गिर जाने के बाद उसके कपड़े साफ़ करती हुई यास्मीन। उसके रोने पर उसका ध्यान किसी और बात की तरफ फेरने वाली, क्लैसिकल गालियों के मतलब समझा-समझा कर उसे हंसाने की कोशिश करने वाली वे दोनों।

उन दोनों के साथ याद आया, उसके शहर से सैंकड़ों मील दूर रहने वाला अजय। उसकी बीमारी से मन-ही-मन परेशान रहने वाला, उसे छोटी बच्ची की तरह प्यार करने वाला अजय।

एक हफ्ते से ज़्यादा बीत गया था और दो-एक दिन में उसकी चिट्ठी आने वाली थी। उसे समझाती-सहलाती हुई चिट्ठियां कि ज़िन्दगी कोई डिपार्टमेंट्टल स्टोर नहीं है कि आदमी जो चाहे उससे हासिल कर ले। आधे-अधूरेपन को मुंह चिढ़ाकर भी ज़िन्दा रह सकता है आदमी और ऐसा दम-ख़म शिवानी में भी है। वह समझ तो ले।

और याद आई, दिन-रात उसे अपने आशीर्वादों से नहलाती हुई मां। उसे कुछ नहीं चाहिए। एक उसकी अच्छी सेहत के सिवा। उसकी शादी भी नहीं। कोई चिन्ता नहीं है उसे उसके कुंवारी रहने की। उसकी बेटी को बीमारी से मुक्ति मिले, व्यथाएं दूर हों। बस। उसे सब कुछ मिल जाएगा।

उसे प्यार करने वाले ये लोग जिनसे दुनिया बहुत-बहुत खूबसूरत लगती थी। अकेलेपन के यातनाकक्ष की दीवारें अपने-आप ढह जातीं थीं और बीमारी के साथ ज़िन्दा रहना बहुत मामूली-सी बात लगती थी और फिर .... अमावस के काले रंग को परे धकेल कर, उसे लात मारकर शिवानी चांदनी रातों के अमृत को घूंट-घूंट पीने लगती थी।

एक बार उसने मां से बात छेड़ दी, "तुम्हारे तीन बच्चे तो काफी थे, अम्मा। एक मैं न पैदा होती तो दुनिया का कारोबार रुक नहीं जाता। मैंने तुम्हें सिर्फ परेशान किया है। मेरी वजह से बातें सुननी पड़ती हैं लोगों की।"

बड़ी बेटी के कुंवारी रहने पर लोगों की बातें शुरू हो गई थीं।

और उसकी बेहद धैर्यशील मां रोने लगी थी, "सब ठीक हो जाएगा, भगवान सब का है। और अपने बच्चों से कोई मां परेशान होती है? याद नहीं, उस दिन बेटे के खो जाने से फूफी पर क्या बीत रही थी?"

उनके पड़ोस में रहने वाली ख़ालिदा फूफी का मन्द-बुद्धि बेटा एक बार बिना किसी को कुछ बताए कहीं चला गया था। फूफी का विलाप सुन कर मुहल्ले के लोगों के दिल भर आते थे।

उसके कुंवारी रहने पर मां क्या सोचती है, वह नहीं जानना चाहती। लेकिन खुद उसने अपनी शादी पर सोचना छोड़ दिया है। घबराहट होती है प्रेम या विवाह जैसे किसी भी रिश्ते से। पर क्या हो गया था उस बार? कितनी आहत हुई थी, चिंता की उस एक बात से कि रो भी नहीं पाई थी।

उससे छोटी शादीशुदा बहन ने ही बात शुरू की थी, "कितने मुंहफट हैं बाबू जी। ऐसा आदमी पिता कहलाने के लायक नहीं हो सकता।"

"बात क्या है?" शिवानी की समझ में कुछ नहीं आया।

"मैंने तुम्हारी शादी की बात की थी कि क्या सोचा है। कहने लगे, वह तो बीमार रहती है, उसके साथ शादी कौन करेगा? करेगा भी तो छः-सात महीने रहने देगा, उसके बाद तलाक दे डालेगा।"

बात सही थी, लेकिन सुनकर शिवानी को लगा था, मन-ही-मन कठिन, पस्त करने वाली लड़ाइयां लड़ने के बाद जो शक्ति उसने अर्जित की थी, जो विश्वास उसने कमा लिया था कि कर सकेंगे उसके बीमार स्नायु दुनिया का मुकाबला। लोगों की क्रूर, नोच डालने वाली नज़रों का सामना, वह सब बर्फ की तरह पिघल कर बह गया। कुछ भी बाकी नहीं रहा उसके पास।

उसके हिस्से में आया हुआ आधी नदी का अस्त होता हुआ सूरज भी नहीं।

सिर्फ आस-पास को, उसके अन्दर-बाहर को निगलती हुई रात की कालिख।

उसने पिता से एक दूरी तय कर ली। पता नहीं क्यों लगता रहा कि इससे कम चोट पहुंचाने वाली भाषा में भी वे यह सब समझा सकते थे।

"अब तुम्हें कोई रास आए और तुम किसी को रास आओ तो बात बने।" दो-ढाई साल पहले अजय ने दबे स्वर में उसकी शादी की बात शुरू की थी। सुधीर को लेकर जो भावनात्मक हादसा शिवानी को झेलना पड़ा था, उसकी भनक तक उसने किसी को नहीं लगने दी थी। अजय को भी नहीं।

"बस करो, अजय, मैं अकेली क्यों नहीं रह सकती?" उसके बिफर उठने से अजय भौचक्का रह गया था। सुधीर के साथ पूरे तीन साल की घनिष्ठता के टूट जाने के बाद अपमान और व्यर्थता बोध को अकेली चुपचाप पीती हुई शिवानी एक और स्तर पर कैसी मानसिक बीमारी से दो-दो हाथ कर रही थी, अजय कभी नहीं जान पाया।

रातों की उड़ी हुई नींद। हर तरह के काम से उचटा हुआ मन। दिल की जगह जैसे किसी ने ईंटों की बोरी उलट दी हो। ज़रा-सी ऊंची आवाज़ से बुरी तरह चौंक उठना। उसके उन दिनों के अस्वाभाविक कार्यकलाप को अजय ने पता नहीं कितना समझा था, एक बार उसके पांव पर हल्के से हथेली ज़रूर मारी थी, जिस पर चौंक उठने के बाद शिवानी का हाथ दिल पर चला गया था।

अजय उसे देखता रहा, ''मैं डॉक्टर नहीं हूं, शिवानी। लेकिन इतना कह सकता हूं कि यह इस कदर छोटी-सी बात पर चौंक उठने की आदत तुम्हारे लिए अच्छी नहीं है। इसे दूर करने की कोशिश करो।''

उसने फीकी मुस्कुराहट से सिर हिला दिया।

''क्या हुआ है? मुझे नहीं बताओगी?'' अजय ने फिर कुरेदा।

''अब क्या होने को रहता है? जो होना था, वह तो बरसों पहले हो चुका। अड़तीस साल की हो गई हूं और देख रहे हो, चल रहीं हूं। आत्महत्या नहीं की।''

''तुम्हारी ज़बान पर यह शब्द आना ही नहीं चाहिए। यू नो, यू आर माई फ्रैण्ड एण्ड ए वैरी डियर गर्ल टु मी।'' भावुक हो जाने पर अजय कई बार अंग्रेज़ी बोलने लगता था, ''मैं समझ सकता हूं, कुछ बुरा ज़रूर घट गया है तुम्हारे साथ, जो तुम मुझसे, सबसे छिपा रही हो। तुम्हारी आंखों के नीचे काले दायरे बन गए हैं। चेहरे पर मुर्दनी छाई रहती है। बताओ, शिवानी! क्या हुआ है? तबीयत हल्की हो जाएगी।''

एक बार मन में आया, सब कुछ बता दे। शायद अन्दर उमड़ता-घुमड़ता धुआं बाहर निकले और दिल के ऊपर पड़ा हुआ ईंटों का बोरा हट जाए। लेकिन शर्म और अभिमान ने ज़ुबान को रोक लिया। पता नहीं क्या समझ बैठे अजय, वह उसके सामने सिर कैसे उठा सकेगी?

सब कुछ बता देने के बाद कोई खास बात नहीं है, अजय। मुझ पर भरोसा रखो। मुझे अभी बहुत देर तक जीना है। आत्महत्या की बात तो इसलिए करती हूं कि ज़रा देखूं कितनी गहरी है तुम्हारी दोस्ती। मेरे मरने की बात यह सब सुनकर रो पड़ते हो या नहीं। तुम पर लानत है कि तुम्हारी आंख से कभी झूठ-मूठ भी एक बूंद आंसू नहीं टपका। उसने बात को हंसी में उड़ा दिया।

अजय मुस्कुराया, ''लड़कियों वाली बातें।''

''क्यों, अजय? मेरी आत्महत्या से बहुत डर लगता है?'' शिवानी ने शरारत से कहा।

''पहले डरता था। अब नहीं।''

''क्यों? अब क्यों नहीं मर सकती मैं?''

"तुम पर विश्वास है। इस बात को तुम कभी नहीं भूलोगी कि इस दुनिया में ऐसे लोग भी रहते हैं जो बहुत-सा प्यार कर सकते हैं और ...... और जिनके पास खरी दोस्ती है। तुम इस बात को हमेशा याद रखोगी और आत्महत्या कभी नहीं करोगी।" शिवानी बहुत देर तक चुपचाप उसकी बातों पर सोचती रही।

कॉलेज में दस दिन की छुट्टियां हो गई तो शिवानी अजय के शहर पहुंच गई। शायद उदासी मिट जाए और घबराहट दूर हो जाए।

अगले दिन नाश्ता करते हुए अजय छेड़ने के मूड़ में आ गया, "शिवानी, अगर मैं तुमसे प्यार करने लगा होता तो?"

"क्या अन्दाज़ है। टोह लेने वाला।" वह मुस्कुराई।

अजय ने ठहाका लगाया, "अरे, जब टोह लेने की उम्र थी, तब नहीं ली तो अब क्या लूंगा। हां, छेड़ने की कोई उम्र नहीं होती और अगर होती भी है तो अपने केस में ऐसा नहीं होने दूंगा।"

"इसी लिए तो तुम मुझे अच्छे लगते हो। तुम बीवी को धोखा नहीं देते।" शिवानी ने जोड़ा।

ऐसा खुलापन और ऐसी आत्मीयता! और दोस्ती सिर्फ छः या सात साल पुरानी।

और पन्द्रह बीस साल पुरानी उस दोस्ती को क्या हो गया था जिसे तोड़ देने का, खत्म कर देने का शिवानी को कभी अफसोस नहीं हुआ बल्कि जब भी याद आई, उसे घिन छूटती रही?

क्या समझ कर, क्या सोचकर राजेश ने उसके लिए बांहें फैलाई थीं?

जम्मू में बरसों तक उसके कॉलेज में, उसी के विभाग में पढ़ाने के बाद राजेश का तबादला एक कॉलेज में हो गया था। फिर पता नहीं कैसी रहस्यात्मक छलांग लगाकर वह यूनिवर्सिटी पहुंच गया था। उस बार शिवानी यूनिवर्सिटी में तीन हफ़्ते का रिफ्रैशर कोर्स कर रही थी। कई बार खाना वहीं राजेश के क्वाटर में होता था। उसका इकलौता बेटा बाहर किसी इंजीनियरिंग कॉलेज में पढ़ रहा था। बीवी अपनी मां की मृत्यु के बाद पिछले एक-डेढ़ महीने से मायके में थी।

खाना खाते-खाते और उसके बाद बातें होती रहीं। एकाएक राजेश उसकी सेहत पर आ गया, "अब तुम्हारी तबीयत कैसी रहती है?"

"पहले से अच्छी हूं।" सबके सामने अपनी खराब सेहत का रोना शिवानी को अच्छा नहीं लगता था।

''फिर शादी कर लो जल्दी से।'' वह मुस्कुराया।

''शादी मैं नहीं कर सकती। करूं भी तो वह कभी भी, किसी भी समय टूट सकती है। मेरी बीमारी को लेकर हमारे यहां का कानून यही कहता है।'' शिवानी ने उसे घूरते हुए कहा।

''शादी न करे, प्रेम तो कर ही सकता है आदमी।'' राजेश ने हाथ बढ़ाकर एक मोटी किताब उठा ली और सिर झुका कर उसके पन्ने पलटने लगा।

''कोई ज़रूरी तो नहीं।'' शिवानी ने बात को खत्म करने की टोन में कहा।

''ज़रूरी है वरना ज़िन्दगी बहुत गड़बड़ हो जाएगी।'' राजेश ने किताब बन्द करके अपने दाईं तरफ की छोटी-सी मेज़ पर रख दी।

''कुछ नहीं होता। आदमी में आस्था हो तो वह हर तरह से, किसी भी हालत में ज़िन्दा रह सकता है।'' शिवानी सीधे उसकी आंखों में देखने लगी।

''अच्छा, राजेश,'' अगले ही पल वह खड़ी हो गई, ''मुझे देर हो रही है। अब अगली मुलाकात पता नहीं कब होगी।'' उसने दरवाज़ा खोला और बाहर निकल गई।

''सुनो, शिवानी।'' राजेश दरवाज़े पर खड़ा हो गया था, ''दो मिनट को अन्दर आ जाओ।''

शिवानी ने मुड़ कर उसकी तरफ देखा और एक मिनट में फैसला कर लिया, ''चलो।''

ड्राईंग-रूम में लौट कर वह सोफे पर बैठ गया और बांहें फैला दीं, ''आओ।''

''क्या हो गया, राजेश?'' शिवानी का स्वर शान्त था।

''होना क्या है? आओ न।'' उसकी बांहें अब भी फैली हुई थीं।

''ठीक से बैठो, राजेश और मेरी बात सुनो।'' शिवानी काले रंग की गोल टेबल पर बैठ गई, ''मैं नहीं जानती थी तुम इतने खोखले हो।''

अगले ही पल राजेश की फैली हुई बांहें गिर गईं।

''डेढ़-दो साल पहले जब तुम जम्मू में थे, मैंने तुम्हें तीन-चार चिट्ठियां लिखी थीं। तुमने कभी जवाब नहीं दिया। यह भी नहीं सोचा कि चिट्ठी का जवाब देना शिष्टाचार कहलाता है। तुम यूनिवर्सिटी में पढ़ाने लगे, मैंने दो बार तुम्हें फोन किया। दोनों बार तुम्हारा यह जवाब कि अभी मैं व्यस्त हूं, अगली बार बात करेंगे। फिर आज तुमने बांहें कैसे फैला दीं? किस अधिकार से?''

"कैसी बातें करती हो, शिवानी? इतने सालों की दोस्ती में हम क्या गले भी नही मिल सकते?" उसने पैंतरा बदला।

"बन्द कमरे में मैं दोस्तों से गले नहीं मिलती।" शिवानी उठकर दरवाज़े की तरफ बढ़ गई। दरवाज़ा ज़ोर से बन्द कर दिया और सीढ़ियां उतर गई।

अजय को सब कुछ बताने के बाद वह खुश हो गया, "तुमने बहुत अच्छा किया। आई एम प्राउड ऑफ़ यू।"

इस बार अजय उसे अपने शहर का सूर्यास्त दिखाने ले गया। क्षितिज में तेज़ी से डूबता हुआ सूरज का सिन्दूरी गोला। डूबते हुए सूरज के सौन्दर्य से यह उसका पहला साक्षात्कार था।

घर लौट कर वह आरामकुर्सी पर पसर गई, "अजय, अब तो जब भी तुम्हारे शहर में आऊंगी, डूबते हुए सूरज को देखने ज़रूर जाऊंगी। ऐसा दृश्य मैंने पहली बार देखा है।"

"तुम्हारा जब भी जी चाहे, चली आना। दुनिया बहुत खूबसूरत है, शिवानी। यहां बहुत से अच्छे लोग रहते हैं और तुम करती हो मरने की बातें।"

अजय की इस बात पर वह सिर्फ मुस्कुरा दी।

रात का खाना खाने के बाद वह ऊपर छत पर चली गई। अंधेरे में अजय का शहर बिजली के बल्बों से जगमग कर रहा था। वह पास वाले मोढ़े पर बैठ गई।

उस जगमगाहट के बीच उसे वे सब याद आते रहे जो उसे बहुत-बहुत प्यार करते थे। यास्मीन, सलमा और सायरा। उसकी मां जो इसी एक उम्मीद के साथ जी रही थी कि उसकी बेटी एक दिन पूरी तरह ठीक हो जाएगी।

उसका बेहद प्यारा दोस्त अजय अपने स्टूडियो में बैठा शायद अभी तक पेन्टिंग कर रहा था।

उसके चारों तरफ उमड़ता रोशनी का सैलाब, आकाश में चमकते असंख्य तारे, डूबते सूरज का अद्भुत सौन्दर्य – सोने से पहले वह इन सब को अपने अन्दर जज़्ब कर लेना चाहती थी।

आत्महत्या का विचार उसके मन में कहीं नहीं था।

ooo

कसाईबाड़ा

❑ नरेश कुमार 'उदास'*

उसकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। उसके स्वर में याचनापूर्ण मिमियाहट थी। "मुझे बाहर मत निकालो ssss सासू sssss माँ।" कहते-कहते उसने झट अपनी सास के कदम पकड़ लिए थे। "मैं तुम्हारी बेटी समान हूँ। मेरा पति, मेरा घर, मुझ से मत छीनिए।" उसके स्वर में व्याप्त आर्तनाद पत्थर दिल को भी पिघला देने वाला था, किन्तु कठोर निर्दयी सास ने कल्पना को केशों से पकड़कर खींचते हुए बाहर धकेल कर झट भीतर से कुण्डी लगा डाली।

बाहर अन्धेरे में कल्पना बिलख उठी। उसकी स्थिति दयनीय एवं हास्यास्पद बन आई थी। वह दरवाज़े के साथ पीठ लगाकर मन भरकर रोती रही। जब उसका गला सूखने लगा तो उसने पुनः विनती कर डाली। "सासू ssss माँ, दरवाज़ा खोल दो।" लेकिन उसकी फरियाद अनसुनी कर दी गई। उसका वैवाहिक जीवन नर्क बनकर रह गया था। उसकी ऐसी दुर्गति होगी, उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। इस बिखराव की मुख्य सूत्रधार उसकी जेठानी तथा उसकी सास हैं। रात्रि की बेला में वह मुँह सिर लपेटे मानव छाया न लगकर मात्र गठरी लग रही थी। वह क्या करे? ऐसे कब तक बैठी रहेगी? उसने साहस कर दरवाजा धीमे से खटखटाया था। "सासू sssss माँ, मुझे भीतर आने दें। क्यों मेरा तमाशा बना रहे हो। मुझ अभागी पर रहम करो।" लेकिन भीतर कोई हलचल नहीं हुई। रात्रि की कालिमा उसके भीतर भय भरने लगी। समीप ही गली में कोई कुत्ता मुँह उठाए रो रहा था। वह क्या करें अब? कहाँ जाए? उसे कुछ सूझ नहीं रहा था।

इसी वर्ष वह दुल्हन बनकर इस घर में आई थी। उसका पति विचित्र, मात्र नाम का ही नहीं स्वभाव का भी विचित्र साबित हुआ। शादी के कुछ दिन बाद ही ससुराल वालों ने उसे नौकरानी समझ लिया था। काम-बस-काम। इस घर में जेठ-जेठानी, सास, वह तथा उसका पति रहते हैं। यही है उसका संसार। इस घर में आते ही जेठानी ने उसे प्रताड़ित करना शुरू कर डाला था। सास भी जेठानी की सुनती। मात्र उसे टोकती-डांटती। जेठानी को कुछ न बोलती। वह पूरे दिन इस घर में कोल्हू के बैल की भांति पिसती रहती। जबकि जेठानी घर के क़िसी भी काम में हाथ न बँटाती। मजे से बाहर घूमती रहती। सब खाना खा लेते, तब वह बची-ख़ुची रोटी खाती। कभी रोटी नहीं, तो कभी सब्जी नहीं। कई बार जान-बूझकर उसकी जेठानी उसका खाना अपने कुत्ते को डाल देती। वह चुप रहती और भूखी सो जाती। वह जानती है, जेठानी लड़ाई का कोई-न-कोई बहाना ढूंढ़ती रहती है। जबकि वह तक़रार से हमेशा बचना चाहती। उसकी इस चुप्पी ने जेठानी का हौसला बढ़ा डाला। अवसर मिलते

* *हिमालय जैवसम्पदा प्रौद्योगिकी संस्थान पालमपुर-176061 (हिमाचल प्रदेश)*

ही वह ताबड़तोड़ हमला बोल देती। वह चुपचाप सब सुनती रहती। अकेले में रोती, कई बार वह भूखी सोई थी। पानी पीकर पेट की आग बुझाना एकमात्र उपाय था। इस घर में किसी को उसकी लेशमात्र चिन्ता नहीं। उसने रोटी खाई भी या नहीं। विचित्र भी उनकी हाँ-में-हाँ मिलाता रहता बस। वह बड़े भाई की गाड़ी चलाता है, इसलिए जेठानी उस पर पूरा रोब रखती। वह भी जेठानी की छाया समान उसके पीछे-पीछे पड़ा रहता, मानो उसका खरीदा कोई गुलाम हो। वह चुपचाप मिट्टी का माधो बना देखता रहता।

कल रात्रि वह रसोई का काम निपटाकर उठी, तो उसकी कमर जवाब दे चुकी थी। आज भी उसके लिए खाना नहीं बचा था। उसने खाली पेट पानी का एक गिलास पीया और बोझिल कदमों से अपने कमरे में चली आई। सभी अपने-अपने कमरों में खर्राटे भर रहे थे। वह चारपाई पर जा लेटी। विचित्र शायद सो गया होगा, उसने सोचा।

''आ ssss गई, देख मेरी बात सुन। तेरा ताया विदेश में लाखों कमा रहा है। एक-दो लाख दे s देगा तो क्या मर जाएगा। उससे मेरे लिए रुपये मांग। सुन ssss रही ssss है न। कान बन्द कर रखे हैं क्या?'' विचित्र ने उसे कोंचा था।

वह चुप रही, वह स्वयं से जूझ रही थी।

''हराम sssss जादी, मैं यहाँ परेशान हूँ।'' तुझे कोई चिन्ता नहीं। वह चीखा था।

''मैं sssss कहाँ से लाऊँ रुपये। आप तो जानते हैं, मेरे माँ-बाप एक दुर्घटना में मारे गए थे। तायाजी ने पाला-पोसा, पढ़ाया हम दोनों भाई-बहन को। कौन करता है इतना आजकल। मेरी मजबूरी समझें।'' वह बुझकर रह गई थी।

''हट ssss साली।'' उसने उसे धक्का देते कहा था। ''भाषण देती है मुझे। मेरे साथ रहना है तो तुझे रुपए लाने पड़ेंगे, मुझे रुपये चाहिए।'' वह आगबबूला हो उठा था।

''मेरे साथ यहाँ क्या हो रहा है तुम्हें पता है? वह बिलखती बोली थी। तुम्हीं मेरा साथ न दोगे, तो कौन देगा?'' उसने मरी-मरी आवाज़ में ये शब्द कहे थे।

''तेरा कौन-सा गला काट रहे है।'' वह छटपटा उठा।

''जेठानी दीदी....।'' वह कहते कहते चुप्पी मार बैठी।

''देख ssss उसका नाम मत लेना। नहीं तो तुझे धक्के मारकर अभी निकाल दूँगा।'' उसने लाल-लाल आँखों से कल्पना को घूरा था। कल्पना को काटो तो खून नहीं। वह बुत बनी सुनती रही।

इस घर में कोई उसकी भावनाओं को समझने वाला नहीं। लाखों की मांग उसे भारी पड़ने लगी। आए दिन उसे जलील किया जाता। उसे मारा-पीटा जाता। पति उसकी एक भी सुनना नहीं चाहता। उन सबके जुल्मों-सितम लगातार कल्पना पर टूटने लगे। उसका मन

छलनी-छलनी हो चुका है। रोज नई चालें चली जातीं। वह पिटती रहती, गालियाँ सहती और भूखी पड़ी रहती। अवसाद में डूबी वह पगला जाएगी एक दिन। कैसे बचाए वह अपना वैवाहिक जीवन। कहाँ से लाए दो लाख रुपये? हे! ईश्वर मेरी रक्षा करना। मेरा घर मत उजड़ने देना। मेरे पति को सद्बुद्धि देना भगवान। उसने प्रार्थना में हाथ जोड़ लिए थे। तभी कोई भीतर से उठा था। वह चौकन्नी हो गई।

"आज तुझे भीतर आने देती हूँ। लेकिन अपने ताया से दो लाख रुपये नहीं मंगवाए तो तुझे जिन्दा जला डालेंगे। कहेंगे स्टोव फट गया था।" सास ने धमकाते हुए कहा था। वह सिर झुकाए अपने कमरे में चली गई। यह जीना भी कोई जीना है। उसे स्वयं पर बेहद लाज आई। भीतर उसका पति मजे से खर्राटे भर रहा था। आजकल वह बेहद शराब पीकर आने लगा था। यही है उसका पति परमेश्वर, उसका रक्षक। अग्नि के फेरे लेते हुएं इसने शपथ ली थी, कि हमेशा पत्नी की रक्षा करेगा, जबकि यही उसकी जान लेने पर तुला है। वह कटी डाल- सी चारपाई पर लुढ़क गई। आँखों से अश्रुधारा फिर बहने लगी। रोते-सिसकते न जाने कब उसे नींद ने अपनी आगोश में ले लिया।

जेठानी तथा सास के तमाम हथकण्डों ने कल्पना को भीतर से कमजोर कर डाला था। वह भीतर-ही-भीतर टूटकर बिखर चुकी थी। जहाँ कहीं भी कल्पना की कोई त्रुटि निकाली जा सकती, दोनों उसका भरपूर उपयोग करतीं। जेठानी विचित्र के सामने बार-बार यह साबित करती कि विचित्र का ध्यान वह कल्पना से कहीं ज़्यादा रखती है। कल्पना सब समझती, लेकिन चुप रहती। वह सारा ज़हर चुपचाप पीती रही।

एक दिन भरी दुपहरी में जेठानी के साथ उसका विदेश में रहा भाई चला आया था। कल्पना रसोई में बर्तन मांज रही थी। तभी चीखती-चिल्लाती उसकी जेठानी कल्पना पर टूट पड़ी।

"क्या तुम्हारे घर में मेहमान को पानी के लिए भी नहीं पूछा जाता। देखती ssss नहीं, धूप में हम सब चले आ रहे हैं।"

"दीदी sssss मेरे हाथ ज़रा गंदे थे। हाथ धोकर पानी लाने वाली ही थी मैं" -कल्पना ने शांत स्वर में उत्तर दिया था।

"तेरे हाथ ही गंदे नहीं, तेरा मन भी गंदा है। कंगाल घर से आई है यहाँ।" उसका चेहरा तमतमा उठा था।

"शिष्टाचार कोई सिखाने वाला नहीं था। माँ तो रही नहीं। कलमुंही-अभागी है ssss न। दोनों को बचपन में ही खा गई" सास ने भी आग में घी डालने का काम किया था।

कल्पना चुपचाप चाय बनाकर टेबल पर रख गई तथा पानी के जूठे गिलास उठाकर ले गई। कनखियों से उसने विचित्र को देखा, जो उसे खा जाने वाली दृष्टि से घूर रहा था।

फिर जेठानी सास को विदेश से लाया सारा सामान दिखाने बैठ गई। विचित्र भी पास बैठा सिगरेट फूँकता रहा। वह ललचाई दृष्टि से महंगी-महंगी वस्तुओं को निहारने लगा था। जेठानी ने सास को कुछ कपड़े दिए। विचित्र को भी उसने महंगे सिगरेटों के पैकेट, एक लाईटर तथा कुछ कपड़े पकड़ाए। इस बीच जेठानी अपने मायके के गुणगान करती रही। फिर वह ने जाने किस बात पर ठहाके लगाकर हँसने लगी। कल्पना को ये ठहाके भीतर तक हिलाते रहे।

"विचित्र गाड़ी निकाल ला। बाजार जाना पड़ेगा। भाई के खाने-पीने के लिए....।"

अधूरा वाक्य छोड़कर वह रसोई की ओर बढ़ गई। विचित्र गैरेज से गाड़ी निकालने चला गया था।

"महारानी, तेरा काम खत्म होगा कभी?" वह दनदनाते हुए रसोई में घुसकर कल्पना को पूछने लगी।

"बस होने ही वाला है दी ssss दी। क्या बनाना है आज।" वह स्नेहवश बोली थी।

"वही तो लेने जा रही हूँ। मेरा भाई सालों बाद आया है। उसके सिर में दर्द हो रहा है। जरा तेल लगाकर मालिश कर देना। उसका विशेष ध्यान रखना। खाने-पीने के लिए भी पूछ लेना। सम ssss झी।" वह आँखें मटकाती बोल रही थी। "ठीक है ssss दीदी।" कल्पना ने काम करते-करते जवाब दे डाला। जेठानी जब चली गई तो वह भीतर से कँपकँपा उठी। सास सारा दिन इधर-उधर मुँह मारती फिरती। घर में रहती तो टी. वी. लगाए रखती। बाहर होती तो खाने के समय ही घर पर आती। अन्यथा उसे कल्पना से क्या लेना-देना। अभी-अभी वह भी न जाने कहाँ चली गई थी। कभी बताकर तो जाती नहीं। अकेले में उसका मन घबराने लगा। लेकिन उसने अपना मन पक्का किया तथा हौले-हौले वह जेठानी के कमरे में जा पहुँची। वहाँ जेठानी का भाई बिस्तर पर लेटा पड़ा था। वह चुपचाप वहाँ जाकर खड़ी हो गई। सोचा था उसने, अगर वह सो रहा होगा तो लौट आएगी वापिस। लेकिन उसकी जरा-सी आहट पाकर वह कल्पना को घूरने लगा था।

"इधर चली आ। दूर क्यों खड़ी है। क्या मैं खा जाऊँगा।" वह खिलखिला उठा था।

कल्पना तेल लगाकर उसका माथा मलने लगी तो उसने आँखें मूंद लीं। कल्पना ने माथा मलते-मलते यह महसूसा कि उसने शराब पी रखी थी। उसका जी मिचलाने लगा। वह कब बस कहे कि वह उठकर वहाँ से भागे। अचानक उसने आँखें खोलकर कल्पना को निहारा था। लाल-सुर्ख आँखें देखकर कल्पना भयभीत हो उठी। वह युवक उठकर बैठ गया। कल्पना कुछ कहती-पूछती कि युवक ने अनायास ही उसे अपने बहुपाश में जकड़ लिया।

"ये क्या कर रहे हैं आप।" वह कसमसाई थी। "मुझे छोड़ दो, मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ।" उसने हल्का प्रतिरोध किया था। लेकिन युवक ने नोटों की एक गड्डी उसकी झोली में फेंकते हुए कहा- "अपना मुँह बन्द रख ssss बस। घर में दूजा कोई नहीं है।" उसने

कसकर हाथ पकड़कर कल्पना को चूमना चाहा था। कल्पना ने उसे पूरी ताकत से धक्का देते हुए नोटों की गड्डी उसके मुँह पर दे मारी।

''तेरी माँ-बहन नहीं है घर में।'' वह आगबबूला होकर वहाँ से भाग आई थी। बाहर आकर उसने अपने कमरे की कुण्डी भीतर से लगा ली। उसके दिल की धड़कन अनायास ही बढ़ चली थी। भीतर-ही-भीतर वह डर रही थी। शराबी न जाने अपनी बहन को क्या पट्टी पढ़ाए आज इस घर में अवश्य तूफान आएगा। वह स्वयं को इस तूफान से भिड़ने के लिए तैयार करने लगी। कुछ सोचकर उसका मन भी भर आया था। शाम को जब जेठानी विचित्र लौटे तो सामान से लदे-लदे थे। थोड़ी देर बाद में ही जेठानी ने उग्र रूप धारण कर लिया। भाई ने न जाने क्या-क्या उसे कहा था। विचित्र को जेठानी ने सारा मनगढ़ंत किस्सा नमक-मिर्च लगाकर सुनाया तो वह भड़क उठा।

''कल्पना बाहर आ ज़रा।'' वह वहीं से चिल्लाया था। कल्पना अपने क़मरे से बाहर आकर चुपचाप उसके पास आकर खड़ी हो गई।

''हराम ssss जादी चोरी करती है। उसके नोटों की गड्डी चुराने चली थी। सोचा होगा वह सो रहा है। कौन देखेगा।'' विचित्र ने बिना कुछ पूछे ही उसे पीटना शुरू कर दिया।

''तुम इतनी नीच हरकत करोगी। मैं सोच भी नहीं सकता। तुमने मेरा नाम मिट्टी में मिला दिया।'' कहता-कहता वह उसे मारता जाता।

''यह सब झूठ है, उसने मेरी इज्जत पर हाथ डाला था।'' वह रोती हुई बोली थी। ''मुझे रुपयों का लालच दे रहा था। नीच तो वह है मैं नहीं। तुम्हीं इन्साफ करो। वह शराबी मेरी इज्जत पर डाका डालने चला था।'' कल्पना ने सच्चाई को बताने का साहस कर डाला था।

''झूठ बोलती है तू। वेश्या-कुलटा है तू। चोरनी, छिनाल, क्या नहीं है तू।'' वह दहाड़ा था। तथा ताबड़तोड़ उसे फिर पीटने लगा।

''मैं अपनी इज्जत लुटने देती।'' उसने आह भरी थी। ''मुझ निर्दोष को मत मारो। रहम करो। मैं तुम्हारी पत्नी हूँ।'' वह अपना बचाव करते बोली थी।

''मेरी नजरों से दूर चली जा। तू इस घर में नहीं रह सकती। वह लावा उगलने लगा था।'' कल्पना सहमी-सहमी पति को देखती रही बस।

''इसे मायके छोड़ आ अभी।'' जेठानी ने सलाह दे डाली।

''मैं इसे हमेशा के लिए त्याग दूँगा।'' वह चीखा था।

''न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।'' ''इसे तलाक दे डाल। बड़ी हूर बनी फिरती है। मेरा भाई जो इस पर डोरे डालेगा।'' जेठानी ने भभकती आग में घी डालने का काम कर डाला।

"मुझ पर विश्वास करो।" कल्पना ने गिड़गिड़ाते स्वर में याचना की थी।

"चुप ssss साली, जुबान बन्द रख अपनी, वरना गला काट डालूँगा अभी।" वह हिंसा की ज्वाला में सुलग उठा था। वह पुनः कल्पना को पीटने लगा। कल्पना को पीट-पीटकर उसने अधमरा कर डाला। वह पिटते-पिटते बेहोश होकर गिर पड़ी। किसी ने उसकी एक नहीं सुनी। सास-जेठानी ने विचित्र के चंगुल से उसे नहीं छुड़ाया। मात्र तमाशा देखती रहीं। सब अपने-अपने कमरों में चले गए। कल्पना को जब होश आया तो वह फर्श पर पड़ी थी। उसका अंग-अंग पीड़ा कर रहा था। उसे अपनी दयनीय स्थिति पर बेहद ग्लानि हुई। काश! वह माँ-बाप के साथ उस दुर्घटना में होती और उसके साथ ही मर गई होती, तब उसे ये दुर्दिन तो न देखने पड़ते। सारी रात उसके जख्मों से रह-रहकर टीस उठती रही।

प्रातः काल जब उसकी आँख खुली। उसने बिस्तर से उठना चाहा, किन्तु उठ पाने की क्षमता न जुटा पाई। पूरा शरीर बुखार में तप रहा था। वह कुछ पल यूँ ही लेटी-लेटी छत को घूरती रही। तभी उस कमरे में उसका भाई चला आया था। वह उसके सिरहाने आकर खड़ा हो गया। भाई का उदास घबराया हुआ चेहरा उसकी नजरों में कौंध उठा था। कल्पना जान गई, कि कल ही विचित्र ने भाई को फोन पर सब बता डाला होगा। वह चुपचाप अपने मन के गहन अंधेरों में खोई शून्य में न जाने क्या तकती रही।

"बोलती क्यों ssss नहीं। बहुत मारा है तुम्हें?" वह उसका माथा सहलाने लगा। वह चुपचाप लाश समान पड़ी रही। तभी दनदनाता विचित्र वहाँ आ पहुँचा था। "इसे अभी यहाँ से ले जाओ। इसने हमारी नाक कटवा डाली है।" इतना कहकर वह गुस्से में भुनभुनाता बाहर चला गया। कल्पना के भाई ने यही उचित समझा कि वह उसे अभी साथ ले जाए। उसके मन में बहन के प्रति स्नेह भरभरा आया था। जालिमों ने बुरी तरह पीटा है, निरी गाय समान सीधी-सादी उसकी बहन को।

जब कल्पना मायके जाने लगी तो उसने सास के कमरे में जाकर उसके चरण स्पर्श करने चाहे। किन्तु सास ने पाँव पीछे खींचते हुए कहा-"बस ssss रहने दे ये नाटक। कान खोलकर सुन ले एक बात। यहाँ आना हो तो दो लाख रुपये लेकर आना अन्यथा मत आना। खाली हाथ आई तो तेरा वह हाल करूँगी कि तेरी रूह भी काँप उठेगी।" वह भरे मन से वापस लौट आई अपने भाई के पास। वह पतवारहीन कश्ती की भांति सागर की लहरों में डूबने लगी। उसे कोई किनारा नहीं सूझ रहा था। पूरे रास्ते वह चुपचाप बैठी रही। भाई ने भी उससे ज़्यादा कुछ पूछना ठीक नहीं समझा।

महीना-भर हो चुका था कल्पना को यहाँ आए हुए। उसने दबी जुबान में ससुराल वालों का कोरा-चिट्ठा भाई को कह सुनाया था। "दो लाख के लिए वह कुछ भी कर सकते हैं। मुझे मरवा भी डालें तो कोई हैरानी मत समझना।" उसे याद है जब पहली बार विचित्र, जेठानी तथा सास यहाँ आए थे तो तायाजी ने मजाक में कह डाला था। "लड़की को रुपये-पैसे की

तंगी नहीं होने देंगे। गाड़ी भी मैं ले दूँगा। मेरी बेटी बस सुखी रहे वहाँ। बस यही बातें उन सब ने गाँठ बाँध ली हैं। मैं क्या करूँ भैया। कुछ समझ में नहीं आ रहा।'' कहते-कहते वह भावुक हो उठी थी। भाई तथा उसकी भाभी बस सुनते रहे कुछ बोले नहीं।

दिन यूँ ही कट रहे थे। तभी एक दिन वह भाभी का स्वर सुनते ही थमकर रह गई है। ''ये कब तक यहाँ पड़ी रहेगी। आस-पड़ोस वाले सभी मुझे पूछते हैं कहीं लड़-झगड़कर तो नहीं आई। मैं क्या बहाना बनाऊँ। पहले तो कहती रही कि काला महीना काटने आई है। अब क्या कहूँ?'' भाभी ने भाई के सामने अपनी समस्या रख डाली। भाई ने उस समय कुछ नहीं कहा था। सच ही तो कह रही है भाभी कब तक यहाँ पड़ी रहेगी। एक दिन तो उसे वहीं कसाईबाड़े में जाना है। जहाँ सभी उसे हलाल करेंगे। बोटी-बोटी उसकी नोचेंगे। उसे भूखा रखा जाएगा। इन्हीं आशंकाओं में जूझती वह वहीं से वापस लौट गई। बाहर तार पर सूखे कपड़े उठाकर तह लगाने लगी।

''उनसे बात करो कब तक यूँ बिठाए रखोगे इसे।'' वह फट पड़ी थी एक दिन। मैं भी यही सोच रहा था। कल्पना के भाई ने गहरा सांस लिया।

''सोचने से काम नहीं चलेगा, कुछ करो भी।'' उसकी पत्नी ने कहा।

''विचित्र से बात करूँगा, उसका गुस्सा ठंडा हो गया होगा।''

''यही ठीक रहेगा।'' दोनों में जब सहमति बनी तो वातावरण में कुछ तलखी कम हुई।

कल्पना रात-दिन घर के कामों में उलझी रहती। या स्वयं को कामों में उलझाए रखती। अन्यथा उसका मन न जाने क्या-क्या सोचने लगता। वह भाई के बच्चों को भी संभालती। भाभी को वह कुछ भी काम न करने देती। फिर भी भाभी कभी-कभार न जाने क्यों उस पर व्यंग्य बाणों की बौछार कर डालतीं, जिससे उसका मन बिंध-बिंध जाता। लेकिन वह चुप्पी मार जाती। उसने भाई से भी इस बाबत कभी कुछ नहीं बताया। वह मन-ही-मन इतना अवश्य चाहती, कि जब तक विचित्र उसे लेने न आए, उसे वहाँ न भेजा जाए। लेकिन भाई से ये बात वह कह न पाई। इतनी हिम्मत न जुटा सकी। तभी एक दिन भाई ने उसे ससुराल जाने को कहा तो वह भीतर तक थर्रा उठी। ''भैया, मुझे नौकरानी समझकर यहाँ पड़ी रहने दो। बस दो रोटी दे देना। मुझे वहाँ मत ssss भेजो भैया।'' वह बिलख उठी थी।

''कम्मो सच्चाई से मुँह मत मोड़ो।'' कल्पना को वह कम्मो कहकर ही सदा बुलाता है। ''मैंने विचित्र को समझाया था। शायद उसे अक्ल आ जाए। यहाँ कब तक पड़ी रहेगी। आखिर जाना तो तुम्हें अपने घर ही है। तू वहाँ मिलजुलकर रहना। मुँह मत खोलना। वह बोलकर चुप हो जाएँगे खुद ही। मैं बैठा हूँ ssss न। तू चिन्ता मत करना।'' भाई ने लगे हाथ आश्वासन भी दे डाला था। कल्पना की आँखें भर आई वह फफकती हुई भाभी के गले से लगकर रोने लगी। ''भाभी मुझे क्षमा कर देना, अगर कोई गलती हो, गई हो तो।'' फिर

वह निर्जीव-सी भाई के साथ चल पड़ी। रास्ते भर उसने मुँह नहीं खोला। जब ससुराल आने वाला था तो उसने भाई से भरे गले से कहा था। ''मुझे कसाईघर में छोड़े जा रहे हो। ये कसाईबाड़ा है भैया। यहाँ पर मुझ पर जुल्म ढाए जाएँगे। मेरे ज़ख्मों पर सभी नमक छिड़केंगे। देखना ssss भैया ssss एक दिन तुम्हें मेरी झुलसी हुई लाश मिलेगी।'' इतना कहते-कहते वह बिलख उठी।

''पगली ssss ऐसा नहीं सोचते, ये कुछ रुपये हैं रख ले। विचित्र का मुँह बन्द कर देना। ले ssss देख, तेरा घर आ गया। मैं भीतर नहीं जाऊँगा।'' थ्री व्हीलर वाले को उसने मोड़ लेने को कहा था। कल्पना को उसकी अटैची तथा अन्य पैकेट पकड़ाते हुए वह बोला था। ''कम्मो, भगवान तेरी रक्षा करे।'' वह इतना कहकर लौट गया था। दूर तक कल्पना थ्री व्हीलर को जाते हुए देखती रही। उसका मन बार-बार भर आता। फिर वह सामान उठाए स्वयं को कसाईवाड़े में धकेलने लगी। उसे लगा, अब उसे बचाने आने वाला कोई नहीं। विविशता के आगे कोई क्या करे।

दो-तीन दिन उससे किसी ने बात नहीं की। वह आते ही घर के कामों में लग गई। सब उसे निगाहों में तौलते रहे बस। जेठानी ने एक साँझ व्यंग्यबाण कसते हुए पूछ ही डाला। ''क्या-क्या लाई हो अपने मायके से?''

कल्पना ने सारा सामान उसके सामने रख दिया। नोटों की गड्डी भी वहीं रख दी। जेठानी ने सारा सामान देखकर नाक-भौं सिकोड़ा। विचित्र ने नोटों की गड्डी गिनी। बस बीस हजार रुपये वह हलकाने लगा था। फिर उसने सारे नोट जेब में ठूँस लिए। तुझे कहा था दो लाख लाना। वह चीखा था। इन रुपयों का अचार डालूं।

जेठानी ने कहा ऐसे कपड़े तो मेरी फैक्टरी की मजदूरनें पहनती हैं। उसने आँखें मटकाई थी।

''उठा ले, ये कूड़ा-कचरा सब।'' सास ने भी उसे धमकाते कहा था। ''कहाँ मर गया तेरा कलमुंहा ताया, जो कहता था। विचित्र को रुपयों की तंगी न होने दूँगा। गाड़ी भी लेकर दूँगा।''

''माँ ssss जी, मैं उनसे रुपये नहीं मांग सकती। उन्हें जब से व्यापार में लाखों का घाटा हुआ है, तब से उन्होंने खटिया पकड़ ली है। हार्ट अटैक भी दो बार हो चुका है। भला ऐसे में....।''

बात बीच में ही काटते हुए सास ने ताना मारा। ''मरा तो नहीं अभी, बस खाट ही पकड़ी है न।''

''माँ ssss जी, आप मुझे जो चाहे कहें पर तायाजी को बुरा मत बोलें।'' वह मायूस हो उठी थी।

दो दिन में ही चुहिया के पर निकल आए। जेठानी ने ठहाका लगाते कहा था।

''अपनी जीभ बन्द रख, नहीं तो काटकर फेंक दूँगी।'' सास ने उसे ललकारा था।

कल्पना समझ चुकी थी, उस पर मुसीबतों का पहाड़ टूटने वाला है, बल्कि टूट ही चुका है। उसने चुप्पी मारने में ही अपनी भलाई समझी। लेकिन आए दिन जेठानी-सास कोई-न-कोई तरकीब बनाती रहतीं। दोनों उसे जलील करतीं, धमकातीं भी। विचित्र भी वैसा ही करता जैसा जेठानी चाहती। वह जेठानी क़ा खास मोहरा बना हुआ था। शतरंज बिछाए जेठानी जब-तब अपने मोहरे का भरपूर उपयोग करती। विचित्र को उसने अपने मोहजाल में फँसा रखा था। कल्पना के प्रति उसने इतनी नफ़रत उसके मन में भर डाली, कि वह अपने कमरे में सोने तक न आता था। रात-दिन जब जेठानी को अवसर मिलता वह विचित्र से अपने तन-मन की प्यास बुझा लेती। वह पहले ही अपने पति से असंतुष्ट रहती थी। विचित्र को पाकर वह फूलकर कुप्पा हो गई। दोनों फैक्टरी के काम के बहाने बाहर जाते रहते, वहीं मौज-मस्ती भी करते। बड़ा भाई जानकर भी अनजान बना बैठा था। क्योंकि फैक्टरी की मालकिन उसकी पत्नी थी। वह अपनी पत्नी को नाराज़ करने का जोखिम उठाना नहीं चाहता था। उसने बहुधा फैक्टरी में ही रातें बिताने की आदत बना डाली। जेठानी-विचित्र से अब खुलकर खेलने लगी। रोज वह जेठानी के साथ शराब के नशे में धुत होकर लौटता। अक्सर जेठानी के कहने पर उसे पीटता, गालियाँ भी बकता। कल्पना ने उसे लाख प्यार से समझाकर भी देख लिया था। किन्तु वह टस-से-मस नहीं हुआ कभी भी। अब कल्पना ने चीखना-चिल्लाना छोड़ दिया था। एक रात जेठानी का पति भी वहीं घर में आया हुआ था। विचित्र शराब पीकर जब कल्पना को पीटने लगा तो वह चुप न रहा सका।

''निकम्मा शराबी है, काम का न धाम का। जब देखो बेचारी को पीटता रहता है। वह भी चुपचाप पिटती रहती है विरोध तक नहीं करती। मैं इसे आज बताता हूँ।'' वह गुस्से से भरकर उठकर जाने लगा तो पत्नी ने उसे उसकी वास्तविकता बता डाली। ''ज़्यादा उड़ो मत। चुपचाप पड़े रहो। लड़कर चुप हो जाएँगे।''

''वह निरी गाय समान है अत्यन्त भोली।'' वह मायूसी में बोल उठा था।

''बेचारी ssss गाय ssss तुम्हें बेहद तरस आ रहा है। अपनी पत्नी तो संभाली नहीं जाती। वह आँखें तरेर कर उसे घूरने लगी।'' तो वह अपने खोल में मानो छुप-सा गया। वह हँस पड़ी, ठहाके लगाने लगी। तब से उसने रात को यहाँ आना ही छोड़ दिया। जेठानी की तो लाटरी लग गई। जब मन होता विचित्र को घसीटती ले जाती। ये सब कल्पना जानती थी। लेकिन करती भी तो क्या वह? उसने सब भगवान के सहारे छोड़ दिया था। उसके जिस्म पर मार के ज़ख्म सूखते भी न थे कि फिर हरे हो उठते। एक रात वह उसे पीटते-पीटते वह उसके गले में दुपट्टा कसने लगा।

''आज साली ssss हरामजादी ssss का गला घोंट दूँगा। कहूँगा खुद मर गई।'' वह शराब की मस्ती में लहराकर बोला था।

क्या वह इसके हाथों यूँ प्राण त्याग डाले। उसने एक पल सोचा, नहीं कदापि नहीं। उसने विचित्र को जोर से धक्का दिया तथा स्वयं को मुक्त करवा डाला। ''हे! भगवान मेरे भाग्य में क्या लिखा है। मेरा कोई सहारा नहीं किसे अपना दुखड़ा सुनाऊँ। भाई ने जाकर फिर सुध नहीं ली उसकी कभी।'' वह पीड़ा से छटपटाती अपने कमरे की कुंडी भीतर से बन्द कर पड़ी रही।

उसका जिस्म टूट चुका था। उसमें चलने-फिरने की शक्ति क्षीण होने लगी। एक दिन सुबह उसने उठना चाहा तो चाहकर भी वह उठ न सकी। उसकी मुखाकृति मलिन थी। आँखों के सामने धुंधला-धुंधला सा छाने लगा। वह मन मसोसकर पड़ी रही। उसका हलक सूखने लगा। वह पानी भी कैसे लाए। खाना तो दूर की बात है, इस घर में कोई उसे पानी का घूँट देने वाला भी नहीं। बुखार में उसका शरीर तपने लगा था। वह बेचैनी में करवटें बदलती रही। अनायास उसके मुँह से हाय-हाय शब्द निकलने लगे। उसे लगा था। वह अब बचेगी नहीं। बिना दवा-दारू के ये शरीर कब तक लड़ पाएगा भला। तभी उसकी जेठानी तथा सास चली आई थी उसके पास। विचित्र ने कब का उस कमरे में आना-जाना छोड़ ही दिया था। वह उन दोनों को एकसाथ देखकर दंग रह गई।

''लेssss दवाई पी ले।'' जेठानी ने गिलास में तरल पदार्थ उसे पिलाना चाहा। इस बीच सास ने उसके दोनों बाजू पकड़ लिए तथा उसके पेट पर बैठ गई?

''अपना मुँह खोल।'' जेठानी ने बलपूर्वक उसका मुँह खोलना चाहा था।

''ये क्या कर रही हैं। मुझे क्या पिला रही हैं ज़बरदस्ती।'' वह बिलबिलाई थी। उसका मात्र मुँह खोलना था, कि दोनों ने मिलकर उसके मुँह में सारा तरल पदार्थ उड़ेल डाला।

''तेजाब पीकर अच्छी हो जाएगी।'' जेठानी ने व्यंग्य कसा था।

कल्पना में न जाने इतनी शक्ति कहाँ से आ गई वह सास को पीछे हटाते सरपट बाहर भाग गई। मुख्य सड़क पर दो व्यक्ति खड़े बातें कर रहे थे। वह उनके पास पहुँचकर टूटे शब्दों में उसने मात्र इतना कहा मुझे मेरे ससुराल वालों ने बलपूर्वक तेजाब पिला दिया है। रूक-रूक कहे उसने ये शब्द। फिर वह सड़क पर लेट पर तड़पने लगी।

०००

भरोसा

❑ शकुन्त 'दीपमाला'

बैत-उल-अकरम उस ज़माने की यादगार है जब नवाब शब्द अय्याशी का प्रतीक था परन्तु इस हवेली में रहने वाले नवाबों का ऊँचा चरित्र और अपना ही सादगी भरा ठाठ था। और यह सिलसिला नवाब अमीनुल्ला से लेकर चौथी पीढ़ी तक ज्यों-का-त्यों था। परिवार के सभी लोग नियम से पाँच वक़्त नमाज़ पढ़ने वाले, हर साल हज्ज करने वाले और नामी गरीब नवाज़ थे।

परन्तु अब इस हवेली को भी जमाने की नज़र लग गयी थी। नवाब अकरम का पोता बशारत खान सुरा का पुजारी, माना हुआ अय्याश बन गया। जब कि उसके पिता कयामत अली खां अपने नाम से कम परन्तु फ़कीर नवाब के नाम से अधिक जाने जाते थे। वैसे तो उनका पसंदीदा लिबास सफ़ेद रंग का अचकन और पायजामा था परन्तु प्रायः वो घर पर पाओं तक लम्बा एक लबादा पहनते थे, उस पर उनकी घनी लम्बी दाढ़ी छाती पर फैली होती और उनके दायें हाथ की उंगलियों में तसबीह के दाने फिर रहे होते।

आज समय के साथ बहुत कुछ बदल गया है। उनकी बैठक जहाँ खास अवसरों पर अदीबों की महफ़िलें और कव्वालों की रौनकें होती थीं और साहबज़ादियाँ भी चिक के परे बैठ कर प्रशंसा की वाहवाही में बराबर की शरीक हो लुत्फ़ उठाती अब वो बैठक बिशारत खान का दीवाने खास बन कर रह गयी थी। चिकें हटा कर झरोखे टायलों से बन्द कर दिये गये। जहाँ कभी गर्म-गर्म चाय की चुस्कियाँ और पकोड़ों की गन्ध वातावरण में एक सादगी भरा सरूर पैदा करती थी, वहाँ अब शराब की बोतलें और शीशे के पैमाने छलकते थे।

बेशक बूढ़े कयामत अली खाँ ऊपरी मज़िल पर एक बड़े हाल कमरे में गावतकियों के सहारे दीवान पर लेटे हुए अपने अन्तिम समय की एक लम्बे समय तक प्रतीक्षा करते रहे परन्तु उनकी तेज़तर्रार नज़र बेटे की करतूतों से अनजान नहीं थी। इसीलिये अपनी वसीयत लिखते समय उन्होंने विशेष सावधानी बरती थी। सारी जायदाद उन्होंने अपनी छोटी विधवा बहिन नफ़ीसा के नाम लिख दी थी जो पिछले बाईस वर्षों से उनके साथ ही रह रही थी। वह बड़ी नेक, पाकीज़ा और हर समय अपनी इबादत में मस्त रहती थी। उसे अपने भाई की ज़मीन, जायदाद और हवेली में कोई दिलचस्पी नहीं थी। परन्तु थी बड़े दबदबे और रूआब वाली। किसी को उनके आगे आँख उठाकर बात करने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। सारे खानदान बिरादरी में उनकी बहुत इज्ज़त थी। क्योंकि वह स्वयं भी कम ही बोलती थी। आलतु-फालतु बातों से कोई सरोकार नहीं रखती थी। रिश्तेदारों और दोस्तों के यहाँ भी शादी-ब्याह् जैसे खास अवसरों के इलावा वह कम ही कहीं आती-जाती थी। सब उन्हें बड़ी इज्ज़त से आपा बी कह कर ही बुलाते थे।

इस वसियत से नफ़ीसा बहुत ही दुःखी हुई परन्तु भाई की मर्जी के आगे वह क्या कर सकती थी। भाई जान की वसीयत ने उनके ज़हन पर एक जबरदस्त ज़िम्मेदारी का बोझ डाल दिया था। वह किसी भी क्षण उस बोझ से मुक्त होना चाहती थी परन्तु एक गैरज़िम्मेदाराना ढंग से नहीं क्योंकि वह चाहती थी कि उनके भाई ने उन पर जो भरोसा किया है उस पर वह पूरी उतरें ताकि मरहूम भाई कयामत अली की रूह को शान्ति मिले।

कयामत अली का अपनी बहिन के साथ बड़ा पाकीज़ा और प्यारा-सा रिश्ता था। ज़िन्दगी का हर महत्त्वपूर्ण फ़ैसला वो अपनी बहिन की सलाह के बगैर कभी भी न करते। ख़ान साहब का कोई सगा भाई नहीं था इसलिये उन्होंने अपनी छोटी विधवा बहिन को ही अपना सब से बड़ा हमदर्द तथा सलाहकार माना हुआ था। हर छोटी बड़ी बात के लिये वह नफ़ीसा को बुलवा लेते थे या फिर स्वयं ही ज़नानखाने में चले जाते-''अच्छा भिन्नो, ज़रा सोच के बताइयेगा कि हम फलां काम करें या न करें?.... ''अपनी वो कंकरवाली कोठी यूनिवर्सिटी वाले किराये पर माँग रहे हैं, क्या ख़्याल है? वैसे भी वह असगर मियां जैसे भूतों का डेरा बनी हुई है। उसका क्या है पड़ा रहेगा वहीं सीढ़ियों के नीचे तिकोने में।''

''वो तो ठीक है भाई जान पर असगर मियां के लिये तो बात करनी ही पड़ेगी। उसने तो बरसों से बड़ी नमकहलाली से हमारी खिदमत की है।''

''ओ नफ़ीसा कुर्बान जाऊँ, तुम तो चाहती हो कि कहीं चींटी का भी माथा न दुखे। भई वो तो वैसे भी चौकीदार है, बस ज़रा-सी सिफ़ारश कर देंगे।''

ऐसी कितनी ही बातें थी जिनका निर्णय खान साहब स्वयं करने को स्वतंत्र थे तो भी नफ़ीसा बेग़म के मशवरे के बग़ैर उन्होंने कभी कुछ न किया।

इस तरह नफ़ीसा छोटी होकर भी घर में अपने भाई जान की बदौलत बड़े होने या एहम होने का रूतबा पा गयी थी। सब जानते थे कि वह धन-दौलत के मामले में बिल्कुल बेलाग थी। वह अपने फ़कीर भाई की दरवेश बहिन थी।

शादी को अभी कुछ ही महीने हुए थे कि उनका पति एक भयानक दुर्घटना में चल बसा। फिर दूसरी शादी के लिये उसे कोई राज़ी न कर सका। नवाब कयामत अली अपनी नमाज़ी बहिन की नब्ज़ पहचानते थे इसलिये वो उसे वापिस अपने पास ले आये ताकि वो आराम से किसी कोने में बैठकर खुदा का नाम लेती रहे। वह प्रायः कहते थे 'मेरी बहिन के चेहरे पर खुदा का नूर है। यह जहाँ भी रहेगी वहाँ रहमत की बरसात होगी।'

परन्तु नफ़ीसा अपने प्रति इसके उल्ट सोचती थी कि ससुराल में कदम रखते ही उस का पति खुदा को प्यारा हो गया और जब घर वापिस आई तो तीन साल बाद उनकी प्यारी भाभी चल बसी।

अब धीरे-धीरे एक और मुश्किल जवान हो गई थी। जिसका कोई हल न था और प्रायः दोनों भाई-बहिन इस समस्या पर बड़ी गम्भीरता से सोचते रहते कि इस खानदान का

इकलौता वारिस बशारत अली खान जो तबाही की राह पर निकल पड़ा था उसे कैसे रोका जाय। साहबज़ादा एक बेलगाम घोड़े की तरह सरपट इतना दूर निकल गया था कि जहाँ अदब-आदाब और शर्म-हया बेमाने हो गये थे।

वास्तव में तो दोष उन दोनों का ही था। बेग़म अनवर जहान की मृत्यु के पश्चात् नवाब कयामत अली कुछ इस तरह टूट से गये कि उन्हें न सुबह का सूरज अच्छा लगता, न रात का चाँद। जिन्दगी एकदम बेमकसद-सी बेमज़ा हो गयी।

अब दोनों भाई-बहिन नमाज़, रोज़ा, हज्ज और ज़ियारतों में इस प्रकार व्यस्त हो गये कि घर-गृहस्थी को भूल बस खुदाई ख़िदमतगार बन गये। इस प्रकार नन्हा बशारत अपने अब्बु और बुआ की उदासीनता और खुदापरस्ती के बीच बेसहारा-सा लटकता हुआ ज़्यादातर नौकरों की हमदर्दियों पर पलने लगा। धीरे-धीरे नौकरों ने उसे इतना शाहखर्च बना दिया कि उनका अपना स्वार्थ भी सिद्ध होता रहे। इस तरह जवान होने से पहले ही वह कितनी बुरी आदतों का शिकार हो गया कि किसी को भी कुछ पता न चला। अब वह छोटा नवाब कम और बिगड़ा नवाब ज़्यादा बन गया था।

बीज को छोड़ कर निकली कोमल लता अपने नन्हे-नन्हे हाथों से पेड़ का तना पकड़े या दीवार के साथ लटके यह तो वह नहीं जानती। केवल माली को ही पता होता है कि उसे किसका सहारा ठीक रहेगा।

आज जब भाई जान नहीं रहे तो उनकी वसीयत नफ़ीसा के आगे एक बहुत बड़ी चुनौति बन कर खड़ी थी। उनका अपना कुछ न था तो भी यह सोच उन्हें सदैव कचोटती रहती कि यह नालायक पुरखों की जायदाद और बाप की अमानत सब कुछ यदि जुए और नशे की भेंट कर गया तो वह सौंपी गयी जिम्मेदारी को बखूबी ना निबाहने के कारण सीधी दोज़ख की आग में जायेंगी।

परन्तु पिछले दो वर्षों में बशारत के स्वभाव में सहसा भारी परिवर्तन आ रहा था। उन के दोस्तों-यारों की आमदोरफ़्त भी कम हो गई थी। हर जुम्मे को मस्जिद में नमाज़ पढ़ने चले जाते। घर पर पीरों, फ़कीरों का आना-जाना लगा रहता। अब तो वह खुद भी आपा के पास प्रायः सुबह-शाम उनका हालचाल पूछने चले आते।

इधर नज़ीरा भी नित नयी ख़बरें ला-लाकर सुनाती रहती कि-''अब छोटे नवाब दरवेशों के यहाँ भी आने-जाने लगे हैं। पीना-पिलाना तो दूर की बात हो गयी है यूँ समझिये कि उन्होंने तो जैसे पैमाने ही तोड़ दिये हैं।'' यह सब खबरें बशारत का एक ख़ास ख़ादिम इस्लाम नज़ीरा को बताता तो नज़ीरा की आँखें विस्मय से फटी रह जाती ''हाय अल्लाह इतना बदलाव!'' यह जब भी आपा को पता चलता तो वह कहती-''आख़िर बेटे किस के हैं।'' और वह उसी दम सजदे में झुककर ख़ुदा का लाख-लाख शुक्र मनातीं। इस बीच बशारत अपनी बी-आपा को अजमेर शरीफ़ और चिश्ती के मज़ार पर भी ले गया, वहाँ चादरें चढ़ाई, नियाज़ें दी।

अब तो बी आपा बड़े सकून और चैन की नींद सोने लगी। और उन्हें क्या चाहिये, अब जायदाद के कागज़ात साहबज़ादे को सौंप कर सकून से हज्ज के लिये जा सकती हैं। वसीयत का बोझ जो उनके दिल-दिमाग पर हर समय हावी रहता था, यह अब उन की दुआओं का असर था कि अनायास ही खुदा इतना मेहरबान हो गया।

नफ़ीसा ने एक दिन नज़ीरा को बता ही दिया कि "अब के रमज़ान के महीने में बशारत की सगाई के मौके पर जायदाद के सारे कागज़ात उसे सौंप कर हज्ज पर चली जाऊँगी। आख़िर कब तक करूँगी रखवाली। और खैर से, अब तो बशारत खूब समझदार और भरोसे के काबिल हो गये हैं। चढ़ती जवानी में तो बड़े बड़ों से गल्तियाँ हो जाती हैं। अफ़सोस है भाईजान ने कुछ न देखा। उनके सामने तो बिगड़े नवाब ही बने रहे। चलो देर आमद, दरुस्त आमद।"

एक दिन दुपहर को अचानक नफ़ीसा को याद आया कि कल तो फूफीजान वापिस हैदराबाद चली जायेंगी उनको मिलना तो बहुत ज़रूरी था। सारे ख़ानदान में एक वो ही बुज़ुर्ग बची हैं। फिर न जाने कभी मिलें-न-मिलें। अब भी तो पूरे सात साल के बाद आयीं हैं। नज़ीरा को कितनी आवाज़ें लगायीं परन्तु न जाने वो कहाँ गायब हो गयी। चलो इस्लाम को बुलाती हूँ, वही मुझे उनके यहाँ छोड़ आये 'ऐसा सोच कर वह स्वयं ही बशारत के कमरे की ओर चल पड़ीं। अभी दरवाज़े के पास पहुँची ही थीं कि अन्दर से इस्लाम की आवाज़ साफ़ सुनाई दे रही थी-"खुशियाँ मनाओ सरकार खुशियाँ। अब के रमज़ान का महीना आप के ऊपर कुछ ज़्यादा ही मेहरबान होने वाला है। आप की सगाई के साथ-साथ आप को जायदाद के कागज़ात भी सौंपे जायेंगे। अब बताइये कैसी रही हमारी स्कीम। लाठी टूटे बगैर ही साँप मर गया।"

फिर बशारत की आवाज़ आयी-"फिक्र न करो हमारे बीरबल, रमज़ान का महीना हज्ज के लिये तो बहुत अच्छा है और जब लौटेंगी तो वही घुघँरुओं की झंकार और पैमानों की खनकार सुनकर निहाल हो जायेंगी।"

इस के आगे सुनने की उनमें हिम्मत नहीं थी। वापिस आकर वह तख़्तपोश पर औंधे मुंह पड़ी रहीं कितनी देर तक। जब उठी तो उन की लाल सुर्ख आँखें देखकर नज़ीरा हैरान रह गयी-"क्या हआ आपा? बड़ी परेशान दिख रही हैं। हाय अल्लाह, कहीं आप के दुश्मनों की तबियत नासाज़ तो नहीं हो गयी।"

उत्तर में आपा ने ऐसे देखा जैसे कुछ हुआ ही नहीं बोलीं-"चल-चल ज़्यादा बातें न बना। सुलतान को बोल रिक्शा ले आये, जाना है कहीं।" रिक्शा आते ही वह बुर्का ओढ़ कर उसमें जा बैठीं और जब नज़ीरा भी साथ आने लगी तो उन्होंने रोक दिया-"ना, ना, तू घर बैठ। मेरा मुस्ल्ला धो के धूप में डाल देना ताकि मेरे आने तक सूख जाये।"

यह पहली दफ़ा थी कि नज़ीरा को साथ जाने से एकदम रोक दिया गया, जिस पर वह हैरान-परेशान देखती रह गयी।

वकील साहब, जो कि नवाब कयामत अली खान के बड़े जिगरी दोस्त थे, सारी बात सुनकर पशोपेश में पड़ गये। बहुत सोच-विचार के बाद उन्होंने कलम उठायी और एक नया वसीयतनामा तैयार किया गया कि–''मैं कयामत अली वल्द अकरम अली खाँ की छोटी बहन नफ़ीसा बेग़म अपने पूरे होशो-हवास में अपने भतीजे बशारत ख़ान वल्द कयामत अली खान को अपने मरहूम भाई की सारी चल-अचल सम्पति से हमेशा के लिये बेदख़ल करती हूँ। अपनी वसीयत में भाईजान मुझे अपने नाबालिग इकलौते बेटे का कानूनी सरपरस्त बना कर तथा जायदाद के पूरे हकूक दे कर वफ़ात पा गये थे और साथ ही यह हिदायत भी कर गये थे कि जब तक उनका बेटा अपनी अय्याशियों से बाज़ नहीं आता यह सम्पति उसको नहीं सौंपी जाये। ग्यारह साल का वक़्फ़ा काफ़ी था कि वह अपनी गल्तियां सुधार लेते और अपनी अय्याशियों पर अंकुश लगाते परन्तु इसके बरअक्स वो हमेशा हमें मूर्ख बनाते रहे। इस तरह अब वो मेरा विश्वास खो चुके हैं।

मैं इस जायदाद की निगरानी से हमेशा के लिये निजात पाना चाहती थी परन्तु ऐन मौके पर अल्ला ताला ने मेरी आँखें खोलकर मुझे गुनाहगार होने से बचा लिया। मैं जाने-अनजाने में कोई भी ऐसा फैसला नहीं करना चाहती जो मेरे भाईजान की रूह को तकलीफ़ दे। और मैं यह भी नहीं चाहती कि इनकी गल्तियों का ख़म्याज़ा इनकी आने वाली औलादें भुगतें। इसलिये मैं यह तहरीर करना ज़रूरी समझती हूँ कि यह जायदाद इनकी होने वाली सन्तानों के नाम बराबर की तकसीम की जाये और यह फैसला तभी लिया जाये जब तक कि इनके सभी बच्चे बीस साल की उम्र पूरी नहीं कर लेते। अगर इनकी कोई औलाद इनके नक्शे-कदम पर चलती है तो उसके हिस्से की सारी जायदाद औकाफ़ के नाम कर दी जाये।

वसीयतनामे पर नफ़ीसा के हस्ताक्षर करवाने के बाद वकील साहब ने कहा–''देखो नफ़ीसा यह ज़रूरी नहीं कि यह वसीयतनामा तुम अभी बशारत को सौंप कर अपने लिये मुसीबतें खड़ी कर दो। फिलहाल बशारत अपने बाप की वसीयत और अपनी करतूतों से पूरी तरह वाकिफ़ है, इसलिये अगर उसे तुम से कुछ उम्मीद हो तो भी वह मुँह खोल कर माँग नहीं सकता। इसलिये तुम जब चाहो आराम से हज्ज के लिये जा सकती हो। यह वसीयतनामा कभी भी या तुम्हारी वफ़ात के बाद भी खुल सकता है।''

इस बात की किसी को कानोकान खबर तक न हुई। रमज़ान का महीना आया और गया। ईद के अगले दिन बशारत मियाँ की सगाई की रस्म पूरी धूमधाम से हुई। नफ़ीसा बुआ ने खुलकर खर्चा किया। बशारत हर समय उम्मीद लगाये रहे कि जायदाद की नयामत उनकी झोली में अब गिरी कि अब।

भतीजे के चेहरे पर छायी उम्मीद की धूप और फिर निराशा की छाँव को एक साथ साफ़-साफ़ देखकर वह मन-ही-मन मुस्कुरा दीं। उन्हें लगा कि वो घनघोर घटायें जो उनके ज़हनी आसमान पर छायी थीं बिन बरसे लौट गयीं।

०००

साधु, तुम संत नहीं हो

❑ योगिता यादव

यह साधुओं का मठ था। इस मठ में यूं तो हिंदुस्तान के हर हिस्से से आए साधु रहा करते थे, लेकिन उनमें बिहार से आए साधुओं की संख्या औरों की तुलना में ज़्यादा थी। इन्हीं साधुओं से एक बार इस बहुमत का कारण पूछा तो उनमें से एक ने बड़े ही निर्विकार भाव से बताया, ''क्योंकि बिहार में विरक्ति के कारण ज़्यादा हैं। वहां विवाह करना आपका प्रथम कर्त्तव्य है। संपत्ति का होना उससे भी ज़रूरी। संपत्ति के न होने पर मरने-मारने की क्षमता का होना भी एक प्रभावी व्यक्ति होने की अनिवार्य योग्यता है। बेमेल विवाह पर तलाक की अनुमति नहीं। तलाक के बाद पुनर्विवाह की अनुमति नहीं और वैधव्य के बाद फिर से जीवन जीने की भी अनुमति नहीं। यह प्रतिबंध न वहां के कानून में हैं और न ही किसी ग्रंथ में इनका उल्लेख है। बस जिस बात को सुनकर समाज की आंखें फट जाएं और मुंह पूरा खुल जाए, समझ लीजिए वही पाप है। ये भांति-भांति के पाप जब आप नहीं ढो पाते तब वैरागी हो जाने से उत्तम दूसरा कोई मार्ग नहीं....''

.... इन्हीं साधुओं में एक साधु ऐसा भी था जिसे सभी साधु 'संत जी' कहकर पुकारा करते थे। उसकी छवि मठ में सम्मान का पर्याय बन गई थी। इसी छवि के तख़्त पर चढ़कर वह औरों से ज़्यादा ऊंचा दिखने लगा था। उसकी ऊंचाई में इतनी पवित्रता जन्म चुकी थी कि किसी की भी ईर्ष्या उससे टकराकर टुकड़े-टुकड़े हो कांच की मानिंद बिखर सकती थी। पवित्रता को सबके स्नेह ने और भी अक्षुण्ण बना दिया था।

अभी तक इस मठ में केवल पुरुषों को रहने की ही अनुमति थी। उस दिन पहली बार जब एक 'वैरागिनी' इस मठ की शरण में आई तो मठ में जैसे तेज़ आंधी-सी आ गई....

'स्त्री!'

'स्त्री और मठ में?'

'नहीं! नहीं!'

'हे ईश्वर!'

'यह उचित नहीं'

'कहां से आई हो तुम?'

'क्या दुख है तुम्हें?'

'यह मठ परंपरा का अपमान है'

'आदि...'

'आदि....'

.... मठ में आई इस आंधी का नाम था वैदेही। हर एक को उसके मठ में आने पर घोर आपत्ति थी। कुछ इसे मठ परंपरा का अपमान बता रहे थे तो बहुतों का वैराग्य उसकी गौर वर्ण कोमल देह को देखकर पटखनी खाने लगा था। विरोध में पटखनी खाने वालों की ज़ुबान कम और आंखें ज़्यादा नाच रहीं थीं। उनकी आंखों में वैदेही की देह अब तक कई बार नप चुकी थी। .... और वैदेही चुपचाप खुद को समेटे अभी तक मठ के द्वार पर ही खड़ी थी। उसकी झुकी हुई पलकें अपने-आप को छुपाने का भरसक प्रयास कर रहीं थीं। इस बात से अनजान कि ये झुकी पलकें अब तक एक भी वैदेही को नहीं छुपा सकीं हैं ... 'संत जी' पास ही एक पेड़ के नीचे बैठे थे, लेकिन उनकी समाधि ने उन्हें इतना दूर कर दिया था कि इस तेज़ आंधी की धूल भी उन कर नहीं पहुंच पा रही थी। या पहुंचना नहीं चाह रही थी।

वैदेही की आंधी 'संत जी' की समाधि का द्वार खटखटाने लगी, तो 'संत जी' को आना ही पड़ा। फैसला अब दो गुटों के बीच होना था....

पहला गुट, जिसमें मठ के सारे साधु, उनके विरोध, परंपराओं की दलीलें और नाचती आंखें खड़ी थीं और दूसरे गुट में वैदेही और बस एक जोड़ी झुकी हुई पलकें, उसकी देह को छुपाने के प्रयास में। इन दोनों गुटों के बीच निर्णायक की भूमिका में थे संत जी, एक ऊंचे आसन पर विराजमान.... संत जी ने बड़ी मृदुता से पूछा, 'ऐसी कौन-सी स्थिति थी जिससे वचने के लिए तुम्हें यहां आना पड़ा?'

संत जी के प्रश्न में वैदेही की उम्र का पूर्वाग्रह भी शामिल था।

एक के बाद एक संत जी ने कई प्रश्न किए, किंतु हर प्रश्न के उत्तर में वैदेही की झुकी पलकें उठती .... थोड़ा कंपकंपाती .... और फिर झुक जातीं। उनके झुकने के बाद दोनों आंखों के कोणों से अविरल धारा बह निकलती। इस धारा ने संत जी और मठ के किसी सवाल का जवाब तो नहीं दिया, किंतु मठ में कुछ देर पहले उमड़ी आंधी पर हल्की बरसात कर दी। अब आंधी के बादल बार-बार नहीं बन रहे थे, पहले गुट की आंखों का नाचना भी कम हो गया था। उनके स्थान पर अब ऐसी सहानुभूति टहलने लगी थी जो किसी बेज़ुबान जानवर के ज़ख्मी हो जाने पर किसी के भी मन में उठ खड़ी होती है। इस सहानुभूति ने इतना काम किया कि वैदेही को मठ के परिसर में रहने की अनुमति मिल गई।

यह मठ की परंपराओं में एक वर्जना का टूटना था। इस टूटन से होने वाले 'जान-माल' के नुकसान को कम करने के लिए संत जी ने वैदेही के लिए एक अलग कुटिया बनाने का आदेश दिया। इसी आदेश के साथ एक और आदेश नत्थी कर दिया गया कि जब तक

वैदेही की कुटिया तैयार नहीं हो जाती तब तक सभी साधु मठ के प्रांगण में रहेंगे और भीतर रह रही वैदेही की सुरक्षा और शुचिता का दायित्व सभी पर होगा।

... वैदेही की कुटिया तैयार हो चुकी थी। अब उसे देखकर कहीं भी आंधी नहीं उठती थी। मठ में कच्ची मिट्टी लीपने की ज़िम्मेदारी भी उसे मिल गई थी। वैदेही के प्रति सभी का स्नेह अब इतना बढ़ गया था कि वे किसी को गीली मिट्टी पर पैर न रखने का आदेश भी दे डालती। सभी उसके इन आदेशों का मुस्कुराते हुए पालन भी करते और कभी-कभी उसके साथ वात्सल्य भाव की अठखेलियां करने से भी बाज न आते.....

.... इन खुशहाल दिनों में एक भी असामान्य घटना नहीं घटी। वैदेही के लिए यह सबसे बड़ी घटना थी।

सर्दियों की कंपकंपाती सुबह से पहले वैदेही मंदिर में पहुंच जाती। सेवा भाव, मठ की परंपरा और पूजा अर्चना के दायित्वों के पीछे युवा मन का उल्लास अभी जीवित था।

शरद की ठंडी रातें अब अलविदा कहने की तैयारी में थीं और वसंतोत्सव की तैयारियां हर ओर झूम रहीं थीं। सिवाए मठ के ....

सरस्वती मंदिर इनके बीच सेतु कहा जा सकता था, जो मठ का हिस्सा भी था और वसंतोत्सव की तैयारियों का भी। देवी सरस्वती की आराधना के लिए वैदेही विशेष तैयारियों में लगी हुई थी। आराधना को संगीतमय बनाने के लिए वह पास के संगीत विद्यालय में भी वसंतोत्सव का न्यौता दे आई थी। इन्हीं तैयारियों में उसने संत जी से प्रसाद रूप में केसर का हलवा बनाने की विशेष अनुमति ली। सभी साधुओं को इस आयोजन में आमंत्रित कर वसंतोत्सव की तैयारियों को वह मठ की दहलीज के भीतर खींच लाई।

... वसंतोत्सव के पीले फूल मठ में वसंत की बयार ले आए। सुबह-सवेरे ही मंदिर की घंटियों ने उत्सव का संदेश हवाओं पर सवार कर दिया। वसंत राग में हुई देवी आराधना ने मठ के ऊबाऊ पर्यावरण में युवा मन के उल्लास तैरा दिए।

इस उल्लास में बहुतों ने अपने वैराग्य से पहले के दिन याद किए। तो कुछ शाम के ढलने तक उन्हीं उत्सवी दिनों की 'एलबम' खोले रहे.... वैराग्य में उल्लास की बात करना पाप है तो आज मठ में जमकर पाप हुआ।

उत्सवी शाम के विदा लेने पर वसंतोत्सव का समापन भी हो गया। इसी के साथ कुछ वैरागियों ने ईमानदारी से उस उल्लास का भी समापन कर दिया जो अनजाने में उनके भीतर उठ खड़ा हुआ था।

मठ का एक कोना अब भी ऐसा था जहां न वसंतोत्सव पहुंचा था और न ही उसके विदा लेने की दरकार थी। यह कोना संत जी की साधना का था। वे तब भी ध्यान में तल्लीन

थे और अब भी। इस कोने पर न किसी को आश्चर्य था और न ही कोई आपत्ति। संत जी की छवि यह बताने के लिए तैयार खड़ी थी कि वे ऐसे ही हैं।

... मठ के शेष साधुओं के साथ वैदेही के इस विश्वास ने एक कवच और ओढ़ लिया कि संत जी सचमुच संत हैं। घोर संत। अक्षुण्ण संत। भौतिक जगत से बहुत दूर के संत।

देवी के द्वार पर पर्दा डालकर वैदेही बाहर आई ही थी कि उसकी आंखें संत जी की देह से टकराईं। .... संत जी सचमुच संत हैं। घोर संत। अक्षुण्ण संत। उसके भीतर से आई आवाज़ फिर भीतर ही प्रवेश कर गई और उसने संत जी को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

संत जी ने बड़ी शालीनता से उसका अभिवादन स्वीकार करते हुए पूछा, 'कैसा रहा तुम्हारा वसंतोत्सव?'

वैदेही ने भी नन्हीं बच्ची की उच्छृंखलता से दिन-भर का सारा हाल बताना शुरू किया...

'सुबह-सवेरे की मंदिर की सफ़ाई ..... देवी स्नान... श्वेत वस्त्र... वसंत राग... आराधना.... केसर का हलवा ... उमंग .... उत्साह .... आदि... आदि....'

'जानती हो वसंतोत्सव क्यों मनाते हैं?'

वैदेही की जवाबों की श्रृंखला तोड़ते हुए संत जी ने दूसरा सवाल किया।

'हां क्योंकि इसी दिन के बाद से प्रकृति वसंत का पुष्पित आंचल ओढ़ती है,' वैदेही ने उत्तर दिया।

अचानक संत के चेहरे के भाव उसे कुछ बदले हुए नज़र आए। जैसे वह यह नहीं कुछ और सुनना चाहते हों।

पुरुष के भावों का बदलना कच्ची आंखें भी जान जाती हैं।

बदलते भावों ने वैदेही के उल्लास की रफ़्तार पर रोक लगा दी और उनकी जगह आशंकित कौतुहल आ बैठा।

खुद को दृढ़ करते हुए वैदेही ने अपने-आप से एक बार फिर कहा, 'संत जी सचमुच संत है। घोर संत। अक्षुण्ण संत।'

'इसे मदनोत्सव भी तो कहते हैं न वैदेही। प्रेम के देवता कामदेव का उत्सव' कहते हुए संत जी ने आगे बढ़कर वैदेही का हाथ झपट लिया।

जितनी तेजी से संत जी ने वैदेही का हाथ झपटा, उससे भी ज़्यादा तेजी से वैदेही ने अपना हाथ उनके चंगुल से छुड़ाया और अपनी कुटिया की ओर दौड़ आई ......

'..... घोर संत। अक्षुण्ण संत।' वहीं टूटकर बिखरा रह गया था जहां उसने वैदेही का हाथ झपटा और वैदेही ने अपना हाथ छुड़ाया।

संतों की कुटिया में दरवाज़े नहीं होते जिन्हें बंद किया जा सके, वैदेही को आज पहली बार यह एहसास हुआ।

कच्ची मिट्‌टी पर बिना बिछौने के लेटी तो मालूम हुआ कि उसका दिल अब भी बहुत तेज धड़क रहा है।

उसका चित्त उसे धिक्कारने लगा कि उसने संत जी को एक ज़ोर का तमाचा क्यों नहीं मारा। इससे ज़्यादा ग्लानि उसे इस बात पर हुई कि कलियुग में ईश्वर ने स्त्रियों को श्राप देने की शक्ति क्यों नहीं दी .....

.... अब वह क्या करे?, क्या मठ छोड़ दे? सिर्फ संत जी ही तो थे जिन पर वह सबसे ज़्यादा विश्वास करती थी। वे ही तो थे जिनके सामने जाने पर उसे कभी खुद को छुपाने की ज़रूरत नहीं पड़ी। और मठ में रहने की अनुमति भी तो उन्होंने ही प्रदान की थी....।

... दशम अखाड़े के साधुओं में से सबसे श्रेष्ठ साधु की इस असामान्य घटना ने उसे रात-भर सामान्य नहीं होने दिया।

सुबह स्नान के बाद जब वह देवी आराधना को मंदिर में आई तो द्वार पर ही उसके पैरों में कांच के कुछ शब्द चुभने लगे। यह वही शब्द थे जो पिछली रात यहां टूटकर बिखर गए थे...

इस चुभन ने वैदेही का मठ छोड़ने का निर्णय बदल दिया।

'वैदेही उस साधु के दुस्साहस पर मठ नहीं छोड़ेगी जो संत नहीं है।', उसने आत्मालाप किया।

संत जी संत नहीं हैं।

केवल औरों के संबोधन पर ही कोई साधु संत नहीं हो जाता। तब तक जब तक उसके भीतर का पुरुष ज़िंदा है।

वे वैरागी हैं, पर महात्मा नहीं।

साधु हैं किंतु संत नहीं।

वह उनके दुस्साहस को अपनी शुचिता से बार-बार खंडित करेगी। वसंतोत्सव की वह रात अब दोबारा नहीं आएगी, लेकिन संत जी को गिरना होगा बार-बार अपनी नज़रों में। खंडित होना होगा वैदेही की शुचिता के सामने।

ooo

हिन्दी कहानियों का मूल्यांकन

❑ शेख मुहम्मद कल्याण

जम्मू-कश्मीर एक अहिन्दी भाषी प्रदेश है, जिसमें लिखा जाने वाला हिन्दी साहित्य, अखिल भारतीय स्तर पर आंका जा सकता है बल्कि सीधे तौर पर कहा जाए तो जम्मू-कश्मीर के बहुत से साहित्यकारों को राष्ट्रीय स्तर की ख़्याति प्राप्त है, कविता की बात करें तो जम्मू-कश्मीर में हिन्दी कविता का स्तर काफी ऊँचा रहा है, प्रत्येक वर्ष कई साहित्यिक कृतियां हिन्दी की प्रकाशित होती हैं, इसी तरह नाटक, उपन्यास और कहानियां भी लिखी जाती रही हैं, और लिखी जा रही हैं।

इसी ज़मीन से चार कहानियां समीक्षा के लिए पहुँची, चारों सशक्त कहानीकारों की कहानियां हैं।

निम्नलिखित कहानियों की समीक्षा इस पत्र में की जा रही है–

1. आधी नदी का सूरज : डॉ० संजना कौल
2. कसाईबाड़ा : नरेश कुमार 'उदास'
3. भरोसा : शकुंत दीपमाला
4. साधु तुम संत नहीं हो : योगिता यादव

आधी नदी का सूरज

संजना कौल कहानी के क्षेत्र में जाना-पहचाना नाम है। संजना की कई कहानियों ने जीवन के उतार-चढ़ाव, विस्थापन की पीढ़ा को चित्रित किया है। अमावस जैसी काली रातों को जिन्दगी की चांदनी से रंगीन कर देना। इसी तरह ''आधी नदी का सूरज'' शीर्षक से कहानी में एक बीमार लड़की का पात्र है, शिवानी जो कई बार अपनी बीमारी से बहुत चिढ़ जाती है तभी उसका मित्र उसे समझाता है कि तुम एक बहादुर लड़की हो, एक सच्चा दोस्त हमारी जिन्दगी में कितना अहम हो सकता है, जो समय-समय पर, शिवानी जैसे पात्र में इच्छा शक्ति जागृत करने का प्रयास करता है। कहानी में, कथावस्तु जैसी भी है परन्तु कथानक, और शिल्प के आधार पर एक सफल कहानी है, ''आधी नदी का सूरज'' जीने की अपार जीजीविषा, बीमारी के चलते भी जिन्दगी पर विजय पाना, हालात पर काबू पाना, इसका जीवंत उदाहरण संजना की कहानी में देखा जा सकता है। कहानी

में बौद्धक सघनता की कमी को अशोक वाजपेयी ''शिल्प और कथाभाषा में प्रयोगशीलता को लेकर कथाकारों की उदासीनता के रूप में देख रहे थे, लेकिन ''आधी नदी का सूरज'' में शिल्प भी और कथाभाषा भी सहज रूप से देखी जा सकती है। लेखिका ने सहज कौशल से बीमार अवस्था में खुद से टकराते हुए, एक दोस्त की दोस्ती का सजीव चित्रण कहानी में किया है। आधुनिक शिक्षित नारी स्वतंत्र व्यक्तित्व के प्रति सचेत रहती है, वह अपनी पहचान के लिए हर समय हर तरह से तैयार रहती है, निश्चित रूप से उसका सामना पुरूष प्रधान मानसिकता से भी होता है। इसी तरह का एक प्रसंग इस कहानी में भी आया है, जब एक पुराने दोस्त राजेश की मानसिकता से शिवानी का पाला पड़ा था। कहानी में केवल राजेश ही नहीं समाज में कई ऐसी मानसिकताएं है, जिनसे शिवानी जैसी कई लड़कियों को जूझना पड़ता है।

कसाईबाड़ा

यह कहानी कथावस्तु में अपने शीर्षक पर पूरी तरह से न्याय संगत कहानी है कैसे लड़कियों के लिए उनका ससुराल ''कसाईबाड़ा'' बन जाता है, चन्द पैसों के लिए, इसी कथावस्तु पर अधारित है ये कहानी, जो हमारे समाज का विद्रुप चेहरा हमारे सामने रखती है। हालांकि इसी कथावस्तु को बहुत से कहानीकारों द्वारा बहुत बार लिखा जा चुका है, उस लिहाज से कहानी में नयापन कुछ भी नहीं है, वो भी ऐसे समय में जब समकालीन दौर में कहानियों पर काफी चिंतन-मनन हो रहा है और कहानी की दिशा में कई तरह के प्रयोग हो रहे हैं। ऐसे समय में ''कसाईबाड़ा'' जैसी कहानी पाठक तक अपनी पहचान बनाने में कामयाब नहीं हो पाती। जबकि एक बात जो मुख्य रूप से इस कहानी में उभर कर आई है कि कैसे जेठानी दहेज की आड़ में अपनी देवरानी को उसके पति विचित्र से दूर रखती है, ताकि उसके शारीरिक सम्बंध विचित्र से बने रहें। देवर-भाभी के अनैतिक सम्बंध इस कहानी में मुख्य रूप से उभर कर सामने आए हैं। आज जब चारों और स्त्री विमर्श की बातें, बहसें, वाद-विवाद चल रहे हैं। ऐसे में ''कसाईबाड़ा'' को लेखक अगर नए तरीके से पाठकों तक लेकर आता तो, ज़रूर यह कहानी एक सफल कहानी होती। कहानी के कुछ हिस्से हमें सोचने को मजबूर ज़रूर करते हैं जैसे जेठानी अपनी देवरानी को घर आए अपने भाई के पास अकेला छोड़कर चली जाती है। प्रताड़ना से दुःखी होकर जब कल्पना मायके आती है। तो वहां भी भाभी के कहने पर भाई उसे फिर ससुराल छोड़ आता है, एक झूठे दिलासे के सहारे, ''तुम्हें कुछ नहीं होगा।''

भरोसा

यह कहानी नवाबों का समय, परिवेश, शराब, दौलत अय्याशी को केन्द्र में रखकर लिखी गयी है। कहानी में वो तमाम तत्व मौजूद हैं जो कि पठनीयता बनाए रखने में कहानीकार

को चाहिए होते हैं। इस कहानी को अगर आज की प्रासंगिकता से जोड़ें तो कतई बुरा नहीं होगा वही साजिशों का ताना-बाना जो दौलत हासिल करने के लिए बुना जाता रहा है। इतिहास गवाह है हम समय की खूंटी पर ऐसा सच टंगा हुआ जरूर देखते हैं कि जब पिता की ईमानदारी से कमाई दौलत को बेटे ने अय्याशी में न लुटाया हो। "भरोसा" कहानी में भी एक स्त्री नफीसा पांच वक़्त की नमाज़ी पर भाई की जायदाद का भार पड़ जाता है कि वो वसीयत के मुताबिक इसे अपने भतीजे को सौंप कर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त होना चाहती है, लेकिन भतीजे को तो शराब, शवाब, जुए से फुर्सत मिले तब न। जायदाद हाथ से फिसलते देख छोटे नवाब ने अच्छा बनने के तमाम ढोंग रच डाले, लेकिन कब तक, झूठ के तो पैर नहीं होते, जैसे ही नफीसा को छोटे नवाब के ढोंग का पता चला तभी वहां कहानीकार ने नारी को एक कठिन निर्णय लेने के लिए प्रेरित करवाया, और उसने, बिना एक पल गंवाए वसीयत बदल डाली जिसमें सारी जायदाद औकाफ़ के हवाले कर दी, एक पांच वक़्त की नमाज़ी औरत में इस तरह की चिंगारी भरकर कहानीकार ने जो निर्णय नफीसा से करवाए, उस से नारी का सम्मान बढ़ जाता है। समय आने पर नारी को कमजोर समझने की कोई भूल न करे अन्य कहानियों की तरह इस कहानी में भी नारी मुख्य रूप से कहानी में उभरकर आई है। कहानी को हम आज के संदर्भ में भी देख सकते हैं क्योंकि आज भी ऐसे हजारों अमीरजादे मिल जाऐंगे जो दौलत के लिए छोटे नवाब की तरह ही ढोंग रचाते हैं कभी अपना अपहरण करवा कर और कभी अच्छा बन कर।

साधु, तुम संत नहीं हो

एक ऐसा यथार्थ जो रोज ही कई माध्यमों से हम तक पहुंच रहा है, इसका सशक्त चित्रण योगिता यादव की कहानी "साधु, तुम संत नहीं हो" में किया गया है। इस कहानी की कथावस्तु हमारे समाज के उस वर्ग से जुड़ी हुई है। जिस वर्ग को हमारा समाज बड़े आदर के साथ देखता है, जिस वर्ग से हमारी धार्मिक आस्थाएं जुड़ी हुई हैं। इस वर्ग की कुंठित मानसिकताओं पर तीखा प्रहार कहानीकार द्वारा किया गया है, कहानी मठ से शुरू होते हुए दृढ़ संकल्प पर समाप्त होती है। मठ में औरत का होना वर्जित था, लेकिन तमाम विरोध, परम्पराओं और दलीलों के बीच वैदेही को मठ में रहने की इजाज़त मिल गयी। स्त्री को देखते ही जैसे समाज के कुछ लोग अपनी सोच को अनियंत्रित कर बैठते हैं, ऐसे ही एक दिन वसंतोत्सव की तैयारियों में वैदेही ने संत से केसर का हलवा बनाने की अनुमति ले ली। बड़े उल्लास के साथ वसंतोत्सव का समापन हुआ लेकिन क्षण-भर में ही वैदेही ने पुरूष के बदलते भाषों को संत की आँखों में देख लिया था। साधु समाज में एक औरत कितनी ही सुरक्षित रह सकती है इसका उदाहरण वैदेही को उस समय मिला जब वसंतोत्सव को प्रेम के देवता कामदेव का उत्सव कहते हुए संत ने आगे बढ़कर वैदेही का हाथ पकड़ लिया। उस समय हाथ तो छुड़ा लिया वैदेही ने, परन्तु उसे तभी एहसास हुआ कि संतों की कुटिया के दरवाज़े नहीं होते, जिन्हें बन्द किया जा सके क्योंकि यहां विश्वास के दरवाजे

होते हैं, एक ऐसा विश्वास जो व्यक्ति निस्वार्थ होकर जीता है। परन्तु झूठे समाज, विश्वास, मूल्यों और आडम्बरों को ओढ़ने वाला समाज ही था साधुओं का मठ भी। औरत कहीं भी सुरक्षित नहीं है। वैदेही को जरूर ऐसा लगा लेकिन कहानीकार ने यहां नारी चेतना का जो दीपक वैदेही के दिल में जलाया वह थोड़ा विचलित जरूर करता है कि क्या जो प्रण वैदेही करती है कि वह मठ नहीं छोड़ेगी, वह यहीं रहकर संत के दुस्साहस को अपनी शुचिता से बार-बार खंडित करेगी जो कि वैरागी हैं पर महात्मा नहीं। जिन उद्धत लहरों की चपेट में बड़े-बड़े पीपल के पेड़ धराशायी हो जाते हैं। ऐसे में क्या सचमुच वैदेही अपनी शुचिता से संत को खंडित कर पाएगी, कहानीकार ने एक प्रश्न हमारे सामने खड़ा कर दिया है।

चारों कहानियों में एक बात समानता से देखी गयी कि चारों कहानियों का परिवेश अलग, विषय वस्तु अलग, स्थितियां अलग, लेकिन इसके बावजूद चारों कहानियां स्त्री के इर्द-गिर्द घुमती हुई रहीं। यहां पर परम्परा और अपरम्परा के प्रति विरोध। कहीं दोस्ती मुख्य रूप से उभर कर सामने आई तो कहीं स्त्री अपनी ही स्त्री जाति से अपमानित हुई। कहीं स्त्री शोषित होते-होते बची, जहां वह अपने को सबसे सुरक्षित समझने की भूल कर रही थी। वहीं दूसरी और भरोसा कहानी में बुआ उस रूप में उभर कर आई जहां उसे शराबी भतीजे से जायदाद बचानी थी। मन्नू भंडारी के शब्दों में कहें तो, "वही स्त्रियां बोल सकती हैं, जिन स्त्रियों के पांव के नीचे अपनी जमीन है। वे ही अपनी तकलीफों को उजागर करती हैं। आज तक स्त्री अपने ऊपर हुए अत्याचारों को सह कर भी मौन रहती थी। उसका संघर्ष तो अपनी ही जाति से था। स्त्री से आज हमारे लेखकों के पास समाज व्यवस्था, अंधविश्वास, रूढ़ि-रीतियां, जाति प्रथा, स्त्री-पुरूष भेदभाव, सांप्रदायिकता जैसी अनेक कुप्रथाएं ऐसी हैं, जिन पर बहुत-सा लिखा जा सकता है। जय प्रकाश के शब्दों में कहें तो पिछले पंद्रह वर्षों के दौरान हिन्दी कहानी में एक नई तरह की बौद्धक सजगता आई है।

जाहिर है, बौद्धिक सजगता नए पाठ की पहचान है। यह कहानी के नए सर्जनात्मक आयाम के खुलने का संकेत है।

ooo

डोगरी कहानी

काले हाथ

❑ मूल - डॉ० ओम गोस्वामी
❑ अनु० - डॉ० रतन बसोत्रा

सांय - सांय करता सन्नाटा था।

उस नौजवान को इस सुनसान जंगल में छोड़कर उसका मित्र वापिस चल पड़ा था। चारों ओर ऊंचा-ऊंचा घास और अमरीकी जड़ी थी। हवा का न कोई झोंका, न कीट-पतंगों का शोर, डरावना-सा वातावरण। यहां आना था काली ऐनक वाले उस आदमी को, जिसने कई नौजवानों की जेबें रुपयों से भर दी थीं। और कइयों को सीमा के उस पार भेजा था। पर, उसने तय कर रखा था कि सीमा पार जाने की बात पर वह साफ़ कह देगा कि वह गरीब ज़रूर है, पर मां-बाप की इकलौती संतान है। अगर आप उसे धनी बनाना चाहते हैं तो यहीं बना दीजिए, सीमा पार जाना उसके लिए मुमकिन नहीं है.....

इसी उधेड़-बुन में खोए उसे याद आया कि उसके मित्र के घर की दशा एक ही रात में किस प्रकार बदल गई थी। फटे-पुराने कपड़ों के स्थान पर विदेशी कपड़े, घिसी हुई बास्काटों के स्थान पर गर्म जैकटें आ गईं थीं। मित्र के जिन भाइयों को मीलोंमील नंगे पांव चलने से बिवाइयां फूट आती थीं। वे अब स्कूटर और मोटरसाइकलों से नीचे नहीं उतरते। उसके एक भाई ने मकान बना लिया था, और दूसरे ने मैटाडोर खरीद ली थी। तीसरे ने बलपूर्वक ज़मीनो पर अधिकार जमाने का धन्धा शुरू कर लिया था, उनके हाथ न जाने कौन सा कुबेर का खजाना लगा था। अन्ततः उसने मित्र से पूछ ही लिया - ''मित्र कहीं आपके हाथ ज़मीन में गढ़ा धन तो नहीं लग गया? कल का सोचो और आज की स्थिति देखो।'' मित्र ने हंसते हुए कहा- ''भाई यह करिश्मा उस मेहमान का है, जो सीमा के उस पार से आया है। लोगों की गरीबी दूर करने में वह कोई कसर नहीं छोड़ता।'' नौजवान ने ललचाते हुए कहा- ''क्या उन्हें हमारी गरीबी नहीं दिखती?''

मित्र ने उत्तर दिया - ''भाई कलईगिर तो बर्तनों को कली करता है पर, बर्तन उसके पास आएं तब न।''

वह नौजवान तुरन्त बोला - ''मित्र मेरी जवानी को ग़रीबी की ज़ंग खाए जा रही है। इसे भी कलई करवा दो।''

मित्र ने हंसते हुए कहा - ''लो यह भी कोई काम है? आज शाम को ही तुझे उस विशेष मेहमान से मिलवाए देता हूं।''

वह नौजवान खुश होकर बोला - ''मुझे शीघ्र ही उस फरिश्ते से मिलवाओ।''

मित्र ने कहा – ''वह फरिश्ता तो अकेले में मिलता है। क्योंकि यह एक खतरनाक काम है, हर काम को छुपाकर करना पड़ता है, पुलिस से भी बचना पड़ता है।''

उसने पूछा – ''पर मेरा उससे मिलना हानिकारक तो नहीं होगा।''

उत्तर में मित्र ने कहा – ''सभी लाभ ही देखते हैं, ज़ंग उतार कर बर्तन को कलई करवानी हो तो थोड़ी बहुत आंच भी सहनी पड़ती है।''

शाम को उसे जंगल के पास छोड़ कर जाते हुए मित्र उससे बोला – ''यहां धैर्य से प्रतीक्षा कर। वह स्वयं तुझ से मिलने आएगा।''

उस नौजवान ने मित्र से पूछा – ''पर मैं उसे पहचानूंगा कैसे?''

''तू इसकी चिन्ता मत कर, वह स्वयं तुझे पहचान लेगा।'' कह कर मित्र जाने लगा तो बिना पीछे देखे बोला – ''उसने काली ऐनक पहनी होगी।''

''काली ऐनक! अंधेरे में?'' उसे हैरानी हुई।

''हमारी भलाई चाहने वाले ये मेहमान अपनी पहचान छुपाए रखते हैं। फिर वह काली ऐनक पहने जा चेहरे पर मुखौटा लगाए, तुझे कौन-सी उसकी तस्वीर खींचनी है।''

नौजवान ने कहा – ''हां मुझे अपने काम से मतलब है।''

फिर वह काली ऐनक वाले की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ ही देर में उसे चक्कर आने लगा। आस-पास फैली जड़ी की दुर्गन्ध आ रही थी। वह सिर पकड़ कर बैठ गया। उसका जी मितला रहा था। उसे लग रहा था मानो अभी उल्टी आ जाएगी। तभी उसके कान में आवाज़ पड़ी .... वह वालेकम सलाम कहते हुए खड़ा हो गया। काली ऐनक वाला उसके सामने खड़ा था। वह जड़ी की दुर्गन्ध और मन की सारी तकलीफ भूलकर उसे देखता रह गया। काली ऐनक वाले ने बिना कुछ पूछताछ किये कहा –

''हम तेरे विषय में सब कुछ जानते हैं। यह ले थैला। इसे घर ले जाकर अपनी दरिद्रता को धो डाल।''

''जी ठीक है, पर मुझे इसके बदले में क्या करना होगा?''

''तुझे सिर्फ मिली काम करना है।'' काली ऐनक वाले ने उत्तर दिया।

''जी मैं कुछ समझा नहीं। क्या मुझे किसी 'मिल्ल' में काम करना होगा?'' उस नौजवान ने पूछा।

''नहीं अहमक, मिली का मतलब है अपने मज़हब का काम। अपनी कौम के साथ मेल-मिलाप बनाए रखना। लोगों के साथ मिल-जुल कर रहना। जब काम पड़ेगा तो तुझे बता दिया जाएगा।''

''जी ठीक।''

अचानक उस नौजवान को उल्टी आ गई वह बैठकर कै करने लगा।

काली ऐनक वाले ने कहा - ''लगता है तेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है?''

''जी, स्वास्थ्य तो अच्छा है, पर इस जड़ी में काफ़ी देर से खड़ा हूं इसलिए जी मितला रहा है।''

''हमें भी इसी जड़ी की तरह फैल जाना है। जा, घर जाकर आराम कर।'' कह कर काली ऐनक वाला एकाएक उस जड़ी वाले जंगल में गायब हो गया।

रुपयों का थैला लिए वह घर को ओर चल पड़ा। उसके कदमों में अनोखा उत्साह था। दिल की धड़कन इस कदर बढ़ गई थी मानो ढोल बज रहा हो। अपने आंगन में पहुंचते ही उसने देखा - पिता मोच आए पांव में तेल की मालिश कर रहा है, मां सब्जी काट रही है। पास ही टोकरियों का ढेर पड़ा है जो अभी पूरी तरह से तैयार नहीं हुई हैं। बेटे के मुख पर अधिक खुशी झलकती देखकर मां ने पूछा - ''यह थैला कैसा है रे?''

उसने बड़े हर्ष से कहा - ''यह थैला नहीं मां हमारे भाग्य का पिटारा है।''

यह सुनकर अब्बू ने गुस्से से टोकरी को पीछे धकेल दिया। मां का गुस्सा भड़क उठा और उसने गुस्से से कहा - ''दफा हो जा यहां से, उस रास्ते पर चलना है तो इस घर में तेरे लिए कोई जगह नहीं है।'' इतना कहकर मां ने उस के हाथ से थैला छीन कर बाहर फेंक दिया। ''मैं अच्छी तरह जानती हूं इस थैले की कहानी को।'' मां की इस हरकत पर उस नौजवान को बड़ा गुस्सा आया, पर अन्दर-ही-अन्दर वह उसे पी गया।

जैसे-जैसे समय बीतता गया रुपये खत्म होते गए। खाने-पीने और मन बहलाव में कई सुबह और शामें बीत गईं। एक दिन दोपहर को ढाबे पर बैठा वह तंदूरी मुर्गा खा रहा था, तभी उसका मित्र सिर पर आ खड़ा हुआ। उसने ढाबे वाले को आवाज़ दी - ''रशीदे! ओ रशीदे! साहब के लिए मुगलई मुर्गा ले आ।''

मित्र ने कहा - ''तेरे लिए हुक्म है।''

''किसका! काली ऐनक का?'' उसने पूछा।

''हां।''

''मेरे पास भी वह पहले वाला सरमाया खत्म हो चला है। मैं स्वयं भी उनसे मिलना चाहता था।''

''अगला थैला मिलने से पहले तुझे अपनी परीक्षा देनी पड़ेगी।'' दोस्त ने कहा।

मुर्गे की हड्डी मानो उसके गले में अटकने लगी थी – "कहीं दूर जाने का आदेश तो नहीं?" उसने शंका व्यक्त की।

"मेरी बला से। यह तो तुझे वही बता सकता है। तवी के किनारे बनजारों की बस्ती में वह तुझे मिलेगा।" संदेशा देकर मित्र वापिस चला गया।

शाम को वह बनजारों की बस्ती में मटरगशती कर रहा था, इतने में एक झोंपड़ी से एक हाथ बाहर आया – "अन्दर आ जाओ।" आवाज़ सुनकर उसके कान खड़े हो गए, आवाज़ पहचानी-पहचानी सी थी।

अंधेरी झोंपड़ी में भी उसने काली ऐनक पहनी थी। "जी हुक्म?" उसके मुख से एका-एक निकल गया। उसने देखा काली ऐनक का हाथ दूसरे हाथ में पकड़े थैले के बीच चला गया। वैसा ही थैला था जैसा उसे पहले दिया गया था। फिर उससे हाथ बाहर आया तो काली ऐनक वाले ने कहा – "ये दो अनार हैं तेरे लिए .....।"

नौजवान घबरा गया, उसने उसकी बात काटते हुए कहा– "ये अनार हैं.... ये तो ग्रेनेड हैं।"

काली ऐनक की कड़कती हुई आवाज़ आई – "जानकारी बढ़ाने का शुक्रिया। आप को प्रश्न पूछने या शक ज़ाहिर करने का अधिकार नहीं है।"

"जी मुझे ये अनार नहीं चाहिए। और कोई सेवा बताएं।"

"पहली ही अजमाइश में नाकाम।" काली ऐनक ने थैला नीचे छोड़कर काली नली वाली पिस्तोल तान ली– "इन्कार का मतलब है बगावत। बगावत की सजा है गोली। सिर्फ तुम्हें नहीं, तुम्हारे माता-पिता को भी। क्या तू चाहेगा कि कोई अनजान हाथ तेरे घर में उस समय एक अनार फेंके जिस समय तेरे माता-पिता खाना खा रहे हो......?"

उसने झट से कहा – "नहीं।"

फिर अपने-आप उसके हाथ आगे बढ़ गए – "पर मुझे ये अनार फोड़ने आते नहीं।"

काली ऐनक वाले ने उसके हाथ में थमाते हुए कहा– "इनका क्या फोड़ना। यह कोई कठिन काम नहीं है। सिर्फ हाथ में लेकर दांतों से पिन्न खींचनी और भीड़ पर इस प्रकार फेंक देना जैसे पत्थर फेंकते हैं। पिन्न निकालने के बाद अपने हाथ में अधिक देर तक नहीं रखना है, यह सावधानी रखनी जरूरी है। शहर के दो भीड़-भाड़ वाले क्षेत्रों में ये दो शगूफे फेंकने हैं, बस यही ताकीद है।"

"अगर मैं पकड़ा गया तो?"

काली ऐनक वाले का गुस्सा भड़क उठा – "इस श्रेणी में शामिल होने से पहले यह प्रश्न पूछना चाहिए था। मिली काम में कुर्बानी के ज़ाम पीने पड़ते हैं। शहीदों को अप्सराएं मिलती हैं।"

"अप्सराएं तो मरणोपरान्त मिलेंगी, पर पहले क्या मिलेगा?" उसने डरते-डरते पूछा।

काली ऐनक ने एक सौदागर की तरह कहा – "एक सफल आप्रेशन का पचास हजार....।"

"और दो का एक लाख?" उसने तुरन्त पूछा।

काली ऐनक वाले ने पिस्तोल अपने चोगे में रख ली औ थैला उठाकर बाहर निकलते हुए कहा– "बिलाशक, एक लाख।"

उसने झोंपड़ी में पड़े एक लिफाफे में दोनों अनार अच्छी तरह रख लिए और बाहर निकल आया। मन में कई तूफान उठने लगे। माता-पिता की नसीहत याद आई। थैला लौटाने के लिए कहे गए शब्द उस समय उसे विष के समान लगे थे। अब पीछे मुड़ने का कोई रास्ता उसे नज़र नहीं आ रहा था। पीछे की हुई सारी मौज-मस्ती, होटलों में खाना-पीना उसके मन में एक खौफ पैदा कर रहा था। अब तो उसकी स्थिति सांप के मुंह में छछुन्दर की सी थी, जो न उसे खा सकता है और न ही छोड़ सकता है। अब वह यह काम करे तो भी मौत, न करे तो भी मौत। पर यह बात ज़रूर है कि दो पटाखे फोड़ने का मूल्य एक लाख रुपये है- दहशत की कीमत। अगर कहीं उसे इन दो अनारों के साथ पकड़ लिया जाए तो-तो बाकी की सारी उम्र जेलों में सड़ना तय है। यह सोच आते ही उसे सर्दी में भी पसीने छूटने लगे थे। वह सोच रहा था कि लिफाफे में बंद इस बला से जितनी जल्दी हो सके छुटकारा पा लिया जाए। वह पैरों में शक्ति भरकर शहर के भीड़ भरे बाजार की ओर चल पड़ा। वह यह देख रहा था कि किस स्थान से यह एक अनार फेंका जाए। पर उस समय एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति उस के लिफाफे से टकराता हुआ निकल गया। वह घबरा गया और उसने मन-ही-मन कहा – "बेवकूफ बिन मौत मरता और मुझे भी मरवाता।" तभी उसकी दृष्टि भीड़ पर पड़ी। उस भीड़ में एक परिचित चेहरा दिखा उसका सहपाठी वचित्र सिंह। पर दहशत के काम में कौन मित्र? ये सारी भीड़ अपरिचित है। वह लाला भी जो हमेशा उसके काम आता रहा है- जिससे उसकी हर छोटी-बड़ी ज़रूरत पूरी होती आई थी। वह अपनी दुकान बंद कर रहा था। शायद उसे कहीं जाना था। पर ज़्यादा क्यों सोचना, यह जान-पहचान तो उसके इरादों को कमज़ोर कर देगी... उसका हाथ लिफाफे के अन्दर चला गया, और आगे कुछ सोचने से पहले उसने अनार की पिन्न खींची और तुरन्त जोर से भीड़ पर फेंक दिया। और खुद वह तेज़ी से गली में घुस गया। और दौड़ता हुआ आगे बढ़ गया। अचानक एक ज़ोरदार धमाका हुआ, शोर शराबा हुआ, जिस गली से वह गुज़र रहा था पूरी कांप उठी। खिड़कियों के शीशे टूट गए। आसमान से कुछ मानवी अंग उसके आगे गिरे, टांगें, बाजू, उंगलियां और फिर एक गर्दन। उसने देखा, पहचाना। यह तो वही लाला था जो दूकान बंद कर रहा था। मन में एक गूंज उठी- ओ! अपने कठिन समय का एक सहारा मार डाला- अरे दहशतगर्द। बेकसूर फरिश्ता भी तेरी बेवकूफी की बलि चढ़ गया।

दौड़ते-दौड़ते वह दूर निकल आया। अब वह पुनः एक भीड़ भरे बाजार में था। वह इस सोच में था कि लिफाफे वाली इस चीज़ से जितनी जल्दी पीछा छुड़ा लिया जाए उतना ही अच्छा है। इस अनार को सिरहाने रख कर सोने से बेहतर है इसे जिस कार्य के लिए लाया गया है, उसी में लगा दिया जाए। और फिर विलायती शराब पीकर कुछ दिन मदहोशी में रह लिया जाए....। जिस स्थान पर वह तंग गली भीड़ वाले बाजार से मिलती थी, वहां बिजली के खंभे के पास खड़े होकर उसने इधर-उधर देखा। अपनी धुन में मस्त लोगों का दरेया सा बहता जा रहा था। लोग आपस में बातें कर रहे थे कि यह जो धमाका थोड़ी देर पहले हुआ है, वह बम्ब का ही धमाका था पटाखे का नहीं। भीड़ में कुछ लोग जल्दबाजी में थे और जल्दी-से-जल्दी वहां से निकल जाना चाहते थे। लोग घबराए हुए थे और कह रहे थे- ''भागो-भागो निश्चय ही यह बम्ब फटा है। कुछ ही देर में कर्फ्यू लग जाएगा।''

उसने हाथ में पकड़े लिफाफे को देखा। उसमें से अनार निकाला। फिर निर्दयता से भीड़ को देखा। अचानक मन में प्रश्न उठा – ''तेरी इन अनजान लोगों से क्या दुश्मनी है? दुश्मनी मेरी नहीं पर काली ऐनक वाले की तो है- तभी उसे उस भीड़ में काली ऐनक पहने एक व्यक्ति दिखा ....

वह, नहीं-नहीं, यह तो सिर्फ भरम है। काली ऐनक वाले मेहमान तो सिर्फ वीरानियों के ग्राहक हैं, भीड़ में उनका क्या काम?''

उसने जल्दी से अनार हाथ में लिया, दांतों से पिन्न खींची और भीड़ पर निशाना साधने लगा। बाजार में सामने वाली दुकान पर कोई परिचित चेहरा था। ''ओ हो अब्बा। अब्बू जान।'' उसका अब्बा सिर पर से टोकरियां उतार कर नीचे रख चुका था, और दुकानदार से पैसे ले रहा था। अब्बू ने हमेशा उसे नेक रास्ते पर चलने को कहा था। हमेशा मेहनत की प्रशंसा की थी। और आज वही नेक नीयत आदमी उसके फेंके जाने वाले बम्ब की गिरफ्त में था। या मौला यह कैसी परीक्षा है... ?

समय तेजी से निकल रहा था। और अब्बू था कि जाने का नाम ही नहीं ले रहा था। ''क्या अब्बू को घर के लिए इसी वक़्त सामान खरीदना था? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि अनार की पिन्न वापिस अपने स्थान पर लग जाए, और आने वाली क्यामत रुक जाए।''

इसी सोच-विचार में ही एक ज़ोरदार गर्जना हुई और आसमान की ओर चली गई। बिजली की कड़कती हुई आवाज़ में उसने देखा कि वह जमीन पर गिर रहा है, उसके हाथ उसकी भुजाओं से अलग होकर आसमान की ओर जा रहे हैं। चारों ओर शोर मचा है। चीखो-पुकार हो रही है। उसकी आंखों के आगे अंधेरा छाता जा रहा है। बेहोशी की पकड़ मजबूत होती जा रही है।

ooo

डोगरी कहानी

एक सफर एक ज़िंदगी

❑ मूल – डॉ. ललित मगोत्रा
❑ अनु० – शेख मुहम्मद कल्याण

रवि सोच रहा था कि बीवी का रूठना कितनी बड़ी मुसीबत है, ये केवल बीवियों वाले ही समझ सकते हैं। रवि को बीवी वाले बने दो माह ही हुए थे। ये मुसीबत और भी बड़ी बन जाती है, जब बीवी कहीं बाहर रूठे। घर में रूठे तो आदमी बीवी की मिन्नतें करके, हाथ जोड़ के मना सकता है, पर घर से बाहर इस तरह की मिन्नतें करने के लिए बहुत जिगर चाहिए। शांतिप्रिया इस समय खिड़की से सटकर प्लेटफार्म की तरफ देख रही थी। ट्रेन चलने में अभी बीस मिनट बाकी थे। वो उसके पास बैठकर न उसे प्यार कर सकता था और न ही मनाने के लिए प्रेम-भरी बातें। कूपे के सामने एक धार्मिक-सा दिखने वाला अधकड़-सा जोड़ा बैठा हुआ था। उनके सामने दूसरी तरफ बड़े इत्मीमान से एक प्रौढ़ पर खूबसूरत औरत बैठी थी। धार्मिक जोड़े ने घर से लाए कम्बल को बड़े सलीके से बिछाया हुआ था और उसी पर मजे से वे दोनों बैठे हुए थे। एक तो औरत का भारी शरीर, ऊपर से उसने अपने मूंह, कानों को पूरी तरह दुपट्टे से ढक रखा था, मोटी-मोटी काली आंखों के मध्य में एक लम्बा तिलक उसकी धार्मिक आस्था का प्रतीक था। आदमी के भरे पूरे चेहरे पर चमक और सिर के पीछे सफेद-काले बालों की एक मोटी गांठ लगाए चुटिया और माथे पर अपनी बीवी की तरह ही एक बड़ा-सा चन्दन का तिलक था, वैसे तो वह हाथ में गीता प्रैस, गोरखपुर द्वारा छपी कोई धार्मिक, पुस्तक पढ़ रहा था, पर बीच-बीच में उसकी नज़र सामने बैठी खूबसूरत औरत पर भी फिसल रही थी। वो औरत उन लोगों की तरह खूबसूरत दिख रही थी जो अपनी उम्र से दस साल कम लगते हैं। उम्र की भट्टी के सेक में तप कर उसके चेहरे पर इतना तेज था, कि हर कोई उसे पीछे मुड़कर एक बार देखने के लिए मजबूर ज़रूर होता। खुशी, आत्म-संतुष्टी, और विश्वास जैसे उसके नयन-नक्श पर बस गए हों। फिल्मों व टी.वी. के डायरेक्टर मां के रोल वैसी ही शालीन, गरिमामयी और आकर्षक औरतों को ही देते हैं।

रूठने वाली तो ऐसी कोई बात नहीं थी, रवि ने अपनी बीवी से केवल यही पूछा था कि उसने अपनी दवाइयां साथ रख ली हैं या नहीं। आगे से शांतिप्रिया ने उसे कह दिया कि, इन बातों के लिए घर पर ही याद क्यों नहीं करवाया। रवि ने उसे कह दिया कि अपनी सेहत का ध्यान उसे खुद रखना चाहिए। बस्स फिर क्या था ? बात यूं बढ़ गयी कि झगड़े का रूप ले बैठी। रूठी शांतिप्रिया खिड़की के साथ सट कर बैठी थी, लेकिन रवि मन-ही-मन घुट रहा था और उसे अपने-आप पर खीझ भी हो रही थी क्यों... क्यों वो इस फालतू-सी बात को लेकर झगड़ बैठे ? वे इस सफर की शुरुआत ऐसे नहीं करना चाहता था। वह मन-ही-

मन सोच रहा था कि जैसे मैं सोच रहा हूं, शांतिप्रिया भी इसी तरह सोच कर झगड़ा खत्म कर दे, इसी मंशा के साथ रवि शांतिप्रिया के साथ सट कर बैठा भी पर शांतिप्रिया ने कंधा झटका कर अपने-आप को और खिड़की की तरफ मोड़ लिया। शांतिप्रिया के इस व्यवहार से सीट के दूसरी ओर बैठी उस अकेली औरत ने बड़े ध्यान से इनकी तरफ देखा। और रवि सीट से उठकर बाहर निकल गया। कम्पनी में काम अधिक होने के कारण रवि को शादी पर लम्बी छुट्टी नहीं मिली थी। इसी कारण हनीमून के लिए वह गोवा में केवल दो रातें ही ठहर सके थे। अब तो पूरे सप्ताह की छुट्टी लेकर असल में वही कसर पूरी करने जा रहे थे, पर शुरुआत में ही........।

"ले आ बेटा........ले आ" इस ऊंची आवाज़ से रवि का ध्यान टूटा तो उसने देखा कि एक ट्रैक सूट पहने अच्छी कद काठी वाला आदमी, सामान उठाए कुली के साथ दनदनाता हुआ डिब्बे में चढ़ा आ रहा है। उसने आते ही सीटों के नीचे, दायें-बायें देखते हुए कुली को कहा, "ले आ अटैची इस सीट के नीचे रख.........हां शाबाश......ये नीला बैग जरा उधर सरका और मेरा बैग उसके साथ रख दे।" जब उसे इत्मीनान हो गया कि सारा सामान एडजस्ट हो गया है तब उसने पचास का नोट कुली को थमाया और पीठ थपथपा कर कहा "जा बेटा, ऐश कर।" उसके बाद उसने पूरे कूपे का मुआयना किया। तीनों औरतों को नमस्ते की, चुटिया वाले और रवि के साथ हाथ मिलाया और धार्मिक दिखने वाले जोड़े के पास बैठता हुआ बोला "मेरा नाम केशव है" उसके बाद रवि को घूरने के अंदाज़ में देखने लगा रवि ने आहिस्ता से कहा "जी मैं रवि" केशव ने शांतिप्रिया की तरफ इशारा करते हुए पूछा "तो यह आपकी बीवी होंगी।" जी! रवि ने हां-में-हां मिलाई। फिर केशव ने अपना मुस्कुराता हुआ चेहरा चुटिया वाले की तरफ घुमाया, चुटिया वाले ने कहा "मेरा नाम धर्मपाल है" अपनी घरवाली का परिचय देने की उसने जरूरत नहीं समझी। सामने वाली सीट पर बैठी औरत ने केशव की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया और खिड़की से बाहर देखती रही।

रवि ने बड़ी शिद्दत से ये महसूस किया कि केशव का डिब्बे में आना ऐसे हुआ, जैसे खड़े पानी में किसी ने कंकर मार दिया हो। रवि ने सोचा कि केशव जैसे लोग किस मिट्टी के बने होते हैं, जिन्हें कोई झिझक नहीं, कैसे ये लोग आते ही इतना घुलमिल जाते हैं, आम तौर पर तो लोग हजारों मील का लम्बा सफर कर लेते हैं, लेकिन साथ वाली सवारी के साथ बात तक नहीं करते हैं। गाड़ी चल पड़ी.......केशव ने अपने जॉगिंग शूज़ खोलकर प्लास्टिक के लिफाफे से चप्पलें निकाल कर पहन लीं। फिर चुटिया वाले धर्मपाल की तरफ मुखातिब होकर बोला "गाड़ी समय पर ही चल पड़ी है।" धर्मपाल ने हां-में-हां मिलाकर हामी भर दी, उसने सामने बैठी औरत की तरफ भी देखा और फिर अपनी धार्मिक पुस्तक के क्षीरसागर में डूबने की कोशिश करने लगा। केशव ने एक बार फिर सारे कूपे का जायज़ा लिया। रवि ने जैसे नोट किया कि केशव की नज़रें सामने बैठी औरत पर कुछ क्षण टिकी रहीं इतने में चाय बेचने वाला एक लड़का डिब्बे में आया, केशव ने जोर से आवाज़ लगाकर उसे बुलाया और धर्मपाल को पूछने लगा "चाय पिएंगे"। धर्मपाल ने अपने पूरे परिवार की तरफ से कहा "जी हम चाय नहीं

पीते''। केशव ने फिर पूछा ''पक्का? पीते हैं तो ले लीजिए।'' धर्मपाल ने इन्कार में सिर हिला दिया। उसके बाद रवि और शांतिप्रिया को पूछा ''आप तो पी लेंगे न.......?'' फिर उत्तर जाने बगैर उसने उस अकेली बैठी औरत से पूछा ''मैडम आप चाय लेंगी?'' उसने केशव की पेशकश की परवाह किए बगैर सीधा चाय वाले लड़के को कहा ''चीनी कम डालना''। धर्मपाल को केशव के प्रति मैडम की बेरूखी पसन्द आई। केशव ने मैडम की बेरूखी को दरकिनार करते हुए चाय वाले लड़के को कहा ''मैडम समेत चार कप चाय दे दो।'' चाय लेते ही मैडम ने दस रुपए का नोट लड़के की तरफ बढ़ाते हुए कहा ''पैसे काट लो।'' लड़का केशव की तरफ देखने लगा, इतने में रवि भी जेब से पर्स निकालने की कोशिश कर रहा था कि तभी केशव ने सबको रोकते हुए लड़के की तरफ पैसे बढ़ा दिए, ''ये ले ले'', फिर उसने मैडम को नर्म लहज़े में कहा, ''मैडम जी इट्स आल राईट, क्या फर्क पड़ता है, ये चाय मेरी तरफ से सही।'' मैडम ने केशव की तरफ बड़ी-बड़ी आंखों से देखा और तलख आवाज़ में बोली ''फर्क पड़ता है। मैं किसी अजनबी से चाय नहीं पी सकती।'' सबकी नजरें मैडम की तरफ घूम गईं। शांतिप्रिया भी अपने गुस्से को भुलाकर बड़ी उत्सुकता से मैडम की तरफ देखने लगी।

केशव पर जैसे इस बात का कोई असर ही नहीं हुआ हो उसने पहले से भी अधिक मुस्कुराते हुए कहा ''अजनबीपन एक सैकण्ड में दूर हो जाता है, मेरा नाम केशव है, आप भी अपना नाम बता दीजिए, बस्स फिर हम अजनबी कहां रहे.......?'' मैडम ने केशव के साथ आंखें मिलाते हुए कहा ''मुझे कोई दिलचस्पी नहीं।'' फिर उसने चाय वाले लड़के को डांटते हुए कहा ''तुझे बोला न मैंने, मेरी चाय के पैसे काट।'' हुक्म में तेज तलवार की धार थी, इसको मानना लाज़िमी ही था। केशव ने बाकियों के पैसे दे दिए। रवि ने एक बार फिर नोट किया कि मैडम का केशव को लेकर सख़्त रवैया धर्मपाल को खासा पसन्द आया था, उसने अपनी बीवी की आंखों में बड़े अर्थपूर्ण तरीके से झांकते हुए देखा, फिर मैडम की ओर अपनेपन से, उसके बाद उसने अपने हाथ में पकड़ी, पुस्तक को बन्द किया और सीट का सहारा लेकर आंखें बन्द करके सफर का आनन्द लेने लगा। उसके चेहरे पर हल्की-हल्की मुस्कुराहट भी तैर रही थी। केशव ने चाय की चुस्की लेते हुए रवि और शांतिप्रिया की तरफ देखा और हल्का-सा मुस्कुरा दिया। शांतिप्रिया कूपे में हुए इस छोटे से नाटक से पैदा हुई उत्तेजना के कारण रवि के साथ और सटकर बैठ गयी थी। गुस्सा धीरे-धीरे उतर रहा था। केशव ने शांतिप्रिया को लाल चूड़े में देखकर रवि से पूछा, ''लगता है आप हनीमून के लिए जा रहे हो'' रवि को ऐसा प्रश्न उसकी निजी जिंदगी में केशव का दखल-सा लगा, उसने टालने के अंदाज़ में कहा- ''नहीं ऐसा कुछ भी नहीं।'' सबकी नज़रें इस समय रवि और उसकी बीवी पर थीं। ऐसे प्रश्न से मैडम ने जरूर केशव को घूर कर देखा था। धर्मपाल और उसकी बीवी भी उन्हें ऐसे देख रहे थे, जैसे अक्सर लोग हनीमून पर आए जोड़ों को देखते हैं। केशव ने कहा ''प्लीज बुरा मन मनाना, मैंने इसलिए पूछा था कि किशनगढ़ हनीमून मनाने वालों की पसंदीदा जगह है, वैसे खूबसूरत भी बहुत है, भई मुझे तो किशनगढ़ बड़ा रोमांटिक लगता है'', ये कहकर उसने एक उड़ती-सी सरसरी नज़र मैडम पर डाली और बात पूरी करते हुए कहा ''वैसे तो हनीमून मन के भीतर होता है, जहां चाहो

मना लो'', फिर उसने एक उड़ती-सी नजर मैडम पर डाली और अपनी ही बात पर जोर से ठहाका लगाया। शांतिप्रिया थोड़ी-सी शरमायी। रवि को केशव का इस तरह कहना और मैडम की तरफ देखना अच्छा नहीं लगा। गाड़ी किसी छोटे स्टेशन पर रुकी, केशव उठा और जम्हाई लेता-लेता बाहर निकल गया। धर्मपाल ने उसके जाने के बाद पुस्तक बन्द की और जैसे सबको सुनाने वाले अंदाज़ में अपनी बीवी को कहने लगा, ''कैसे-कैसे अजीब लोग होते हैं.........मान-न-मान मैं तेरा मेहमान'', फिर उसने मैडम की तरफ देखते हुए बड़ी नर्मी से कहा- ''वैसे आप ने अच्छा किया।'' मैडम थोड़ा-सा मुस्कुराई और बोली आप किशनगढ़ जा रहे हैं न? धर्मपाल की बीवी बड़े फख्र से बोली ''जी...... वहाँ हमारे गुरु महाराज जी का सात दिवसीय शिविर लग रहा है, कैनेडा से सीधे किशनगढ़ ही पहुंच रहे हैं।'' धर्मपाल को जैसे मौका मिला हो उसने सधी हुई गम्भीर और मार्केटिंग जैसी आवाज़ में कहा, ''आपने स्वामी दिव्यानंद जी का नाम सुना ही होगा, पूरी दुनिया में उनके चौतिस आश्रम हैं........पन्द्रह तो केवल यूरोप एवं अमेरिका में ही हैं, और एक किशनगढ़ में भी है। पूरे सात दिन का शिविर है, स्वामी जी के प्रवचनों का।'' घरवाली फिर बोली ''स्वामी जी बड़ी दिव्य मूर्त हैं पचहत्तर वर्ष की आयु है लेकिन पैंतीस से अधिक नहीं लगते।'' इतना तेज़ है उनके चेहरे पर, उनके दर्शन करके ही इन्सान के दुःख दूर हो जाते हैं।

मैडम ने थोड़ी दिलचस्पी लेते हुए कहा ''बड़ी श्रद्धा है आपके मन में उनके लिए। आप उनके सभी शिविरों में जाते हो ?'' इतनी देर में केशव भी अन्दर आ गया धर्मपाल ने उसकी तरफ ध्यान दिए बिना मैडम को बड़े अपनेपन से कहा ''हमारी कोशिश तो यही रहती है कि हम उनके सारे शिविरों में जायें, पर यह थोड़ा मुश्किल है, फिर भी हम कोशिश करते हैं।'' धर्मपाल की पत्नी ने अपने पति की शेखी बघारते हुए कहा, ''ये तो दो बार विदेश में भी उनके शिविरों में हो आए हैं। दो माह पहले कैनेडा गए थे।''

केशव ने बात बीच में ही पकड़ते हुए कहा, ''ठीक भी है, हिन्दुस्तान में तो सभी का सुधार हो चुका है। यहां सभी लोग ब्रह्मज्ञानी हैं। यहां तो अब कोई दुःख-दर्द है नहीं, अब तो विदेशों को ही हिन्दुस्तान की तरह बनाने की ज़रूरत है। फिर मैडम की तरफ देखकर उसने पूछा।

''क्यों रमा जी।''

मैडम चौंक उठी। एक तो केशव ने धर्मपाल और उसकी घरवाली के गुरु के बारे में ऐसी बात की और ऊपर से उसे रमा नाम से सम्बोधित भी किया था। उसके चेहरे पर हैरानी एवं गुस्से के भाव साफ़ दिख रहे थे।

केशव ने हंसते हुए कहा, ''नहीं, मैं कोई चमत्कारी गुरु नहीं हूं, सभी सवारियों के नाम डिब्बे के बाहर चिपकाए रिजर्वेशन चाट पर लिखे होते हैं। सामने सीट नम्बर भी होता है। गाड़ी स्टेशन पर खड़ी थी तो मैंने जाकर पढ़ लिए, इट इज़ सो सिंपल।''

धर्मपाल का चेहरा गुस्से से लाल हो गया था उन्होंने केशव को कहा "जिस विषय के बारे में पता न हो उस बारे में चुप रहना चाहिए।" केशव ने धर्मपाल पर एक और बाण छोड़ते हुए पूछा–"ये वही भगवान दिव्यानन्द जी हैं न, जिन्होंने छह माह पहले बवासीर का आप्रेशन करवाया था और जो सारी दुनिया की बीमारियां दूर करते हैं।"

इससे पहले कि धर्मपाल का गुस्सा कोई विस्फोटक रूप धारण करता, रमा ने केशव को रोबदार आवाज़ में कहा, "किसी की बात में टपक पड़ना कोई तमीज़ नहीं होती।" केशव ने नाटकीय अन्दाज़ में सीने पर हाथ रखकर, गर्दन झुकाकर कहा, "सॉरी मैडम" और खामोश होकर बैठ गया लेकिन आराम से बैठने से पहले उसने एक बार रवि और शांतिप्रिया की तरफ देखकर शरारत-भरी हंसी जरूर बिखेरी थी।

धर्मपाल ने केशव की चुप्पी और रमा की हमदर्दी का लाभ उठाते हुए अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों पर बात शुरू करते हुए कहा, "रमा जी......" फिर उसने अपनी घरवाली की तरफ देखकर अपनी भूल सुधारी "रमा बहन जी, महापुरुषों को इस संसार में आम आदमी की तरह बन कर रहना पड़ता है, उन्हीं की तरह दुःख-तकलीफें झेलनी पड़ती हैं, आप क्राईस्ट की कहानी तो जानती ही होंगी।"

धर्मपाल और उसकी पत्नी कितनी देर तक अध्यात्मिक चर्चा करते रहे और रमा "हां, हूं" करके उनकी बातें सुनती रही। केशव चुपचाप खिड़की से बाहर ढलती शाम का नज़ारा देखता रहा, फिर वह उठा और साथ वाले कूपे से बार-बार झांकने वाली कोई तीन-चार वर्ष की छोटी-सी लड़की को अपने पास बुलाकर उसके साथ खेलने लगा। कुछ देर बाद वह गुड़िया-सी दिखने वाली लड़की खुलकर ठहाके लगा रही थी और कभी-कभी वह केशव की मूंछें भी उखाड़ने का प्रयास करती। लड़की के बार-बार हंसने के कारण लड़की का बाप आया और उसे उठाकर ले गया। रमा ने सीट के नीचे झुककर अपना बैग बाहर की तरफ खींचा और उसकी जिप खोलने लगी। केशव ने आगे होकर उसे पूछा "रमा जी मैं आपकी कुछ मदद करूं।" रमा ने जिप खोलने वाला अपना हाथ खींचा और केशव की तरफ घूरते हुए सख़्त लहजे में बोली, "मुझे आपकी मदद की कोई ज़रूरत नहीं है आप अपना काम करिए।"

कूपे के सभी लोग एक बार फिर उनकी तरफ देखने लगे।

केशव ने मुस्कुरा कर कहा, "मैडम आपने मेरे बैग में से क्या लेना है ?"

रमा ने पूछा, "आपके बैग में से ? क्या मतलब है आपका? आपके बैग से मुझे क्या लेना-देना ?"

केशव ने बनावटी गम्भीरता से कहा, "मैडम जी आप मेरा बैग खोल रही हैं।" रमा ने एक बार फिर बैग की तरफ देखा और कहा, "नहीं........ये बैग मेरा है, मैं इसे पहचानती हूं।"

केशव ने कहा, ''एक्सक्यूज मी'' और रमा की सीट के नीचे से एक और बैग निकाला जो बिल्कुल पहले बैग जैसा ही था, फिर उसने रमा के सामने बैग रखते हुए कहा, ''आपका बैग ये है शायद।'' रमा ने तन्ज से मुस्कुराते हुए कहा,

''नहीं जी, मेरा बैग यही है जो मैं खोल रही हूं। मैंने इसके हैडिल पर हरे रंग का रिबन बांधा हुआ है।'' यह कहकर उसने बड़ी शेखी से सब की तरफ देखा, केशव ने कंधे उचका कर कहा, ''ठीक है जैसी आपकी मर्जी, खोल लीजिए।''

रमा ने जिप खोली, जिप के खुलते ही मर्दाना कमीज़ें और तीन-चार टाइयां सामने आ गईं, रमा हैरान-परेशान थी। उसके मूंह से यकायक निकल गया, ''ये कैसे हो सकता है ? हरा रिब्बन.......।''

केशव के चेहरे पर शरारती मुस्कुराहट फैल रही थी। उसने कहा, ''कोई बात नहीं रमा जी, कई बार ऐसा हो जाता है।''

धर्मपाल और उसकी बीबी हैरान हो रहे थे। रवि सोच रहा था कि केशव जादू भी जानता है क्या?

शांतिप्रिया ने रवि को कोहनी चुभोकर कुछ आंख से रमा की तरफ इशारा किया। रवि को ऐसा लगा कि केशव पक्का जादू जानता होगा। रमा अपने असली बैग में से अगाथा क्रिस्टी का उपन्यास निकाल कर पढ़ रही थी। उसके मुंह पर मुस्कुराहट थी। रवि समझ रहा था कि इस मुस्कुराहट की वजह पुस्तक में लिखी कोई बात नहीं हो सकती।

शांतिप्रिया ने रवि का हाथ अपने हाथ में लेकर दबाया और उसके कान के पास अपना मुंह ले जाकर बोली, ''ज़रा एक मिनट बाहर चलो।'' रवि को शांतिप्रिया का स्नेहपूर्ण ढंग से हाथ का दबाना और कान के पास गर्म सांसों की गुदगुदी इतने रोमांचकारी लगे कि उसने सोचा कि शांतिप्रिया का गुस्सा उतर चुका है और वह भूल चुकी है कि वह रूठी हुई है। वह बड़े चाव से उठा और शांतिप्रिया को लेकर डिब्बे के बाहर दरवाज़े के पास चला आया, यहां रेल के चलने की आवाज़ खड़-खड़ाक पूरे जोर-शोर के साथ आ रही थी। शांतिप्रिया ने हंसते-हंसते कहा, ''रवि ऐसा लग रहा है जैसे बुड्डा-बुड्डी पर मोहित हो गया है।'' रवि ने पूछा, ''कौन-सा बुड्डा?'' शांतिप्रिया हंसते-हंसते बोली ''केशव और कौन।''

रवि ने कहा, ''कुछ अजीब-सा तो लग रहा है पर तुम कुछ अधिक ही उल्टा सोच रही हो, दोनों परिवार वाले होंगे, ऐसी बातों के लिए ये कोई उम्र है।''

शांतिप्रिया ने कहा ''उल्टा नहीं बिल्कुल सीधा और सपाट है, तूने केशव की आंखें नहीं देखी जब वो रमा की ओर देखता है।''

रवि ने पूछा ''क्या उस समय उसकी आंखें भैंगी हो जाती हैं।''

शांतिप्रिया ने उसे कहा, ''उसकी आंखों में प्रेम की कितनी चमक आ जाती है।''

रवि ने उसे उलाहना दिया, ''मेरे पास बैठी हो, और मेरी आंखों में तुझे प्रेम की चमक नहीं दिखती, उस बूढ़े की आंखों में प्रेम दिख गया''। शांतिप्रिया ने जवाब दिया ''उम्र के इस पड़ाव पर ये सब..........कितना अजीब है ?'' रवि ने कहा, ''मुझे लग रहा है जैसे बुढ़िया के मन में भी केशव के प्रति लगाव है। वैसे शांतिप्रिया, बुढ़िया है कितनी सुन्दर।'' शांतिप्रिया फौरन बोली, ''जो भी है पर यह सब देखकर चुटिया वाले को बहुत कष्ट हो रहा है।''

रवि बोला, ''अच्छा तब तो तुमने भी नोट किया है'' फिर दोनों मुस्कुराते हुए वापिस अपनी सीट पर चले गए।

शाम ढल चुकी थी साथ वाले कूपे से वही छोटी लड़की फिर केशव के पास आ गयी, उसके मां-बाप बहुत कोशिश कर रहे थे उसे अपने पास बुलाने की, पर वह केशव के साथ खेलने में मग्न थी। केशव ने लड़की के साथ खेलते-खेलते अपने बैग में से माउथ आरगन निकाला और उसको उल्टा-सीधा बजाने लगा। लड़की खुश हो ज़ोर-ज़ोर से तालियां बजाने लगी। अब तो माउथ आरगन से अलग-अलग आवाज़ें निकाल कर लड़की के साथ खेलने में मस्त था। वह बजाता रहा लड़की तालियां बजाती रही। लड़की को ये खेल बहुत ही पसन्द आया, इसी बीच केशव ने हेमन्त कुमार के गाए गीत 'बेकरार करके हमें यूं न जाइये' की धुन बजाना शुरू कर दी, इतनी अच्छी धुन को सुन कर सारी ट्रेन में शांति छा गयी। सारे डिब्बे वाले इधर-उधर की बातें छोड़ कर धुन का आनन्द उठाने लगे, जब केशव ने धुन बजाना बन्द की तो लड़की ने फिर खुशी से ताली बजाई। इस बीच शांतिप्रिया से रहा नहीं गया, ''कुछ और सुनाइये, आप तो बहुत अच्छा बजा लेते हैं।''

केशव ने एक बार फिर सीने पर हाथ रखकर, सिर झुकाकर अपनी तारीफ करने के लिए शांतिप्रिया का शुक्रिया अदा किया और कहा, ''मैं और सुनाता हूं लेकिन इस सूरत में कि कोई और परेशान न हो रहा हो।'' रवि ने कहा- ''इतने अच्छे संगीत से भला कौन तंग होगा।'' उसने नोट किया कि रमा की आंखों से भी उसे समर्थन मिल गया है। उसने अति उत्साह के साथ कहा, ''आप सुनाइए।'' केशव ने कुछ पुराने गीतों की धुनें सुनाई। वह एक परिपक्व कलाकार की तरह बजा रहा था। डूबते सूरज की लालिमा, हल्की-सी पीली लौ, और भागती ट्रेन से बाहर के बदलते दृश्य ऊपर से संगीतमय वातावरण ने कुछ और ही रंग जमा दिया था। रवि ने कभी भी नहीं सोचा था कि माउथ आरगन के साथ भी इतना अच्छा संगीत बजाया जा सकता है। रमा ने सीट का सहारा लेकर अपनी आंखें बन्द कर दी थीं लेकिन बीच-बीच में वह कनखियों से केशव को देख लेती थी, अब केशव ने फिल्मी गीतों को छोड़कर कुछ और ही संगीत बजाना शुरू किया, ये कोई बनी-बनाई धुन नहीं थी इसलिए इसे कोई भी नाम नहीं दिया जा सकता था। ऐसा लग रहा था मानो केशव के भीतर से बना-बनाया संगीत वातावरण को महका रहा हो। लड़की केशव की गोद में सिर रखकर सो गयी थी। इस बीच रवि ने देखा कि केशव माउथ आरगन बजाते सिर्फ रमा की तरफ देख रहा

था मानो इस माहौल में डिब्बे में कोई दूसरा है ही नहीं, रमा भी मुस्कुराते हुए उसी को देखे जा रही थी। फिर शाम ढल आई ट्रेन स्टेशन के पास पहुंच रही थी। लोगों में हलचल शुरू हो गयी। तिलिस्म टूट चुका था।

किशनगढ़ सैर करने आए लोग अक्सर शाम को डाक रोड़ पर सैर को निकलते हैं, सैर करने वालों में कोई हड़बड़ी नहीं होती, भीड़ होते हुए भी, धक्का-मुक्की नहीं होती, हर तरफ हंसते-मुस्कुराते चेहरे नज़र आते हैं। रवि और शांतिप्रिया को यहां आए आज तीसरा दिन था, दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर चल रहे थे, तभी शांतिप्रिया ने रवि का हाथ ज़ोर से दबाते हुए कहा, ''उधर देखो।'' जिधर शांतिप्रिया ने इशारा किया था रवि ने उधर देखा सामने थोड़ी दूर सड़क के दूसरे किनारे पर हाथों में हाथ पकड़े केशव और रमा खिलखिला कर हंसते हुए इधर ही आ रहे थे। ट्रेन की सारी बातें याद आ गई फिर भी उनका उस तरह एक-दूसरे का हाथ पकड़कर चलना देखकर रवि को झटका-सा लगा। रवि का मन हुआ कि वे दूसरी तरफ मुड़ जायें पर उसने सोचा कि शर्म तो उन्हें होनी चाहिए, वह बेकार परेशान हो रहा है, इतने में वह दोनों उनके करीब पहुंच चुके थे। केशव ने रवि को खिसकने का मौका दिए बगैर उन्हें आवाज़ देकर पुकारा, ''हैलो यंग कप्पल क्या हाल है'', फिर पास आकर केशव ने पूरी गर्मजोशी के साथ रवि के साथ हाथ मिलाया और शांतिप्रिया के सिर पर हाथ फेरा. रमा की खूबसूरती में माथे की बड़ी-सी बिन्दी और मुस्कुराहट चार-चांद लगा रहे थे। रमा ने शांतिप्रिया और रवि को इस तरह हैरान-परेशान देखते हुए केशव की तरफ एक गहरी मुस्कुराहट के साथ देखा और कहा, ''क्या आपको नहीं लगता कि हमारी तरफ से सफ़ाई देने के साथ-साथ एक-एक-कप कॉफी का इनका अधिकार बनता है।''

केशव ने रवि को बाजू से पकड़ा और कहा, ''वो सामने कैफ्टेरिया है आओ'' इन्कार से पहले ही वे कैफ्टेरिया की ओर ले गए कॉफी आ गयी, हालांकि रवि को कॉफी पीने में कोई दिलचस्पी नहीं थी, पर जिन प्रश्नों में वह घिरा था वह भी उनके उत्तर चाहता था। केशव कहने लगा, ''अच्छा रमा तुम सुनाओगी या मैं......?''

रमा कहने लगी, ''ऐसे कामों के लिए आप ही माहिर हो, आप ही सुनाओ''।

केशव ने पहले कुछ देर उन दोनों की तरफ देखा फिर मुस्कुराते हुए कहने लगा, ''बात बड़ी सिम्पल है। आज से ठीक बाईस बरस पहले मैं और रमा पहली बार ट्रेन में मिले थे। इसको देखते ही मुझे पहली नज़र में ही इससे प्यार हो गया था। तब किशनगढ़ पहुंचते-पहुंचते मैंने इसका उस समय तक पीछा नहीं छोड़ा जब तक कि इसने भी प्यार का इसरार नहीं किया फिर हमारी शादी हो गई, हम हर वर्ष इसी दिन इसी ट्रेन में यहां आते है और अपनी पहली मुलाकात के वे दिन याद करके, उसी तरह जीने की कोशिश करते हैं। हर बार कुछ नया ही घटना क्रम बनता है। लेकिन इस बार तुम भी इस कहानी के पात्र हो।''

रवि और शांतिप्रिया ने बड़ी हैरानी के साथ एक-दूसरे को देखा, शांतिप्रिया के मुंह से निकला......''तो वो बैग़ वाला भी ड्रामा ही था ?

रमा ने गर्दन हिलाते हुए कहा ''नहीं! नहीं दरअसल वो वाक्या केशव की शरारत थी। दूसरों को हैरान करना इनकी आदत है। ही इज फुल ऑफ सरप्राईजिज़। ''केशव ने मूंछों पर से कॉफी की झाग साफ़ की। उसकी आंखों में शरारत-भरी चमक साफ़ दिखाई दे रही थी। उसने हल्का-सा हंसते हुए कहा, ''ये काम भी बड़ा आसान था, हम दोनों के बैग एक जैसे थे घर से निकलते ही मैंने देख लिया था कि रमा ने अपने बैग पर हरा रिब्बन बांधा हुआ है तो मैंने चोरी से उसके बैग से रिब्बन उतार कर अपने बैग पर बांध लिया.......बाकी सब कुछ तो आपको पता ही है।''

रमा थोड़ा-सा प्यार और थोड़े से गुस्से से केशव की तरफ देखते हुए बोली, ''बस्स ये यही कुछ करते रहते हैं।''

केशव ने रवि और शांतिप्रिया की तरफ देखते हुए कहा, ''अगर आप बुरा न मनाएं तो मैं आपको बिना मांगे एक सलाह देना चाहता हूं। जिंदगी में प्यार करने के बहाने और प्यार को एक त्योहार की तरह मनाने के मौके कभी छोड़ने नहीं चाहिए, बल्कि इसके लिए बहाने तलाशने चाहिए।'' कहकर उसने रमा की तरफ देखते हुए कॉफी ऐसे पीऽ....जैसे कॉफी नहीं प्यार का घूंट भरा हो।

ooo

एक अनुभव और

❐ मूल – निर्मल विक्रम
❐ अनु० डॉ० सुषमा राजेश

हल्की-हल्की बूंदा-बांदी लगातार दो दिन से हो रही थी। रमेश जब दो कप चाय लेकर आया तो उसने देखा कि मानसी बिस्तर से निकलकर अटैचियों में सामान भर रही थी।

''गाड़ी तो रात दस बजे की है, फिर इतनी जल्दी किस लिए?'' काम में व्यस्त मानसी ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया-''जानती हूं फिर भी......'' रमेश को संतोष नहीं हुआ, चाय का घूंट भरते हुए उसने फिर कहा, ''मानसी ज़रा सोचो तो सही तुम क्या करने जा रही हो?'' मानसी ने अलमारी से साड़ियां निकालते हुए प्रश्नसूचक दृष्टि से देखते हुए कहा, ''क्या सोचना है? मुझे पता है कि मैं क्या कर रही हूं'', रमेश चाहता था कि इस विषय पर लम्मी बहस हो, और नौबत तूं-तूं, मैं-मैं तक आ पहुंचे और मानसी कहे ठीक है नहीं तो नहीं सही। किन्तु वह जानता था कि मानसी अपना निर्णय कभी नहीं बदलेगी। क्योंकि वह जिस बात की ठान लेती है उसे करके ही रहती है। परिणाम चाहे कुछ भी हो। रमेश के साथ शादी भी तो एक जिद ही थी, जिसके आगे जात-बिरादरी, भाषा, संस्कृति सब पीछे छूट गए और दोनों के एक ही छत के नीचे रहने के फैसले को समाज को मानना ही पड़ा। अब इतना समय बीत जाने के बाद मानसी के घर छोड़ने का निर्णय उसे बेचैन कर रहा था। वह उसे किसी भी तरह रोकना चाहता था, लेकिन रोके तो कैसे ? वह साधारण औरत तो कभी भी नहीं थी, तभी तो उसने उसे चाहा था। वह तब भी समझदार, अटल, तर्कशील तथा हठी थी। इसीलिए रमेश उस पर फिदा था। ओरों से अलग 'डिफरेंट फ्राम अदर्स' का अहसास उसे हमेशां उसकी ओर आकर्षित करता था। साथ-साथ रहते उसे पता ही नहीं चला कि वह कब प्रेमिका से पत्नी बन गई ? और फिर उसने खुद भी उसे अलग-अलग रूपों में न देखकर प्रेम की मूर्ति, सुन्दर, सम्पूर्ण तथा सक्षम औरत ही समझा। कभी-कभी वह उसे पूछता, ''मानसी तुम ऐसी कैसे हो ? यह कैसे मुमकिन है कि कोई सब कुछ होते हुए भी कुछ न हो।'' ''क्यों ?'' वह हंसते हुए कहती, ''मैं हूं न।'' रमेश चुप हो जाता और उसके बालों को सहलाती मानसी की उंगलियां उसे मदहोश कर देतीं। आज उसे यह अहसास बड़ी शिद्दत से हो रहा था कि उसने तो तमाम उम्र यूं ही मदहोशी में काट दी है। वह तो आज भी उसके उसी तिलस्मी जादू में जकड़ा हुआ और दूसरी ओर मानसी पन्द्रह वर्षों के बाद भी उसे छोड़ने को थी।

उनके बीच का समय इलैक्ट्रिक ट्रेन की तरह निकल गया। मानसी रमेश के काले सफ़ेद बालों को देखकर कहती, ''लगता है समय बर्फ के छोटे-छोटे फाहे बनकर हमारी आंखों

और बालों में बैठ गया है। समय हमारा अहसास है हमारे अंदर।'' रमेश को दोनों के बीच के समय का अहसास तब होने लगा जब उसे महसूस हुआ कि मानसी के तपते जिस्म की जगह उसकी सोचों की ठंडी ओस ने उसे बर्फ की मानिंद जमाकर ठंडा कर दिया है। उसका दिमाग उसके शरीर पर हावी होता जा रहा था। उस समय वह ज़्यादा परेशान हो जाता जब मानसी की गंभीर सोच यथार्थ के समुद्र से तर्क के मोती निकाल लाती और वह कहती कि, ''जिस्म का अधिकतर भोग दिमाग की क्रियाशील जड़ों को शिथिल कर देता है। इसलिए मेरी दृष्टि से भोग ज़रूरत नहीं बल्कि एक आदत है।'' मानसी की बातें सुन कर वह दंग रह जाता, वह समझ नहीं सका था कि मानसी इन चीजों से उकता चुकी है, या जीवन का सत्य कुछ और ही है। उसकी विरक्ति और वैराग्य के ज्ञान में कोई भेद, कोई सत्य छिपा है या जीवन भोग की वस्तु है, यही सचाई है। वह मानसी के कथन को सत्य मानकर किसी नए प्रश्न के इन्तज़ार में सारी रात टकटकी बांधे हुए निकाल देता। वह पहले भी दूसरों से भिन्न थी और आज भी उसकी सोच बिल्कुल अलग है, इसी गुमान में इतने वर्ष उसने उसके साथ बिता दिए थे। और अपने बारे में कभी सोचा ही नहीं। वह जानता था कि मानसी ने तो उसे कभी भी छलावे या भ्रम में रखना नहीं चाहा किन्तु जाने क्यों..........? वह बंधता ही गया। उसकी हर सांस में मानसी हावी रही, 'आखिर क्यों' ? इस प्रश्न का उत्तर उसे कभी न मिल सका। वह उसे अपने से दूर करना चाहती पर रमेश एक छोटे बच्चे की मानिंद उससे लिपटता ही चला जाता। शायद बचपन से ही असुरक्षा की भावना उसमें कहीं घर कर गई थी। पर उसे इस बात का अहसास मानसी के ज़िन्दगी में आने पर ही हुआ। वह कभी समझ ही न सका कि मानसी इतनी सशक्त और सुरक्षित कैसे .... ? और वह इतना कमज़ोर क्यों है ?

अक्सर जब मां को मंदिर में मूर्तियों के आगे सिर झुकाकर गिड़गिड़ाते देखता तो सोचता कि ईश्वर शायद ऐसी अदृश्य शक्ति है, जो मानव की इच्छा पूर्ति करती है। हताश मां जब प्रार्थना करते हुए कहती– ''हे ईश्वर मुझे मुसीबतों का सामना करने की हिम्मत दो'' तो वह मां के चेहरे पर एक आत्म-विश्वास देखता। और मां उसी आत्म-विश्वास के साथ पुनः गृहस्थ रूपी गाड़ी चलाने के लिए तैयार हो जाती।

पर मानसी.....मानसी में उसने कभी भी किसी से कुछ भी मांगने की कोशिश, कोई इच्छा यां जरूरत नहीं देखी, चाहे उसके डगमगाते विश्वास को सहारा देने के लिए वह उसे ईश्वर का सहारा लेने की राय देती, जो बहुत से लोगों को ज़िंदा रहने के लिए एक आशा की किरण की तरह दिखता है। ''जीने के लिए एक उम्मीद बनी रहे, इसमें बुराई भी क्या है ?'' यह तर्क सुन कर किसी मूर्ति के आगे नहीं अपितु मानसी के आगे सिर झुकाने को उसका मन चाहता।

रमेश मानसी का सामान बंधवा रहा था। उसकी आंखें तो खुली थीं पर अन्तर्मन के किवाड़ बंद थे। दिमाग में एक तूफान चल रहा था। ''यह औरत अकेली अपने बलबूते पर

जीने के लिए तैयार है। जीवन को आदतों के अधीन नहीं होने देना चाहती, हर दिन जीने के लिए है और भरपूर जीना ही जीवन है। यह उसकी फिलासफी है। हर काम में जल्दी, हर पल को पूरी तरह जीने की बेचैनी, सब कुछ पूरा सम्पूर्ण।'' सम्पूर्ण शब्द सोचते ही उसकी मर्दानगी पर एक प्रश्न बन कर रह गया। ''क्या वह सम्पूर्ण नहीं ? वह क्यों उसे छोड़कर जाना चाहती है ?'' क्या उसने उसे तन-मन से प्यार नहीं किया। वह उसे मां बनाकर जननी होने का गौरव देना चाहता था। पर मानसी? उसकी सोच आम औरत की तरह नहीं थी। वह तो इस बंधन में बंधना ही नहीं चाहती थी। उसके अनुसार संतान मनुष्य को भावुक और कमज़ोर बना देती है। वंश द्वारा अमर होने की चाहत स्वार्थी और आत्म केन्द्रित कर देती है। ''संतान भविष्य की सोच की नहीं, शारीरिक भूख या ज़रूरत के उन क्षणों की ज़रूरत है जो कभी बेकाबू हो जाते हैं। पर मनुष्य इतना समझदार है कि उन क्षणों पर सृष्टि के रचेयिता होने का ठप्पा लगा देता है।'' किसी भी विषय पर बहस करके वह खुद को सही सिद्ध कर देती। उसकी ऐसी बातों पर कभी-कभी वह चकिंत हो सोचता, यह निष्ठुर औरत किस तरह की है ? पर अनाथ बच्चों को देखकर नम हुई उसकी आंखों को देख कर तो समझ नहीं पाता कि वह उसे क्या विशेषण दे ?

काम में व्यस्त मानसी को देखकर रमेश चाह रहा था कि वह उसे पकड़ कर इतनी जोर से झकझोरे कि उसकी सोच रूपी पंख फैलाकर उड़ने को तैयार गौरैया फड़फड़ा कर ज़मीन पर आ गिरे। पर खुद पर नियंत्रण रखते हुए उसने बड़ी नम्रता से कहा, ''मानसी मैं नहीं जी सकता तेरे बगैर ? तुम्हें न सही पर मुझे तुम्हारी जरूरत है। मैं तुम्हें भली-भांति जानता हूं और समझने की कोशिश भी कर रहा हूं, लेकिन.........?'' उसने माथे से पसीना पोंछते हुए कहा, ''माना दुनियादारी एक तरफ है, लेकिन कुदरत के कुछ कायदे-कानून, बंधन तथा सीमाएं होती हैं। जिन्दगी मात्र यथार्थ की फिलास्फी सहारे, कैसे चल सकती है ? क्या मानवी सम्बन्धों को जोड़ना या तोड़ना सरल है ?'' वह कहना तो बहुत कुछ चाह रहा था लेकिन....उसके मुंह से शब्द गुल्लक से निकलने वाले सिक्कों की तरह रुक-रुक कर निकल रहे थे।

मानसी शायद सोच रही थी कि वह अपने साथ क्या-क्या लेकर जाएगी। रमेश की बेबसी उसके प्रश्नों के साथ खिड़की से आते हवा के शीतल झोंकों की तरह उसके सिर के ऊपर से ही निकल जाती। उसने अपने ही अंदाज़ में कहा, ''रिश्ते? रिश्ते तो कभी और कहीं भी बनाए जा सकते हैं। रिश्तों की कोई परिभाषा, बंधन या नाम तो है ही नहीं।'' रमेश के टूटते विश्वास को संभालने के लिए मानसी ने बड़े प्यार से उसका माथा सहलाते हुए कहा, ''मैं तुम्हें छोड़कर नहीं बल्कि विश्व के साथ नाता जोड़ने जा रही हूं, जो शारीरिक नहीं भावनात्मक है। तुम समझ रहे हो ना?'' क्या तुमने कभी महसूस नहीं किया कि संसार मात्र तुम या मैं नहीं। कितना बड़ा है संसार। कितना कुछ है दुनिया में करने के लिए और भी बहुत कुछ। पल-भर के लिए वो शांत और टकटकी बांधे छत को यूं घूर रही थी मानो गंगा के किनारे कोई साध्वी आत्मा-परमात्मा तथा ब्रह्माण्ड के गूढ़ ज्ञान

को समझ कर सांसारिक मोह-माया को त्याग तपस्या में लीन बैठी हो। वह जितनी शांत थी, रमेश के भीतर उतने ही बवंडर चल रहे थे। उसकी आंखों में झांकते हुए धीरे से मानसी ने कहा, ''अब शरीर का मेरे लिए कोई महत्त्व ही नहीं रहा। मुझे यही आत्म-साक्षात्कार का एक सुंदर मार्ग महसूस होता है और मैं इसी अहसास को अनुभव करना चाहती हूं। खुले गगन में बेरोक-टोक अपने पंख फैलाए कहीं दूर उड़ने तथा खुली हवा में सांस लेने के अहसास को महसूस करना चाहती हूं। बस इतनी-सी चाहत है मेरी, इससे अधिक कुछ भी नहीं।'' इतना कह कर उसने अपनी आंखें मूंध ली, मानो वह सचमुच हवा में उड़ रही हो। यही अनदेखा, अनजाना-सा अहसास उसे औरों से अलग करता है। रमेश हमेशा की तरह इस बार भी जड़वत्-सा उसे देखता रहा।

हर दिन, हर पल एक नया अहसास दिलाने वाली मानसी को वह कितना अपना समझता रहा और सोचता था कि उसके पौरुष की गर्माहट कभी-न-कभी उसके अस्तित्व को पिघला देगी और वह हमेशा के लिए उसकी हो जाएगी। पर समय उसकी सोच में ही निकल गया और वह खुद ही धीरे-धीरे टूट-टूट कर बिखरता गया और मानसी उसे संभालती रही। अब तो उसे इस बात का अहसास भी हो रहा था कि शायद वियोग ही प्रेम की चरमसीमा है, जैसे जीवन के बाद मृत्यु।

वह बाहर पड़ रही फुहार में पूरी तरह भीग जाना चाहता था अन्दर और बाहर से और उस अहसास को महसूस करना चाहता था जब गर्म आंसू बारिश के ठंडे पानी के साथ मिलकर बूंदे बनकर गिरते हैं। पर वह बाहर न जाकर मानसी को धीरे-धीरे अपनी ओर खींच रहा था तथा चुप और शांत मानसी अपने मूंह पर गिरते उसके आंसू सूखी तथा बंजर धरती की तरह पिए जा रही थी चुप और शांत।

ооо

डोगरी कहानियों का विवेचन

❐ डॉ० अरुणा शर्मा

इस लेख के अंतर्गत डोगरी की निम्नलिखित तीन कहानियों का मूल्यांकन किया गया है।

1. काले हाथ : डॉ० ओम गोस्वामी

2. एक सफ़र एक ज़िन्दगी : डॉ० ललित मगोत्रा

3. एक अनुभव और : निर्मल विक्रम

काले हत्थ

डॉ० ओम गोस्वामी जी की कहानी राज्य व देश या ज्यों कहे विश्व में फैले आतंकवाद से दो-चार हो रहे लोगों की कहानी है। आतंकवाद के हाथों मज़बूर भोले-भाले लोगों के शोषण का इस कहानी में पूरा यथार्थ व न्यायपूर्ण वर्णन हुआ है। आतंकवाद को बहुत पास से भोगने वाले इस राज्य के लिए, इस कहानी का परिवेश बेगाना नहीं है। आतंकवाद ने दो धारी तलवार की तरह दोनों तरफ से काटा है पर अपने भोलेपन व सिमित सोच के कारण लोग इसमें फंसते ही रहे हैं। कहानी का आदि व अन्त दोनों बहुत रोचक हैं। कहानी में पाठक को बांधे रखने की क्षमता है। लेखक ने खलनायक के रूप में जिस किसी आतंकी सरगना की बात की है उसका नाम न देकर 'काली ऐनक' वाला लिखकर पाठकों के हृदयों में अद्भुत भाव का संचार किया है। बेशक इस विषय पर अब तक बहुत लिखा जा चुका है कुछ नया कहने की इसमें अब गुंजाईश न के बराबर थी पर जिस तरह से लेखक ने इसका निर्वाह किया है बहुत अच्छी कहानी बनी है। जड़ी की कड़वाहट व नायक नवयुवक के अन्तःकरण की बेचैनी का सामान्तर वर्णन लेखक की लेखन कुशलता का साक्ष्य देता है। कुछ तकनीकी तथ्यों की ओर ध्यान न देकर यदि हम कहानी के अंत पर ध्यान दें तो बहुत ही मार्मिक दृश्य मानस पटल पर उभरता है। ऐसे साहित्य से पाठक का मनोरंजन तो होता ही है। सामाजिक उत्तरदायित्व भी पूरा होता है।

एक सफर एक ज़िन्दगी

जिन्दगी से कोई एक टुकड़ा उठा कर, सफर उठा कर, कलमबद्ध किया गया है। बहुत जीवंत वातावरण, ट्रेन के कूपे का कहानी का फलक बनता है। कूपे का माहौल

* 54/ए बी, गांधीनगर, जम्मू

खुशगवार व चुहलपूर्ण, असल कहानी का नक्श तब उभरता है जब वह केशव से जुड़ती है। केशव की कूपे में आमद और सबके बदलते मनोभावों का वर्णन लेखक प्रो० मगोत्रा जी ने बहुत बारीकी से किया है। कहानी का दूसरा मोड़ यानि किशनगढ़ नामक स्थान पर हुई रमा-केशव व रवि-शांतिप्रिया की मुलाकात उसे और भी रोमांचक बना देता है। कहानी का अन्त अत्यन्त रोचक बन पड़ा है पर केशव व रमा का एक-एक बात पर स्पष्टीकरण देना पाठक हृदय में एकदम उद्‌बुद्ध हुए रोमाञ्च को भंग कर देता है। कहानी के पात्रों के चित्रण पर लेखक ने बहुत मेहनत की है। कहानी के पात्र, कहानी पढ़ते-पढ़ते दिखने लगते हैं, चुटियां वाले सज्जन, छोटी नटखट बच्ची या रवि की रूठी शांतिप्रिया। लेखक के चित्रण जैसे कि रमा के भाव, हनीमून पर जाते जोड़े के क्रिया-कलाप, सोच, एक प्रौढ़ जोड़े का हस्तक्षेप, केशव की ज़िन्दादिली सब को बारीकी से उकेरा गया है। इस एक कहानी में लेखक ने अपने वर्णन कौशल से कई जीवनों को चित्रित किया है फिर भी ललित जी की यह विषय के आधार पर सर्वश्रेष्ठ कहानी होने का गौरव नहीं पा सकती। प्रो० मगोत्रा जी डोगरी के सुप्रतिष्ठित साहित्यकार हैं इनसे हम इससे भी कई अच्छी कहानियां पा चुके हैं व भविष्य में भी कामना करते हैं।

एक अनुभव और

एक अनुभव और निर्मल विक्रम की एक ताज़ातरीन व मनोवैज्ञानिक कहानी है। यह कहानी नारी-विमर्श को एक नया मोड़ देने वाली कहानी कही जा सकती है। कहानी की नायिका मानसी कहानी की धुरी है। एक सशक्त चरित्र, एक अलग फलसफा। कहानी के दोनों पात्र मानसी व रमेश पति-पत्नी हैं। कहानी में बिना किसी भूमिका के हम रमेश को अपने हालात या ज्यों कहें कि एक अलग मानसिकता में जूझते देखते हैं। मानसी का ज़िन्दगी को लेकर एक भिन्न व ठोस फलसफा है। वह सारे विश्व को आत्मसात करने की भावना रखती है पर कोई बंधन पालना नहीं चाहती। संतान की चाह से इंकार और लावारिस बच्चों के लिए आँखों में स्नेह लिए, वह आज की औरत सामान्य सामाजिक सभी प्रतिष्ठाओं व सम्मानों से ऊपर जा खड़ी होती है। इस चरित्र को कहानी के इस संकुचित पटल पर बिना लाग-लपेट के अंकित करना लेखिका के लिए भी उतना ही Bold Step था जितना नायिका का अपने पति को छोड़कर जाने का फैसला। वैसे इस कहानी की यह विशेषता है कि लेखिका अपनी ओर से कुछ नहीं जोड़ती।

मानसी आज की प्रगतिशील नारी का अक्स है। बौद्धिक, शारीरिक व आर्थिक रूप से स्वतंत्र और स्वाबलम्बी। अब वह केवल भोग की वस्तु न होकर जीवन दर्शन को समझने-समझाने वाली सबला हो चुकी है। कहानी का दूसरा पहलू नायक रमेश नायिका मानसी की तुलना में एक कमज़ोर कड़ी साबित होता है। एक कमज़ोर पुरुष, एक कमज़ोर पति जो पत्नी के जाने के ख़्याल से ही कांप जाता है। नारी की शक्ति का अवलम्बन ढूंढने वाला पुरुष, नारी चाहे मां हो या पत्नी।

कहानी का मुद्दा खूबसूरत है पर आम ज़िन्दगियों का कोई अंश नहीं। कुछ-कुछ मानसिक धरातल पर चलती यह कहानी, परम्परागत कहानी शैली से भिन्नता लिए है। इस कहानी की गणना डोगरी की कुछ आधुनिक कहानियों में की जा सकती है।

निष्कर्ष :

इन तीनों कहानियों को देखते हुए कुछ चीज़ें सामने आती हैं। डोगरी कहानी आज जिस स्तर पर लिखी जा रही है वह प्रशंसनीय है। विभिन्न विषयों व जीवन के विभिन्न पहलुओं पर लेखकों की दृष्टि है। लेखक आतंकवाद जैसी सामाजिक व राजनैतिक समस्या पर भी लिख रहा है तथा नारी-विमर्श पर भी। कभी-कभी लेखक इस बोझिल व कड़वाहट लिए समय में जीवन के लिए कुछ चुहल भरे क्षण भी कहानी के माध्यम से पाठक के आगे रखता है। प्रो० मगोत्रा जी ने पाठक को नए अनुभवों व जीवन आनन्द की ओर प्रेरित करने का प्रयास भी किया है।

निर्मल विक्रम जी की कहानी की औरत अपने लिए राह बनाती हुई जीवन के सर्वोच्च शिखर पर जा खड़ी हुई है। वह अब अबला या परित्यक्ता होकर बैठी नहीं रहेगी, वह परित्याग भी कर सकती है।

डॉ० ओम गोस्वामी जी ने छोटे प्रलोभनों से उभर कर ''वासुदैवकुटुम्बकम्'' की भावना की ओर नवयुवकों को प्रेरित करने का प्रयास किया है। चाहे उसका माध्यम वह उसके पिता को बनाते हैं पर स्वयं की आहुति नायक नवयुवक की सोच को समाज-भर में फैलाती है। पाठक का अन्तःकरण यह संदेश स्वतः ही ग्रहण कर लेता है। लेखक को इसे शब्दों में कहना नहीं पड़ता है।

०००

कश्मीरी कहानी

जवाबी कार्ड (`क्वंग पोश' से)

□ मूल – दीनानाथ नादिम

□ अनु० – डॉ० बद्रीनाथ कल्ला*

"जूनद्‌यद-जूनद्‌यद !" क्या द्‌यद, अभी तू अन्दर ही है ? अपने आने की खबर देकर जमालमीर अचेतन-सा शाद्वल (सब्ज घास) पर बैठ गया। नसवार की डिब्बी अपने फटे पुराने 'फ्यरन' (परिधान) के अन्दर की जेब से निकाली और बड़ी मात्रा में नसवार से दोनों तरफ के दांतों को लेप दिया। उसके हाथ में एक छोटी-सी छड़ी थी उससे वह धूलि पर चित्रकारी करने लगा। पन्द्रह मिनट बीत गये तो गोशाला के बाईं ओर के दरवाज़े के खुलने की आवाज़ आयी तो जमालमीर चौंक उठा। उसने पीछे की ओर मुड़कर देखा तो जूनद्‌यद पूनम के चांद की मानिंद लग रही थी। उसको देख कर वह हैरान हुआ तथा अनायास ही हंस पड़ा।

"हां, तुझे धिक्कार ! मैं समझी कि तड़के कोई आ गया है। शैतान कहीं के ! तूने तो आवाज़ बदल डाली।" मुस्कुराते हुए जूनद्‌यद बोली-जूनद्‌यद गांव की नानी और सब की मां। जूनद्यद लम्बे क़द की, बर्फ जैसे श्वेतबालों वाली। झक सफेद कोरे कपड़े का 'पोछ' (लम्बाकुर्त्ता) पहनकर वह वन की रानी जैसी लगती थी।

"क्या द्‌यदी! धूप इतनी प्रखर हुई और तुम्हारी नींद अभी भी नहीं खुली।" जमालमीर ने मुंह में से नसवार का घूंट फेंककर कहा। जून बोली-"तुम मूर्ख हो, मैं क्या कहूं।

मुझे समझ में नहीं आता है कि तुम कब सीखोगे ? क्या तुमने नहीं देखा ? मैं अभी गोशाला में से निकली तो नीद में कहाँ थी?

जमालमीर खिसिआते हुए किन्तु साहस करके बोला, "नहीं द्‌यद। असल तो गुलसाहिब के कारण...........।" जूनद्यद ने त्यौरियां चढ़ा दी। जमालमीर ने झट से बात काट ली। थोड़ी देर के लिए दोनों नीचे की ओर देखने लगे। अन्त में जूनद्यद ने कहा-"यह भी ठीक है। मेरे लिए ज़रूरी था। जाओ, तुम देखो। बदरी का क्या हाल है ? न वह घास खाती है न चारा। सुबह से मैं इसी की सेवा में लगी थी।"

जूनद्यद कौन थी, कहां की थी, कितनी बड़ी थी, ये बातें गांव में किसी को मालूम न थीं, जो वहां सब से वृद्ध था, उसने भी जूनद्यद को वैसा ही देखा था। जून गांव की हाकिम, गांव की जज, गांव की थानेदार, नम्बरदार, चौकीदार, पटवारी सब कुछ थी। बड़ों की परामर्शदात्री तथा छोटों की साथी। सासों को सीख देने वाली और बहुओं की विश्वासपात्र।

---

* *57/8 त्रिकुटा नगर, जम्मू।*

यदि पंचायत लगती तो जून को ही फैसला देना पड़ता। किसी को बेगार (कमाई के बिना किसी काम पर जाना) पर जाना हो तो जून की ही आज्ञा से जाता, किसी का ब्याह हो तो जून ही मध्यस्थ रहती। किसी को दर्द हो तो, जून को ही दवादारू करना पड़ता। इस इलाके में यह मशहूर था कि जून का कहा पत्थर की लकीर होता था जिसे स्वयं वाइसराय भी बदल नहीं सकता। इसी कारण जून का आवास सारे गांव को ननिहाल-सा लगता था। जिस किसी को कोई कष्ट होता तो वह जून के ही पास दौड़ता।

× × × × ×

निचले गांव को लोग 'कावमाल्युन' कहते हैं। इसकी वजह यह है कि इस तरफ के कौवे आते-जाते समय चिनारों पर रात गुज़ारते हैं और बहुत से कौवों ने इन चिनारों पर घोंसले भी बनाये हैं। आज सूर्यास्त के समय कौवों ने वहां बहुत ही शोर मचाया था, इतना कि नालों का कलकल भी किसी को सुनाई नहीं पड़ रहा था। सहसा बन्दूक की आवाज़ हुई। सारे कौवे कांय-कांय करते हुए चिनार के वृक्षों से उड़ गये। आखिर यह किसने बन्दूक से पटाखा चलाया। वह एक फौजी जवान जा रहा है। शायद यह उसकी ही शैतानी हो। गर्दनें हिलाहिला कर आस-पास के फलदार वृक्षों पर बैठकर कौवे सोचते हैं–फौजी जवान, हृष्ट-पुष्ट तथा उभरी हुई छाती वाला, जैसे कोई फिरंगी कप्तान। निश्ंचित होकर इधर-उधर झूमता हुआ चल रहा है। ज्यों ही वह ऊपर के गांव में पहुंचा, सारे बच्चे उसके इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गए। उसकी टांगों से लिपट गये, कइयों ने उसकी जेबों में हाथ डाल दिये। कुछ उसकी बन्दूक को नाखूनों से खुरचने लगे और सबों ने ज़ोर से कहा– "गुलसोब, हमारा कप्तान गुलसोब (गुलसाहिब)।"

शोरोगुल करते बच्चों का यह जलूस जूनद्‌यद के आवास पर पहुंचा। खटाक से दरवाज़ा खोलकर जूनद्‌यद बाहर आई। हंसमुख, चेहरे पर बनावटी संजीदगी, ऊंह, गुलसोब! बुद्‌दू कप्तान। यदि ऐसे बुद्धू कप्तान बनते तो.......। और उसी क्षण दोनों मां-बेटे ने एक-दूसरे को गले लगा लिया।

गुल साहिब जून का क्या लगता था। यह किसी को मालूम न था। कुछ उसे दद्य की भतीजी की लड़की का बेटा समझते थे तथा कुछ उसके दामाद का पोता किन्तु इस विषय में अधिकतर लोगों की यह राय थी कि जून इसे मकदूम साहिब की सीढ़ी से उठा लायी थी। इसलिए इनका आपस में क्या सम्बन्ध था, हमें उससे क्या मतलब ? मगर इतना सब समझते थे कि यदि जून की किसी में जान है तो वह गुलसाहिब में। जब से गुलसाब 'म्लेशाफौज' में भर्ती हुआ था, तब से वह हमेशा उसका नाम लेती थी। उसकी हर सांस में गुलसाहिब था। वासा! क्या तुमने सुना ? आज़ गुल ने 'उड़ी' से पत्र लिखा था लिखता है– उसने एक ही दिन सत्रह कबाइलियों को मौत के घाट उतार दिया। स्वनमाली! क्या कहूं ? गुलसाहिब पर बलि हो जाऊं। उसने 'जवाबी कार्ड' लिखा, मानो कागज पर मोतियों के दाने जड़े हों।

जमाल मीरा ! हमारी दस पीढ़ियां रोशन हुईं गुलसाहिब से। वह इस समय भी हमारे कश्मीर की रक्षा करता है।

× × × ×

जिस दिन गुलसाहिब ने वापिस युद्धक्षेत्र में जाना था उस दिन सारे गांव की भीड़ जून के घर जुट गई। सुबह-सुबह ही सब ने चूल्हा जलाया था। सूर्योदक तक सब स्त्री-पुरुष, बड़े तथा छोटे जून के आवास पर इकट्ठे हो गए। कुछ तो प्रसाद लेकर आये थे, कुछ तावीज़ लेकर, कुछ किसानों की औरतें ओढ़नी के आंचल में आचार लेकर, कुछ चटनी के गोले लेकर आई थीं। बहुत-सी औरतें सूखे मूल पत्तों की गुच्छियां लाई थीं। ज्यूं ही जून ने दरवाज़ा खोला, त्यों-ही सब यही चाहते थे कि मैं ही पहले अपनी भेंट दूं।

''अरे जूनद्यद! जूनद्यद। लो ये सूखे पत्तों की गुच्छियां, यह 'फार्मी' शलगमों की।'' लज्जित होकर ग्वालिन रहत कहने लगी, ''यह मैंने गुलसाहिब के वास्ते सुरक्षित रखी थी। यह सूखे साग की गुच्छियां अपने पास रख लो।'' तनिक यह साग की गुच्छी भी ले लो। यह तो 'खशपोर' की बाड़ी का वसन्तकालीन कड़म साग है।'' रमज़ान ने कहा, ''गुलसाहिब से कहो कि ऐसा साग शहर में मिलना सम्भव नहीं है।'' ''यह थोड़ा-सा आचार भी ले लो, द्यदी! यह निचले गांव के 'कश्मीरी कड़म' का अचार है।'' ''जूनद्यद! गुलसाहिब को बुलाओ। आखिर वह है कहां? क्या वह अभी आराम में ही है ?'' वासुभट्ट ने आहिस्ता से कहा।

''कहा न, तुम मुर्ख हो। क्या वह अभी सोया ही होगा। वह मुंह धोने के लिए नाले पर गया है। वह आ ही रहा होगा।'' हंसते-हंसते जूनद्यद ने कहा।

''चिन्ता हो रही है। मैं कंठकाक से छोटा तावीज़ लाया हूं। चाहता हूं कि मैं उसे स्वयं पहना दूं।'' वासुभट्ट ने त्यौरियां चढ़ाकर कहा। इतने ही में गुलसाहिब नाले से मुंह धोकर आया। ज्यों ही वह नज़दीक पहुंचा त्यों ही कइयों ने उसे गले लगाया, कइयों ने उसके माथे को चूमा, कइयों ने उसे घेर लिया। इसके बाद जब वह वर्दी पहनकर तथा बन्दूक कन्धे पर लेकर निकला तो प्रसन्नता से सब फूले न समाये। औरतों ने जी खोलकर उसे आर्शीवाद दिया जाओ, गुलो! फलो-फूलो। तुम्हारे सब कष्ट दूर हों और तुम्हारा भाग्योदय हो।

सारा गांव उसके पीछे प्राय: चार मील तक चला। जब वह आंखों से ओझल हुआ तो सारे लौट आये।

× × × ×

आज सुबह से ही सारे आसमान पर कुहरा छाया हुआ था। सूर्योदय तक शिकर मालाएं (कश्मीरी में 'सगर माल') बादलों ने घेर ली थी और बादल पहाड़ों की तलहटी तक फैल गये थे। पूर्व की ओर से विकराल बिजलियां चमक रही थीं। लगता था जैसे कहीं पर बारिश की धारायें समेट रही हों। प्राय: ऐसे दिन गांव के लोग अन्दर ही बैठते हैं।

किन्तु आज सारे लोग नाले के किनारे टोलियों में बैठकर छोटे सेतु के नीचे कानाफूसी कर रहे थे। सब व्याकुल थे। पुरुषों की मण्डली से ज़रा दूर हटकर औरतें व्याकुल बैठी थीं। पुरुष भी दुखी थे। बिना चादर ओढ़े वासुभट्ट हांफता हुआ उनके पास पहुंचा और ज़ोर से रोने लगा। ''करीम जुव'' यह क्या सुना ? अफसोस आज प्रलय हुआ........'' कहते-कहते उसका गला रुंध गया। ''चुप-चुप'', मुंह पर हाथ रखकर करीम क्राल ने उसे कहा- ''इससे काम नहीं बनेगा। धीरज धरो। सोचो जूनद्यद को किस तरह हम संदेश देंगे।''

''यह क्या हुआ। यह किसने कहा ? यह किसने चाहा ?''

हिचकियां भरकर वासुभट्ट ने उससे पूछा।

''किसने चाहा ? हमारे खोटे भाग्य ने। कल जबार डाकिया आया था। उसने मुझे गुलसाहिब का (आहें भरकर) कार्ड दिया। वह खाली था। जैसे उसको जूनद्यद ने भेज दिया था वैसे। लगता है कि उसे युद्ध भूमि पर......'' इससे आगे करीमक्राल कुछ न बोल सका।

× × × ×

इस तरह एक-एक करके ये सब निराश होकर जून के आवास पर पहुंचे। जून आज भी गोशाला में गायों को घास देने गई थी।

जूनद्यद! अन्दर से ही उसने आवाज दी ''कौन-वासा है ? आज क्यों आप प्रातः ही उठ गये हैं ?'' गोशाला में से निकलते- निकलते उसने अपने-आप से कहा- ''गुला ने बदरी (गाय) को सर पर चढ़ा दिया। अहो, अहो आपके साथ कोई दुर्घटना हुई है?'' लोगों की भीड़ देखकर जून चकित हो गई। ''कहो क्या कुछ झगड़ा हो गया ? कहते क्यों नहीं हो?''

सब आवाक् रह गये। किसी ने सांस तक नहीं ली।

''कहो, आपकी जुबान बंद हो गई क्या ? कुछ तो कहो।'' कहते-कहते जून का रंग बदलने लगा, ''क्या हो गया। क्या हुआ ?''

आखिर वासुभट्ट अपना मुंह नीचा करके साहस कर कहने लगा - ''जूनद्यदी ! बलि हो जाऊं।'' वह ज्यों ही बोला, ज़ोर से रोने लगा। सब सिसकियां भरने लगे। उनकी आंखों से आंसुओं की झड़ी बहने लगी।

जूनद्यद कुछ बिगड़ गई। उसका रंग फीका पड़ गया उसने पूछा ''क्या, गुला ठीक है? गुला सुरक्षित है।'' वासुभट्ट ने धीरज के साथ उसे कार्ड दे दिया। जवाबी कार्ड। यह कल पहुंचा मगर......यह खाली........पता नहीं........।''

जूनद्यद स्तब्ध-सी खड़ी-की-खड़ी रह गई। कार्ड हाथों-हाथ हथियाने से सिमट गया था। धीरे-धीरे उसने वह खोला और दोनों तरफ देखने लगी। चारों तरफ सन्नाटा छा गया। चिड़ियों की चहचहाहट तक रुक गई।

जून के चेहरे का रंग फीका पड़ गया। इन्हीं दो क्षणों में उसके चेहरे की झुर्रियां साफ़ दिखाई देने लगी थीं और उसकी आंखें में से आंसू झरने लगे। वह वापिस अंदर चली गई।

और जूनद्यद ने अट्टहास किया। सब निश्चेष्ट हो गये। वह बोली–''वासा मैंने कहा था ना, तू बुद्धू है। यदि तू बुद्धिमान होता तो क्या अब तक तहसीलदार न बनता ?'' जून व्यंग्य से सबों को कहने लगी, ''क्या तुम्हें दिखाई नहीं देता है ? देखो कार्ड खोलकर, इसकी सिलवटें साफ़ दिखाई देती हैं। दूर से ऐसा लगता है मानो पेंसिल से कार्ड पर लिख दिया हो। गुल ने मुझे औरतों की फौज में भर्ती होने के लिए लिखा है।'' जून ने प्रत्यक्षरूप से कहा।

फिर जिस दिन जूनद्यद लकड़ी की बन्दूक-लेकर 'कोरा पोछ़' (कश्मीरी पहरावा) पहनकर तथा कमर बांधकर निकली, उस दिन सारे गांव में मायूसी छा गई थी। उस दिन कोई बच्चा 'काकपोर' में नहीं था। न ही कोई कौआ वृक्षों पर कांय-कांय कर रहा था।

ooo

कश्मीरी कहानी

आग

❑ मूल – डॉ० रतनलाल शान्त

❑ अनु० – स्वयं लेखक

जगन्नाथ ने दरवाज़ा ज़ोर से खोला तो दोनों पल्ले खटाक-से टकरा चकरा गए। अंदर की ओर जो चिथड़ा परदा लटक रहा था, वह कील के समेत खिंच कर टूट गया और एक पल्ले से लिपट के अड़ा रहा।

जम्मू के जूनमास की दोपहर। कमरे के बाहर पत्ता भी हिल नहीं रहा था और न अंदर ही किसी की कोई हरकत या आवाज़ आ रही थी। जगन्नाथ के इस तरह दरवाज़ा फटक कर खोल देने से जैसे बाहरी आग की एक तेज लपट कमरे की गुफा में घुस गई। कमरे में अंधेरा था और घर के लोग गुमसुम लाशों की तरह पड़े थे। गुफा का मुंह क्या खुला, भीतर की निष्प्राण हवा को किसी ने झिंझोड़ दिया और लाशों में हरकत आ गई।

जगन्नाथ कमरे में प्रवेश करता, पर पैर कहां रखता ?

दरवाज़े से बिल्कुल सटी सोई पड़ी थी शोभावती। वह हड़बड़ाकर उठ बैठी, साड़ी समेटी और असमंजस में पल्लू सिर पर बांधने लगी। वह आंखें मल कर आंगतुक को पहचानने की कोशिश करने लगी जो दरवाज़े की चौखट को पकड़े दहलीज़ पर खड़ा था, न अंदर कदम रख रहा था, न बाहर।

शोभा के पैरों के पास चांद जी लेटा था। उसे किसी का यों असमय आना और नींद का टूट जाना बहुत खल रहा था। वह उठा नहीं। सिर्फ आंखें फाड़-फाड़ कर और हाथ की ओड़ करके देखने लगा कि चौखटे में खड़ा यह आकार कौन है।

चांद जी के पैरों से लगी पोटली बनी पड़ी थी चुन्नी उसकी पत्नी और बेटी डाली। चुन्नी पहली ही आवाज़ पर उठ खड़ी हुई और पास ही रसोई में गई कि अस्त-व्यस्त साड़ी-पल्लू को ठीक से संभाल ले।

इस नथुना-कमरे की अधपक्की दीवारों और खिड़कियों के कांच, सब को मुहरबंद कर दिया गया था, पुराने अखबार चिपकाकर या उतारे कपड़े कीलों से लटका कर। इससे दिन को भी कमरे में घुप अंधेरा रहता था कि कहीं रोशनी के साथ बाहर बरसती आग की लहर कमरे में न घुसने पाए। छत पर घूमता पंखा भी गर्म हवा को बट-बट कर इन गुफा-मानवों पर जैसे कोड़े बरसा रहा था। पर ये लोग उसके अभ्यस्त थे। अब जो दरवाज़ा खुला, परदा टूटा तो रोशनी का अजदहा मुंह खोले सबको लीलने आ गया था।

शोभा ने सोचा ''यह चांद जी का पिता होगा। राहत के पैसे लेकर आता है तो ऐसे ही भड़कता आता है। जैसे रास्ते में किसी पगले भूत ने पकड़ लिया हो।'' सोचकर ही उसके होठों पर घृणा और फटकार के नित्यवचन आए। फूट भी जाते यदि एक अलग आवाज़ न आती :-

''मैं हूं मैं, शोभावती! मैं......मैं.......जगन्नाथ.........''

न शोभावती को और न उसके बहू-बेटे को याद आ रहा था कि यह उनका कौन रिश्तेदार आन पड़ा है। आया तो अंदर आकर दरवाज़ा बंद क्यों नहीं कर रहा। वे सोए पड़े थे, पतले झीने कपड़े पहन कर, दरियों पर या नंगी सीमेंट के फर्श पर, चाम को ठण्डा रखने की कोशिश में......अब कहीं जाकर शोभा समझ गई कि यह तो 'जगरा' है, जिसका व्यवहार-बर्ताव, सबमें 'धम्म' और धमाका रहता है। चांद जी अब खड़ा हुआ, एक कील से लटक रही अपनी बनियान उतार लाया और पहन ली, रसोई से दरी उठा लाया और कमरे में बिछा दी।

जगन्नाथ के अंदर आने पर चांद जी ने पल्ले उढ़का दिए, परदा ठीक कर फैला दिया। उसे भी याद आ गया था कि यह जगन्नाथ है, या 'जगरनाथ' जिसे 'जगरा' कहकर ही पहचाना जा सकता था।

बैठते ही जगन्नाथ ज़ोर से शोभावती को संबोधित करके बोला-

''शोभावती ! बड़ा दुखी हुआ मैं, जब तुम्हारे लड़के के लापता होने की खबर सुनी.......अब सोचा जम्मू आ ही गया हूं, तो चलो.....''

सुन कर जैसे शोभावती के पके फोड़े पर किसी ने अनजाने में ज़ोर से हाथ फेर दिया हो। वह 'हाय !' कहके फफक पड़ी-

''ओ मेरे पुतरा रे ! मेरे लाल रे !''

हिचकियों और सिसकियों में तड़पती वह एक कोने में बैठ गई, सिर को घुटनों पर रखके, पछताती हुई।

दरवाज़ा रोज़ की तरह बंद था, परदा फैला हुआ था। कमरे में पंखा वैसे ही गरम हवा भर-भर के बैठे हुए लोगों पर फेंक रहा था। शोभावती के रोने-पुकारने से कोई फर्क नहीं पड़ा। कमरे के बाहर दोपहर की धूप ने सड़कों-गलियों की आवाजों को सोख लिया था और खुद सांय-सांय करती घूम रही थी। कमरे में हो रही इस मिमियाहट से कहीं कोई हरकत नहीं हुई, किसी पेड़ के पत्ते ने हामी नहीं भरी, किसी चिड़िया ने पर नहीं फैलाया।

हिचकियों-ही-हिचकियों में शोभा ने चांद जी से पूछा-

''तेरा बाप कहां गया, रे ?''

और यह आवाज़ बाहर आंगन में बैठे बाप ने सुनी। उसने 'जगरे' को आते देखा भी था। शायद यह किसी की पुकार के ही इंतज़ार में था। आंगन में एक बोना-सा पेड़ था, जिस पर या तो कांटे उगे थे या बुझी हरियाली के मैले-कुचैले पत्ते। इसी पेड़ की छाया में वह बैठा करता था, दो ईंटों पर। दिन में वह पेड़ की छेदों वाली छाया के साथ-साथ ईंटे सरकाता चलता और यों एक दीवार से शुरू करके शाम तक दूसरी दीवार तक पहुंच जाता। कभी ईंटे इस कमरा-भर घर की गज़-भर छाया में ले जाता और कुछ देर वहीं बैठा रहता। सुबह का अखबार, जो चांद जी दोपहर के खाने तक पढ़ चुकता, या जिस पर छपे मृतकों के फोटो देखकर पहचानने के लिए शोभा उसे अपने पास संभाल के रखती, खाना खाकर इस परिवार का स्वामी वही अखबार लेकर आंगन में अपना दिन गुज़ार लेता। न सिर्फ दिन को, बल्कि रात को भी वह कमरे के अंदर न लेटता न सोता। शायद इसलिए कि शर्म-हया के कारण बहू चुन्नी मन से हाथ-पैर पसार नहीं सकेगी, किसी रात यदि चुन्नी और चांद जी किसी बहाने कमरे के बजाय भीतर रसोई में ही दरी डालकर सोने की पहल करते, तो उसके लिए कमरे में चादर बिछ जाती। घर की सम्पत्ति में एक ही तख़्तपोश था जो गर्मियों में आंगन में ही बिछा रहता और जिस पर वह रात को अकेला और संतुष्ट होकर सो रहता। सोने का यह अघोषित नियम विगत पांच बरसों में अपने-आप बना और स्थापित हो गया था। अब इस कार्यक्रम पर न किसी को आपत्ति थी न यह असामान्य लगता था। न कभी कोई सवाल ही उठा, न किसी ने जवाब की अपेक्षा की।

आंगन की ज़मीन की रेतीली सतह में अनगिनत कंकड़, मिट्टी के ठीकरे और मलबे की सीमेंट के टुकड़े गहरे तक पैठ गए थे और इस कमरा मकान में किराए पर रह रहे नंद लाल को ये कंकड़ और मलबे के टुकड़े आंख में खटकते थे। वह दिनभर इनको हाथों से कुरेद-खोद निकालता, उनकी ढेरियां लगाता। फिर उन्हें एक कपड़े में बांध कर उठा ले जाता और बाहर सड़क पर फेंक आता। इस 'मकान' के मालिक ने दूसरे वादों के साथ ही यह भी कहा था कि आंगन में मिट्टी बिछवा देगा और घास लगवा देगा। अब यदि तीन साल बाद उसे यह वादा फिर एक बार याद दिलाया जाता तो नतीजन अपने लिए कोई दूसरा मकान ढूंढ़ने की मुसीबत मोल लेनी पड़ती। मालिक बात टालता गया, किराएदार चुप रहा उसके परिवार ने भी चुप रहने में ही कुशल समझी।

वस्तुतः नंद लाल के लिए काम और व्यस्तता की संभावना खुल गई थी वह ठीकरे समेटता रहा और यों दिन काटता रहा।

इस समय पत्नी की पुकार सुनकर नंदलाल ने आराम से ईंटे उठाईं और उन्हें दीवार के पास रख दिया। उसने बनयाइन और निक्कर पहन रखी थी। निक्कर की जेब में कपड़ा ठूंस दिया और धीरे से खड़ा हो गया। जल्दी क्या थी ? 'जगरा' को तो कब से जानता है वो....।

तभी फिर आवाज़ आई शोभा की, चांद जी से फिर कह रही थीं--''अरे कहां गया तुम्हारा बाप ? चांद जी, देख तो आओ!''

इतनी देर में नंदलाल दरवाज़ा खोलने लगा था कि अंदर की यह ऊंची आवाज़ जैसे उसके मुंह पर घूंसा आ पड़ा..........

"सुनो, इन्होंने लाल जी को कश्मीर में देखा है.........मेरे लाल जी रे! तुम्हारी मां तुम्हारी बलाएं ले, तुम पर वारी जाए........" वह फिर रोने लगी।

जगन्नाथ ने ज्योंही नंदलाल को देखा, उसने मुंह सिकोड़ कर फेर लिया। फिर उसे देखा तो उसकी आंखें खुली की खुली रह गईं। उसने उंगली दातों तले दबाकर नाटकीयता से कहा--

"ओह! ओह! चांद जी, तुम्हारे पिता जी पूरे होश-हवास में हैं ? ये इस कड़कती गर्मी में बाहर क्या कर रहे थे ?"

नंदलाल जगन्नाथ की बगल में बैठने ही वाला था कि जगन उचककर दूर हटा, जैसे उसे नंदलाल का कोई संक्रामक रोग लग जाता। नंदलाल ने नाक सुड़क ली। शोभा हल्के-हल्के कुनमुनाती रोती रही। चुन्नी रसोई की देहरी पर बैठी, डाली पर अखबार से हवा झाल रही थी।

चांद जी को अब सब याद आ रहा था। यह 'जगरा' कश्मीर में अकेला अनब्याहा रह रहा था। वह एक बड़े से मकान के आधे हिस्से का मालिक था-भुतही कोठी का अकेला वारिस। मकान की भीतरी साझी पौढ़ी को यह कभी इस्तेमाल में नहीं लाता, बल्कि अपने लिए बाहर आंगन में एक अलग सीढ़ी बनवा दी थी। आंगन के अपने हिस्से में भाई-भतीजों या उनके बच्चों को पैर पटकने न देता। यों कि उसका होना न होना अड़ोस-पड़ोस के लिए बराबर था। लोगों को उस भुतही कोठी के निवासी का आभास तब होता जब वहां कोई दुर्घटना हो जाती, वह किसी अधेड़ विधवा को उसके बच्चे समेत ले आता, फिर 'बीवी' से रोज़ उसकी चख-चख होती, उसे पीटने लग जाता और चीखती-चिल्लाती औरत का लड़का 'जगरे' को मार-मार कर अधमुआ कर देता। औरत बच्चे और घर का कुछ सामान लेकर आग उगलती उसे छोड़ जाती। जगन्नाथ सीधे किसी हस्पताल में दाखिल हो जाता और हफ्तों वहीं पड़ा इलाज करवाता या रिश्वत देकर कमरे और वार्ड बदलवाता रहता........इधर किसे पड़ी थी कि पता करने जाता कि ज़िंदा भी है या मर गया। छः महीने या साल बाद फिर वैसा ही नाटक दोहराया जाता......पुलिस आ जाती और मामला धीरे-धीरे शान्त हो जाता। वह अगले दो चार महीने वह गायब हो जाता.......फिर लौट आता तो कोठी लड़ाई-गाली-गलौज से गूंजने लग जाती।

जगन्नाथ समझ गया था कि उसका वहां आना उपेक्षित किया जा रहा है। उसने नंदलाल को यों संबोधित किया :

"सच बात यह है कि मैंने खुद उसे देखा नहीं। वहां एक है 'सलाम वोका'.........तुम नहीं जानते उसे। उसी ने देखा 'नवाकदल'[1] में उसे किसी नानवाई के पास नौकरी करते हुए.....

---

1. *नवाकदल-श्रीनगर शहर को निचले (या भीतरी) इलाके का एक मुहल्ला।*

इस पर फिर चुप्पी छा गई। नंदलाल जेब से कपड़ा निकाल कर पसीना पोंछता रहा, दाएं-बाएं देखता शायद इस आशा में कोई जगरा से और पूछताछ करे।

हिचकियों की आवाज़ थम गई। शोभावती बोली, जैसे खुद ही से पूछ रही हो-"कब जी ? कब देखा ?"

जगरा का उत्साह बढ़ा। उसने चौकड़ी मारी और बोला--"अरे....तब से तीन महीने से ज़्यादा हुए होंगे..... मुझे भी फुर्सत नहीं मिली अब जो इधर आया तो यहां यह आग बरसाती गर्मी.... हां, मैंने कसम खा ली..... हरामी का पिल्ला होगा जो दोबारा इधर आएगा....."

चांद जी को जगन्नाथ अखरने लगा था, मगर वह बोल कुछ नहीं पा रहा था। क्या बोलता ? तभी उसे पत्नी ने इशारे से कहा कि पूछो इससे पूछो। बड़े आत्मसंघर्ष के बाद आखिर उसने पूछ ही लिया-

"आपको फुर्सत नहीं मिली तो कमज़कम संदेसा तो भिजवा सकते थे, महाराज ! किसी के ज़रिए !"

अब जगन्नाथ की जान-में-जान आई कि उसकी अहमियत पता चलने लगी है इनको। घर के आदमी एक-एक करके उसके हाथ आ रहे हैं। उसने तकिया थोड़ा सरका दिया, टांगें लंबी पसार दीं और दायां घुटना बाएं पर रख लिया।

चुन्नी पानी का गिलास लेकर खड़ी थी। जगन्नाथ ने गिलास लिया। पर पहला ही घूंट पीकर नाक-भौं सिकोड़ ली--

"इसमें बर्फ नहीं डालते ?........नंदलाल जी, अभी तक आप लोगों की समझ में यह बात नहीं आई है कि जाने कितने समय और यहीं जम्मू में ही बसना होगा....."

दूसरा घूंट मुश्किल से हलक से उतार कर बात जारी रखी-

"अरे यहां रहना है तो यहां के लोगों की तरह जीना सीखो...हां मेरी बात गांठ बांध लो। नहीं तो न यहां के और न वहां के रहोगे....."

चुन्नी पानी का दूसरा गिलास लाई और उसे थमा दिया। वह चुन्नी को ग़ौर से देखता रहा जैसे उसे जानता न हो और अब पहचानने का अभ्यास करने लगा हो पर वास्तव में वह चुन्नी को देखभर रहा था। चांद जी के शब्द उसके कानों में गूंज रहे थे। फिर उसी को संबोधित किया-

"शायद तुम सोच रहे हो कि मैं 'नवाकदल' जा नहीं सकता.....अरे रहने दो, तुम्हारी समझ में यह सब आएगा नहीं.........सुनो, मुझ पर कोई 'पाबंदी' नहीं है।"

और फिर बाज़ू भांजते हुए घोषणा की--

"तुम लोगों ने (कश्मीर से) भाग कर बड़ी ग़लती की। नहीं तो........"

नहीं तो क्या नंदलाल किसी अनजानी ग़लती पर हमेशा पछताता-सा नहीं लगता था? वह कुछ नहीं बोला, सिर्फ जगन्नाथ की ओर यों देखता रहा जैसे अपनी गलती के लिए माफी मांगना चाहता हो--दो, जो भी सज़ा दो।

कमरे के अंधेरे-से वातावरण में 'जगरा' के शब्द, जो उसने नितान्त लापरवाही से बोले थे, धुएं की तरह तैरते रहे। चांद का दम घुटने लगा। पूछ बैठा--"कहां सुना ?"

जगन्नाथ की उपेक्षा देखकर उसने अपने प्रश्न को खोल कर दोहराया

"वही जो 'सलाम वोका कि धोका'......वह लाल जी को कहां जानता है जो उसने......"

यह सुनकर जगन्नाथ झटके से उठ बैठा--

"तुम बोल क्या रहे हो, चांद जी ? किसी भी बात का पता हम को यहां कश्मीर में पहले चलता है, आप लोग यहां रेडियो पर वह अगले दिन सुनते हो। हम लोग मतलब 'वो लोग' सब जानते हैं........"

लाल जी के दिख जाने की खबर ही कुछ ऐसी चमत्कारी थी कि नंदलाल की अलसाई आंखें खुलीं तो खुली ही रह गईं। वह भी बोला --

"मगर जगन्नाथ, दिल-ही-दिल तुम लोग वहां डरे-सहमे रह रहे होंगे.......?" कह कर उसने अपने हाथ-पैर समेट लिए जैसे खतरा अब उस पर आने वाला था। यह सुनकर जगन्नाथ नंदलाल पर झपटा:

"रहने दो नंदलाल! सुनो, बात सुनाता हूं। 'वो'[2] मुझे रात को आकर बता जाते हैं कि "कल 'हब्बा कदल' साइड नहीं जाना, या यह कि 'ज़ैना कदल' पार नहीं जाना या 'लाल चौक' जाना हो तो दोपहर से पहले लौट आना। हमें उन जगहों पर कल 'ऐक्शन' करना है।" 'ऐक्शन' शब्द पर उसने विशेष बल दिया।

'ऐक्शन'......'ऐक्शन'........'ऐक्शन'। चांद जी को यह शब्द कमरे की हवा में तैरता दिखा, जो कभी पंखे से टकराकर दीवारों से पटकाया जा रहा था, दीवारों में उस जगह दरार पड़ रही थी, ईंटें गिरने लगी थीं और देखते-देखते फर्श के बीचो-बीच बड़ा खड्ड हो गया जिसमें लुप्त हो रहा उसका छोटा भाई लाल जी जैसे हाथ हिला-हिलाकर और चिल्लाकर कह रहा हो-दया करो मुझ पर, मुझे इस खड्ड से बाहर खींचो.........यहां कोई शीतलता नहीं, मेरे पैर जिस मिट्टी में धंसे जा रहे हैं, वह लावा है........मैं झुलस रहा हूं.....

चुप्पी छा गई थी। शायद ये लोग अपने जाने-पहचाने 'हब्बा क़दल' और 'ज़ैना कदल' सुन कर विस्मित सपनों में खो गए थे।

---

2. *वो-संकेत आतंकवादियों की तरफ है।*

नंदलाल ने अपनी जेब से ठीकरियां निकालीं और एक-दूसरे पर रखकर उन का घर बनाने के खेल में लग गया।

चांद जी अब जगन्नाथ के सामने खड़ा था--''मैंने सिर्फ सुना था। आज खुद अपनी आंखों से देख रहा हूं कि आप वहीं रहते हुए कितने खुश हैं।''

जगन्नाथ अपनी खुशी को और प्रकट करने लगा--

''अरे क्या बताऊं। वे दिन कहां फिर आएंगे ?........अब सिर्फ मैं रहा उस मुहल्ले में.......मैंने पूरे इलाके को अमन का इलाका बना दिया है.......लेकिन जो मैंने इन पापी आंखों से देखा वो..........जो भी हो, अब उनकी लगाम कस के रखता हूं.......''[3]

कह कर जगरा ज़मीन पर पूरा पसर गया और करवट बदली। चांद जी ने चुन्नी की ओर देखा जैसे उससे कह रहा हो-''हां सब जानता हूं बहादुरी''। चुन्नी ने आंखों-ही-आंखों में चांद जी को उत्तर दिया ''डींग क्या मार रहा है यह जगरा.........।''

जगन्नाथ ने जेब से सिगरेट निकाली मुंह में रखी और चुन्नी से इशारे से माचिस मांगी। नंदलाल की ओर देखकर कहा --''तुम पीते हो नहीं।'' पर नंदलाल मगन था। उसने ठीकरे फिर पोटली में बांधकर जेब में रख लिए थे।

शोभावती जगरे की तरफ यों देख रही थी कि जैसे वह इधर-उधर की हांक चुकेगा तो आखिर मतलब की बात पर आएगा ही, जिस कारण वह आज आया है। पर अपने स्पष्टीकरण के लिए भारी आवाज़ में उससे बोली--

''अब तीन साल होने वाले हैं, उस दुर्घटना को हुए.........तुम भी तीन महीने पहले की खबर सुना रहे हो.........''

''अच्छा है। बैठने दो उसे वहीं। टिकने दो नानवाई की नौकरी में ही उसे।.........हम भी बेखबर बने रहेंगे.........बस, अब की मैं कश्मीर लौट के ज़ाऊंगा तो तुम देखती रहना........'' वह सिगरेट के कश-पर-कश खींचता रहा और आंखें मींच के धुएं का स्वाद लेता रहा.......।

शोभावती भांप गई कि जगरा अधनशे की हालत में आंखें मूंदने लगा है। ऐसे में उससे अपनापा जोड़ते हुए बोली :

''सुना है जी, कि हमारे मुहल्ले के दो तीन परिवार वापिस गए हैं।''

पत्नी की यह राज़ की खबर नंदलाल के कानों में पड़ी तो उसके मन में जिज्ञासा हुई--''जगन्नाथ, तुम्हें यह तो नहीं मालूम कि वे लोग प्राइवेट बसों में गए या सरकारी 'कनवाय'[4]

---

3. आतंकवादियों से उसकी खूब बनती है।

4. कनवाय = Convoy

में ?'' पूछ कर नंदलाल अपने में फिर पहले की तरह खो गया। वह उंगलियों पर कुछ गिनने लगा।

पर पति-पत्नी के ये सामान्य तथा निरुद्देश्य प्रश्न सुनकर जगन्नाथ के कान खड़े हो गए। उसने शोभा के कथन की प्रतिक्रिया दी-

''वापिस जाएंगे ?'' आवाज़ को ऊंचा करके अपना फैसला-सा दिया--''उनके फरिश्ते भी नहीं जाएंगे। हां!.........पर तुम्हें यह खबर किस कनफुसके ने सुनाई ?''

तभी पंखा चलना बंद हो गया।

नंदलाल एकदम खड़ा हो गया। नाक पोंछी और घोषणा की--

''चार बजे ले गए। तीन घंटों के लिए !''[5]

और बोलकर वह नीचे बैठ गया।

कमरे में अंधेरा कम करने के लिए चुन्नी ने खिड़कियों पर पड़े परदे समेट लिए और एक पल्ला, जो अखबारी कागज़ से बंद नहीं था, ज़रा-सा खोल दिया। जगरा पसीना पोंछने लगा--''जहन्नुम! जहन्नुम ! क्यों जी शोभावती, तुम लोग यहां भी कंजूस-के-कंजूस रहे। दुनिया जहान ने कूलर लगवा लिए हैं, तुम क्यों नहीं लगवाती ?''

शोभावती को दौरा-सा पड़ा। देखते-देखते उसकी घिघी बंध गई ''मेरे लाल जी रे ! तपते तंदूर की गर्मी में कैसे रह रहे हो ''

सुनकर चांद जी ने मां को डांटा-

''अभी किसे पता वही है कि कौन है, कहां क्या है.......मुझे इस बात में ज़रा भी सचाई नहीं लगती.........''

पर शोभा की आंखों की झड़ी रुक नहीं रही थी। रोते-रोते ही बोली-

''मेरे लिए टिकट करवा दो। कल ही। मैं खुद जाकर ढूंढ़ लूंगी।''

माहौल ऐसा हो गया कि जगन्नाथ भी चुप हो गया। जैसे पछता कर स्वयं से कह रहा हो--''क्यों की ऐसी बात अभी ? निरे गधे हो।''

शोभा चुप हुई तो फिर चुप्पी छा गई। नंदलाल ने घुटनों के बीच सिर लटका दिया। अब चांद जी मां को धीरे से समझाने लगा--''मां! आज तक हम इसी तरह कितनी बार भ्रम को सच मानते रहे। क्या पता यह एक और भ्रम ही हो!''

---

5. बिजली ले गए, कटौती करके।

जगन्नाथ समझ गया था कि उसकी असामायिक उतावली और बेमौके की बात से ही माहौल बिगड़ा। उसने उलटे चांद जी की नकेल कसना ठीक समझा--

"कैसी बातें करते हो, चांद जी ? मैं पूछता हूं कहां ढूंढ़ा तुम लोगों ने उसे ?......अरे वह घर से छिपकर गया तो कश्मीर से बेहतर जगह उसे कहां मिल सकती थी, छिपे रहने के लिए ?......तुम्हें आज के हालात की कुछ खबर तो है नहीं। यहां जम्मू में ज़रा-सा पटाखा फटता है तो तुम कोनों में दुबक जाते हो......मगर इतना जान लो वहां जो कुछ हो रहा है अकारण नहीं हो रहा.........अब कारण तो मैं तुमको बता नहीं सकता....."

जगरे की बातों के कभी खुले तो कभी छिपे इशारों के अर्थ करते-करते चांद जी चकराने लगा था। उसका बाप घुटनों में सिर लटकाए जैसे किन्हीं भयानक दिवा स्वप्नों में धँसता जा रहा था.......अठारह बरस का उसका छोटा भाई कालेज से लौटकर बाप के लिए दवाई लेने गया और लौटा नहीं। और उसी क्षण से शुरू हुई थी अनंत जानलेवा खोज चारों ओर, शहर के अंदर, शहर के बाहर। नदी नाले उलीचवाए गए, जंगलों में ढूंढ़ने के लिए आदमी दौड़ाए गए। तीर्थों में जाकर देखा। पीरों और मज़ारों पर लीरें बंधवाईं, मन्नतें मांगीं। तावीज़ें घर में लटकाईं। हवन करवाए। जब भी कभी उनके गांव-कस्बे का नाम आ गया तो उछल पड़ते हैं....... अपने-अपने अंदाज़े लगाते हैं और समझ बैठते हैं कि वहां आग-ही-आग लगी होगी अब उनको कौन बताए कि भाईलोगो यह निरी पालिटिक्स है और कुछ नहीं।

जगरे की यह दलील सुनते-सुनते चांद जी तंग आने लगा। उसने सोचा कि अभी बैठा रहा तो मेरा सिर चकराएगा। कमरे के बाहर अभी धूप के ढल जाने के कोई संकेत मिल नहीं रहे थे। वह उठ खड़ा हुआ तो उसका माथा भन्नाया, चुन्नी ने उसे लड़खड़ाते देखा तो झट से बांह पकड़ ली। चांद जी ने झटके से पत्नी को अलग किया जैसे वह ही उसके दुख का कारण थी। वह ऊंची आवाज़ में नंदलाल से बोला, नंदलाल ने घुटनों से सिर निकाल ऊंचा किया और शोभावती को जैसे कोई झिंझोड़ गया-

"हे जगन्नाथ ! मैं कल कश्मीर जाऊंगा।"

जगन्नाथ को इसी का इंतजार था। एकदम उत्तर दिया-

"जाना है तो जाओ। मैं सलाम वोका के नाम खत देता हूँ।"

चुन्नी रसोई में थी। जगन्नाथ ने दो-चार बार रसोई की ओर देखा था कि उधर कुछ नहीं हो रहा है। चुन्नी समझ गई थी कि उसे चाय चाहिए। पर इस समय पति की दहाड़ सुन कर एकदम बाहर आई।

जगरे पर इस दहाड़ का कोई असर नहीं था। उसने दूसरी सिगरेट निकाली और खिड़की का पल्ला पूरा खोल दिया। बाहर नज़र जमाए हल्के से चांद जी से बोला-

''मगर ऐसी गलती कभी नहीं करना।''

चांद हैरान था- अभी क्या कहा इसने और अब क्या बोल रहा है!

जगरे ने अपनी बात की व्याख्या यों की-''अब देखो। तुम जाओगे, पर लोगों को तुम्हारा असली मकसद कहां मालूम......''शोरी'' भी तो गई थी अपना छूटा सामान अपने ही घर से निकाल लाने......''

''शोरी''[6] का नाम सुन कर सब के कान खड़े हो गए, जैसे गहरी नींद से उठाए गए हों। कमलेश्वरी, लड़की-स्कूल की प्रिंसीपल। कश्मीर गई कि स्कूल की अध्यापिकाओं का वेतन-बिल पास करा दूं। बेचारी महीनों तनख़्वाह ले नहीं सकी हैं..... पर उसे जिस तरह मार दिया गया, वह कहानी सुनकर सब थर-थर कांपने लग जाते। जितने सुनाने वाले उतनी बेदर्द कहानियां ....

चुन्नी जगन्नाथ को चाय दे चुकी थी। चाय की चुस्कियां लेते हुए जगन्नाथ ने हाथ शोभावती के कान के पास रखकर उससे फुसफुसाहट में कहा जैसे कमरे में शेष सब गैर थे जिन्हें यह राज़ मालूम नहीं होना चाहिए।

''छोड़ जो[7] भट्ट गैज़ेट के किस्से तुमने शोरी के बारे में सुने होंगे।''

दो तीन घूंट और हलक से उतार कर बोला-

''उस दिन मैं पास ही एक बंद दुकान के थड़े पर बैठा सब कुछ देखता रहा.... कैसे घसीट कर सड़क पर ले आए शोरी को और वहीं मार डाला।'' कहकर कुल्चा खाने लगा।

विस्फारित आंखों से देखते घरवालों पर ध्यान न धरता हुआ वह बोलता रहा- ''अरे उसे मौत ने बुलाया था तो गई.......बेवकूफ औरत..........अरे तब अपनी तनख़्वाह लो और रास्ता नापो अपना। तुम्हारा मकान ठीक खड़ा है........बाकी सब से तुम्हें मतलब ?........मैंने उसे समझाया तू जा, मैं किराया लूंगा इन सब से जो खाली मकान देख कर घुस बैठे हैं। जो भी हैं, तुम को इस से क्या लेना-देना कि किसने उन्हें वहां बुलाया..........अरे देखो और आंखें बंद करके भूल जाओ। यह जगन्नाथ आखिर किस मर्ज़ की दवा है। उन तीनों परिवारों को जानता है यह.......नहीं माना और उनसे दोस्ती करने लगी, इस झूठी उम्मीद से कि वे घर की देखभाल करेंगे..........नहीं मानी मेरी बात और आखिर......''

---

6. *'शोरी' वस्तुतः 'ईश्वरी' का संक्षिप्त रूप है जो गौरीश्वरी, कमलेश्वरी, ललितेश्वरी जैसे नामों में आता है।*
7. *(व्यंग्य से) भट्ट यानी पंडितों में प्रचारित होने वाली मौखिक समाचारावली।*

कमलेश्वरी की हत्या के साथ आज तक मकान और किराए की कोई कहानी किसी ने सुनी नहीं थी जम्मू में। कश्मीर का संस्करण अब जगरा सुना रहा था जिसे सुनकर शोभा की सिसकियां और नंदलाल के ठीकरों की खटखट दोनों बंद हो गए। जगरा गंभीर हो गया था–

"तभी तो कहा ना" हठात मसखरी पर आकर उसने नंदलाल के कांधे पर धौल जमाया–सुनो भाई, तुम से कहता हूं। इस वक़्त चार पैसे मिलते हैं तो खर्च कर दो मकान....."

चांद जी ने सुन रखा था कि उनके घर में भी कोई अनाधिकारी रह रहा था, मगर उसे "खर्च कर देने" का यह नया गढ़ा मुहावरा सुनकर तो उसके शरीर में जैसे आग का मूसल उतर गया हो। शोभा का शरीर भी झनझना गया--"हाय, मैं मरी! क्या खर्च कर दें ? नंदलाल भी हैरान लग रहा था। जगरे ने नंदलाल के चेहरे के भाव अपनी समझ के अनुसार पढ़ लिए और उसी से बोला--

"बाकी रही बात उनकी जो तुम्हारे मकान में रह रहे हैं। उन्हें एक ही आदमी समझ लेगा। समझे ? सलाम वोके को भिड़ा दूंगा। खिड़कियों से उठा फेंक देगा सबको एक-एक करके।"

पर कोई कुछ न बोला। जगरा का उत्साह ढीला पड़ गया। वह बोला–

"हां, इतना तुम भी समझ लेना कि तुम्हारा मकान पहले जैसा नहीं रहा, जैसा तुम छोड़ गए.....अब जो उसकी ईंट-ईंट सरक कर गिर जाए तो अच्छा नहीं कि टंटा ही खत्म करो....?"

अब भी कोई कुछ न बोला। सिर्फ नंदलाल ने लड़के से आंखें मिलाईं। जगन्नाथ ने नंदलाल के कांधे पर हाथ रखा--

"अरे अपनी किस्मत मानो कि मुहल्ले में मैं अभी भी रह रहा हूं........दो बार मैंने ही तुम्हारा मकान जलाए देने से बचाया........"

चुप्पी छा गई जैसे सब की सांस घुट गईं हों।

"अरे भाई, बोलते क्यों नहीं ?"

चांद जी पसीने से तर था जो उसके माथे पर ज़ाहिर हो गए थे। वह धीरे से बैठ गया।

जगन्नाथ कभी एक कूल्हे की और कभी दूसरी कूल्हे की टेक लगाकर बैठता। शोभावती निशब्द पड़ी थी। वह देख रही थी कि क्या हो रहा है पर उसकी समझ में कुछ आ नहीं रहा था।

अचानक चांद जी जगन्नाथ के ठीक सामने आ खड़ा हुआ। दोनों हाथ कमर पर टिकाकर, रोबीली मुद्रा में देखकर चुन्नी घबराई कि जाने अब क्या हो? इसने कहीं कुछ बुरा भला कह डाला जगरे को तो जगरा खतरनाक हो सकता है, इसके कश्मीर में किस से क्या कनेक्शन हैं........। इन्हें रोक लेना चाहिए।

वह आगे बढ़ने ही वाली थी कि चांद जी बोला--

''जगरनाथ जी। मैं ज़रूर जाऊंगा और जाकर अपने ही घर में रहूंगा। वहीं से भाई को ढूंढ़ने निकलूंगा।''

अब जगन्नाथ को विश्वास हुआ कि खाली धमकी नहीं दे रहा है। यह लड़का ज़रूर जाएगा उसने चांद का हाथ पकड़ के उसे अपने पास बिठाया--

''हां, हां, चले जाना। तुम्हें कौन क्या कहेगा, भला ? अपना मकान है........चाहे जो करो.......। मगर बेटे के बराबर हो मेरे, इसलिए कह रहा हूं। कागज़ लाओ सलामे के नाम चिट्ठी लिख देता हूं.......फिर उसी से मकान का सौदा भी कर लेना........बस वही कर लेगा जो करना होगा। नवाकदल क्या जहन्नुम भी जाना पड़े तो जाएगा........।''

कहकर जगरा खड़ा हो गया। खिड़कियां पूरी खोलीं, दरवाज़ा भी खोला--''ओफ़्फ़ोह! यहां दम घुटने लगा है.......अंदर भी और बाहर भी।''

''लाइट चली गई है महाराज'' चांद ने उसे याद दिलाया ''तुम कमरे से बाहर जाकर ज़रा ताज़ा हवा खाओ......हमको तो आदत पड़ गई है।'' कह कर हाथ से जगरे को इशारा करके जैसे ज़बरदस्ती घर से निकल जाने को बोला।

सुनकर जगन्नाथ समझ गया कि चांद का जवाब क्या है? वह खड़ा हो गया। सब को अंगारों जैसी नज़रों से देखा और अपने-आप से कुछ बोलते हुए बाहर निकला। चांद जी उस के लिए पल्ला खोल कर खड़ा था। शोभावती स्थिति समझने की कोशिश कर रही थी। नंदलाल कभी कमरे के फर्श को तो कभी छत को देख रहा था।

उस नथुना-कमरे के खिड़की-द्वार बहुत देर तक खुले रहे। शाम की छायाएं अब अंदर आने लगी थीं। शोभावती के कोने में अंधेरा सब से पहले आकर समा जाता था। वहां बैठी वह भी पति की तरह छत पर नज़रें टिकाए थी, जाने क्या देख रही थी। नंदलाल बीच-बीच में चोर-नज़रों से बेटे को देखकर शायद अपना अंदाज़ा लगा रहा था। चांद जी विक्षिप्त-सा चहलकदमी करने लगा।

फिर वह कमरे के मध्य में खड़ा हो गया। अपने-आप से बहस करता हुआ। मैं यह क्या कर रहा हूं ? क्यों ? वह बैठकर फफक-फफक कर रोने लगा।

चुन्नी डाली को जगाने लगी जो उठना बिल्कुल मान नहीं रही थी। फिर वह अपनी एड़ियों को एकटक देखने लगी। इसमें बिवाइयां पड़ी थीं।

ooo

कश्मीरी-कहानी

उजड़े मूल, फैलती शाखाएं

❐ मूल – अवतार कृष्ण राज़दान

❐ अनु० – स्वयं लेखक

उसके प्राण भटक रहे थे.....ज्यों-ज्यों राजधानी दिल्ली में गर्मी का प्रकोप बढ़ रहा था, वह बे-करार हुआ जा रहा था। उसको पल-पल में यही अहसास हो रहा था कि अब वह घड़ी दूर नहीं जब दम घुट जाने से वह अंतिम सांस लेगा और अपनी इस बदनसीब काया को यहीं छोड़ देगा।

उसको इस महानगर में हर तरफ लोगों का सैलाब नज़र आ रहा था। बस, लोग-ही-लोग। धक्कम-पेल! तिस पर भी यहां की खुली सड़कों पर तरह-तरह के वाहनों के चलने का शोर जो उसके कानों के परदे काट रहा था। हर कोई व्यस्त है यहां और पौ फटते ही अपनी ड्यूटी देने की तैयारियों में लगा रहता है। मगर उसको इस नए माहौल में एकदम परायापन लगता और इस महानगर का विस्तार इसकी रंगीनी, सांस्कृतिक गतिविधियां आदि उसे अपनी ओर नहीं खींचती थीं। यहां वह अपना अस्तित्व खोया हुआ महसूस करता था। जीवन की गति एकदम रुकी हुई लगती थी जो उसने अपने वतन कश्मीर में, गत पांच दशक रहकर महसूस की थी। यहां अपनों से खातिरदारी होती थी। इतना ही नहीं, यहां मान-सम्मान था, आतिथ्य-सत्कार था और इन सबसे बढ़कर शर्म-हया थी। यही कारण है कि उसको हमेशा से इस बात का गर्व रहा था कि उसका एक अलग अस्तित्व है, अपना एक अलग व्यक्तित्व है और अपनी एक अलग पहचान है। रास्ते में जो कोई मिलता हिन्दू या मुसलमान, नमस्ते या सलाम करता। किन्तु यहां दिल्ली में ऐसी बात नहीं है। यहाँ उसे कौन जानता है? यदि कोई जाने भी, तो क्या उसको मिलने के लिए समय है? वह सोचता है कि यदि श्रीनगर में वह मरे तो कई दिनों तक लोगों में उसकी मृत्यु के चर्चे होंगे। यहां जब मर जाएगा तो रोने वाला कोई नहीं।

उसकी एकदम उस चित्राकृति पर नज़र पड़ी जो उसके कमरे की दीवार पर टंगी थी। इसमें चित्रकार ने इक भारी-भरकम वृक्ष दिखाया था किन्तु इसके मूल ज़मीन से उखड और उजड़ गए हैं। शखाएं जस-की-तस सर-सब्ज़ हैं मगर ये इधर-उधर फैल गयी हैं। उसने सोचा, इस समय यही हाल हमारा है। समय के कुचक्र ने हमें अपनी जमीन से अलग कर दिया है। उसका बड़ा लड़का जयपुर में था, दूसरा बैंगलोर में और तीसरा कोलकत्ता में। तीन लड़कियों में से पहली श्रीनगर में ब्याही गयी थी, दूसरी पुणे में और तीसरी अमरीका में। भाग्य की विड़म्बना यह थी कि उसके लड़के उच्च पदों पर आसीन नहीं थे। पेट पालने के लिए थोड़ा बहुत कमाते थे। यह तो अपना-अपना भाग्य है। यों तो इस समय हमारे समुदाय

---

* *डी-255, गली-44/15, लोअर शिवनगर जम्मू-18001*

का हर सदस्य खानाबदोश है। आज एक जगह डेरा जमाता है और कल दूसरी जगह। यही हाल उसके इन बेटों का भी था। इस वक़्त तक न जाने इन तीनों ने कितने रुपए मकान के किराये के रूप में खर्च किए! और वहां श्रीनगर में सौ वर्ष पुराना मकान जिसके बीस कमरे हैं, अभी भी खाली पड़ा था। यह सच है कि अब इसकी छत बारिश आने पर टपकती थी, इसकी ऊपरी मंज़िल की सारी दीवारें ढहने को थीं किन्तु उस मकान के क्या कहने थे। राम कौल का यह मकान इस मोहल्ले के मकानों में एक था। इस मकान में लगी पुरानी महाराजी ईंटे इस बात का स्पष्ट प्रमाण थीं कि उसके पिता अपने समय के किसी सम्मान के स्वामी रहे होंगे क्योंकि इस मकान के साथ मोहल्ले के हर जन का निकट संबंध रहा है। मोहल्ले में किसी की शादी होती तो वह इसी मकान में की जाती थी। कितने बारातियों का, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान इसी मकान में आदर-सत्कार हुआ करता था। इस तरह से यह मकान मोहल्ले वालों के सम्मान का प्रतीक बन गया था। ये सभी बातें उसको याद थीं किन्तु सामने दीवार पर लगी चित्राकृति-हां भारी-भरकम पेड़ की डालियों का फैलाव किन्तु इसके मूल उजड़े और उखड़े हुए। इसी को देखकर वह दुखी था।

उसने अपने-आपसे निश्चय किया था कि वह अपने जीवन के अंतिम दिन कश्मीर में ही बिताएगा किन्तु समय के कुचक्र ने उसका साथ नहीं दिया न चाहने पर भी उसको पलायन करना पड़ा और जब उसको दिल्ली का रुख करना पड़ा तो उसको लगा कि यम किंकर ने पकड़ लिया है। इस समय यहां की गर्मी उसको यही अहसास देती और लू सारी उम्र का हिसाब-किताब लेती थी। वह कश्मीर भी वापस नहीं जा सकता क्योंकि अब यहां उसके आबूदाने नहीं थे।

वह अपने अन्दर एक अजीब-सी कसमसाहट महसूस कर रहा था। वह कई दिनों से भाई की चिट्ठी की प्रतीक्षा में था। आशा थी कि वह जरूर हां या ना में जवाब देगा और वह अदालती कार्यवाही करने के लिए लिखेगा। इस तरह से हमेशा के लिए ये बखेड़ा भी खत्म होगा। इसके बाद वह शान्ति से मरेगा। मगर वह कुछ लिखता ही नहीं।

'खैर तो है उसकी?'-उसने अपने-आप से चिंतित होकर कहा। यदि आज उसकी चिट्ठी नहीं आएगी तो मुझे उसे तार देना पड़ेगा। अन्दर से गल जाता हूँ। यहां किसको अपना हाल बताऊँ? इसी के साथ उसने एक लम्बी आह भरी।

उसके तीन भाई थे। एक तो छुटपन में ही मर गया था। दूसरा मुम्बई में एक बड़ा अफ़सर था। उसने वहां एक आलीशान कोठी बनायी थी। यह उसी की शक्ति-प्रतिष्ठा थी कि उसके तीनों बेटों को जयपुर, बैंगलोर और कोलकत्ता में नौकरी मिली थी। उसका अनुज एक दफ़्तर में मामूली क्लर्क था जो श्रीनगर अपने इस पूर्वजों के मकान में रहता था।

उसको अपने इस अनुज पर गर्व था। पत्नी की मृत्यु के बाद जो सेवा उसके अपने बेटों ने नहीं की, उसकी पूर्ति इसने की। एक दिन दोनों भाई बैठे कश्मीर के बदलते हालात

के विषय को लेकर बात कर रहे थे कि उसने कहा– ''मैंने आज टिकट मंगा ली है। परसों मैं जम्मू जाऊँगा और वहां से सीधे रेल में दिल्ली।''

'क्यों?' अनुज की उत्सुकता।

'यहां अब गोलियां चलने लगी हैं। आतंक का साया मंडराने लगा है।'

'जो डर गया, वह मर गया'-अनुज का सपाट उत्तर।

'यह मैं भी जानता हूँ। मगर

अनुज मौन! उसने एक लम्बी आह भरी।

कुछ पल के बाद अनुज ने कहा–'तो क्या मुझे ही इस मकान में रहना है और वह भी अकेले?'

'आप भी मेरे साथ चलो। हम इस मकान को बेच देंगे। यही समय है इसको बेचने का। अब इस मकान के कई भागीदार बन गए हैं। मानो कल मैं यह शरीर छोड़ दूँगा तो मुझे पता है अपने खून का। अभी मेरा दसवां भी न हुआ होगा कि मेरे लाल इसको एक-दो-तीन करेंगे। इसलिए सोचता हूँ कि अपने होते हुए ही इसको बेच दूँ और सदा के लिए पाप मोल न लूँ। उसने सविस्तार कहा।

यह सुनकर अनुज कुछ न कह पाया। उसको यह फैसला असामयिक और अचानक लगा। इसके साथ ही हक़ीकत के निकट भी। वह अन्दर से ही कसमसाने लगा। सोचने लगा कि बाल-बच्चों को लेकर वह कहां जाएगा?

'मगर मेरा क्या सोचा? मेरा आशियाना तो यही मकान है। यदि मैं मरूँगा तो इसी मकान में। इस समय मैं कहीं और जाने की स्थिति में नहीं हूँ और वह भी बाल-बच्चों को लेकर। मैं अपना पता बदलना नहीं चाहता, चाहे कुछ भी हो जाए। इन हालात में मुझे अपनी जान हथेली पर रखकर आगे बढ़ना है।-अनुज का सपाट-सा उत्तर था।

'मुझे तो आपकी मजबूरियों का अहसास है।'-उसने दूरदर्शिता से कहा-'ज़रा ध्यान से सोचिए, यदि सारे एक-साथ मकान को बेचेंगे तो दस से बीस लाख तक रुपए मिलेंगे। अगर इसको हिस्सों में बांटकर बेचेंगे तो इस सारे मकान के दो-तीन लाख रुपए से अधिक नहीं मिलेगें। आजकल कौन किसी के साथ रहता है? और कल का किसी को क्या पता ?'
'आपका कहना सत्य है'-अनुज ने नम्रता से कहा-'मगर मेरे बच्चे अभी छोटे हैं। अपना आशियाना बेचकर इनको मैं सड़क के कीड़े नहीं बनाना चाहता हूँ। दस-बारह साल के बाद इनका ठौर-ठिकाना कहां होगा, यह तो भगवान ही जानता है किन्तु मैं समझता हूँ कि इस समय मेरा यहां से निकलना अनुचित होगा।'

'चलिए, मैं किसी को मजबूर नहीं करूँगा'-उसने कहा 'किन्तु सोचता हूँ मेरे मरने के बाद हमारे पूर्वजों के नाम पर आंच न आए। यदि मकान के मेरे हिस्से को किसी ने खरीदा तो उस समय आपकी 'प्राईवेसी' में खलल आएगी।'

इसके साथ ही वह एक बार फिर सोच में पड़ गया। थोड़े-समय तक उसने कुछ नहीं कहा। थोड़ी देर बाद वह एकदम उठ गए और अपने लम्बे फिरन की गिरह को तहाकर कहने लगे "आप एक बार फिर सोचिए। यही सोचने का समय है। पत्नी के साथ मश्वरा करने के बाद ध्यान से सोचिए कि अच्छा क्या रहेगा और बुरा क्या। मैं परसों यहां से दिल्ली के लिए प्रयाण करूँगा। मेरे लिए अब यहां रहना मुश्किल होगा। हां, एक माह तक पत्र लिखकर मुझे अपने अंतिम निर्णय से अवगत कराना। वैसे तो मेरी नज़र में इसके दोनों खरीदार हैं। एक सारा मकान लेने के लिए तैयार है और दूसरा मेरे हिस्से का दो लाख रुपया देता है। ये दोनों यहीं के हैं। इस बीच मैं उस मुम्बई वाले को भी लिखूंगा कि वह अपने हिस्से का क्या करना चाहता है।" जब से उसने कश्मीर से पलायन किया। तब से आज तक सोलह साल हो गए। न अनुज का पत्र आया न ही उसका कोई सन्देश मिला। मुम्बई वाले की इस मकान से कोई दिलचस्पी नहीं थीं। साफ़ बात है कि जिसकी अपनी आलीशान कोठी है। उसको मिट्टी के दीवारों से क्या मिलेगा? यही सोचकर वह अन्दर से ही घुटन महसूस करने लगा।

इसी तरह सोलह वर्ष बीत गए। वह अब श्रीनगर का पैतृक मकान बेचने की नहीं सोच रहा था। इसमें जो भी बसता है, बसने दे। हां, एक वर्ष से वह चाहता था कि अनुज को देख लूँ। अरे बेटे की तरह पाला है उसे! उसने भी मुझे पिता मानकर आदर-सत्कार दिया। "मैं तो श्रीनगर जाना चाहता हूँ मगर वहां जाने के लिए धैर्य जवाब दे गया है। कई बार सोचा कि बेटे से कहूँ कि मेरे साथ श्रीनगर चल मगर मैं जानता हूँ कि वह मना कर देगा।

फिर भी मुझे अपने अनुज का पता लगाना ही पड़ेगा। कहां है, किस हाल में है। जीवित है या....? यदि मर गया है तो मेरी जगह नर्क में भी नहीं होगी। मुझे मकान बेचने का फैसला नहीं लेना चाहिए था। मेरे मरने के बाद जिसका जो जी चाहता, वह करता।"

अपनी इस विचित्र मनः स्थिति के घेरे में आकर उसने स्वयं तारघर जाकर अनुज को तार दी-'वरीड, इन्फार्म वेलफियर।'

अब उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। सोचा कि यदि तार का जवाब दो-तीन दिन तक नहीं आया तो वह उसको साफ़ शब्दों में लिखेगा कि मैंने अपना फैसला बदल दिया है। उसकी नज़रें बराबर दरवाज़े की ओर टिकी थीं और वह अनुज के बारे में ही सोच रहा था।

तार का जवाब आया। संक्षिप्त! तार को देखकर उसको महसूस हुआ कि जैसे सारे संसार की दौलत मिल गयी है। वह बहुत खुश हुआ। लिफ़ाफ़ा खोलकर वह तार को पढ़ने लगा।

"हम सकुशल हैं। पत्र में सब कुछ सविस्तार लिखा है।"

अनुज की कृतज्ञता से वह बहुत खुश हुआ। दो-तीन दिन बाद पत्र भी मिला। लिफ़ाफ़ा देखकर उसके बदन में एकदम थरथरी-सी पैदा होने लगी। दिल की धड़कन तेज़ होने लगी। अपना मोटा चश्मा लगाने के बाद उसने लिफ़ाफ़ा खोला और इसमें से पत्र निकाला। पहले तो उसको लगा कि इस पर कुछ नहीं लिखा है। यह तो बस कोरा काग़ज़ है। मगर ऐसी बात नहीं थीं। उसने चश्मा साफ़ किया। पहले तो इस पत्र का आकार दिखायी दिया, फिर इस पर लिखे शब्द। वह संभलकर इसका एक-एक अक्षर पढ़ने लगा-

भाई साब!

शत्-शत् प्रणाम।

मैं आपकी मजबूरियों को अच्छी तरह समझता हूँ किन्तु जब आपने यहां से पलायन किया तो मुझे अकेला छोड़ इस धमकी के साथ, कि मैं इस मकान को बेच दूँ और वह भी एक मास तक। मुझे खेद है कि मैं आपकी इस धमकी का पालन न कर सका। आपको खुशी होगी कि आतंक की मार झेलकर भी मैंने इस मकान की आवश्यक मरम्मत की और इसका हर एक कमरा किसी के रहने के लिए सजाया-संवारा। आप यहां खुशी से आ सकते हैं। यहां के मूल निवासी के रूप में न सही, एक पर्यटक के रूप में ज़रूर आइए। मैं आपकी हर तरह से सेवा करूँगा क्योंकि छुटपन में आपने मुझे बेटे की तरह पाला है। आतंक के काले साये से डरने की अब जरूरत नहीं। यहां के लोग अब सब कुछ जानने-समझने लगे हैं। बस इस समय इतना ही। शीघ्र ही मेरा एक और पत्र मिलेगा।

आपका
अनुज

इस पत्र को उसने दो-तीन बार पढ़ा। उसकी आंखों से आंसू बह निकले। फिर अपने-आपसे कहने लगा-'सच कहता है कि दुख की घड़ी मैं, मैंने अपने बचाव के बारे में सोचा और उसको छोड़कर वहां से खिसक गया। उल्टे मकान बेचने की जिम्मेदारी उस पर छोड़ी। दरअसल कमज़ोर आदमी का शोषण करना हर कोई जानता है चाहे वह उसका भाई ही क्यों न हो। यह मुझ से! बहुत बड़ी भूल हो गयी जो मैं स्वीकार करता हूँ। मैं तो मकान बेचने ही वाला था किन्तु उसने इसकी आवश्यक मरम्मत करवा कर हमारे पूर्वजों की धरोहर पर आंच न आने दी। अब हर, कोई इसका दावेदार बनेगा। मगर मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। अब मकान का मालिक यदि कोई है तो वह मेरा अनुज है। मेरा विचार है कि मैं स्वयं श्रीनगर जाकर उसके नाम सारा मकान करूँगा। मेरे मरने के बाद मेरे बेटे ऐसा नहीं होने देंगे, यह मुझे अच्छी तरह पता है। यह भी मुझे पता है कि अब इनको कश्मीर में नहीं रहना है मगर इस बिचारे को ये ज़रूर तंग करेंगे।

यह सोचकर उसकी आंखों के सामने वही चित्राकृति घूमने लगी-भारी भरकम पेड़ के उजड़े मूल किन्तु इसकी फैली हुई शाखाओं का विस्तार! इस समय उसको लगता था कि

इसके ये उजड़े मूल कभी ऊपर उठते हैं और शाखाएँ नीचे गिरती हैं। पेड़ गिर जाएगा अभी गिर जाएगा। इसी के साथ उनके दिल की धड़कन भी तेज़ होती थी। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि पेड़ को क्यों चित्रकार ने समूल ज़मीन से अलग दिखाया है। इसकी शाखाओं का विस्तार दूर-दूर तक अंकित किया है और इतना होकर भी यह हरा-भरा है।

कुछ दिन बाद अनुज का पत्र आया। उसने लिफ़ाफ़ा खोला और इसके अन्दर पत्र के साथ दस लाख रुपए का चैक था। पत्र में इस तरह के नपे-तुले शब्द लिखे थे "मैं इस सारे मकान का मालिक बनना चाहता था। आजकल इस मकान का पंद्रह लाख रुपया कोई भी खरीदार देने के लिए तैयार है। उसी को ध्यान में रखकर मैं आपको दस लाख रूपए का चैक भेजता हूँ। इसमें पांच लाख रुपया मुंबई वाले को भेजना। रसीद यथाशीघ्र भेजना ताकि मकान मेरे नाम कोर्ट में रजिस्टर हो जाए-आपका अनुज।" उसने पत्र ध्यान से पढ़ा। उसका यह कदम लेना सच ही हमारी कल्पना के बाहर है। जो भी उसने भेजा है, मैं जानता हूँ, वह उसके खून-पसीने की कमाई है। वस्तुतः वही इस मकान का मालिक था, और मालिक है। यदि वह पैसा भी न भेजता तो मुझे दुख न होता। मुझे गर्व है अपने अनुज पर जिसने हमारे पूर्वजों के नाम पर आंच न आने दी। जो मैं न कर सका, वह इसने करके दिखाया और वह भी विषम परिस्थितियों में। दुख यदि है तो इस बात का कि हमारे मूल क्यों उखड़ गए और शाखाएँ दूर-दूर तक फैल गयीं। क्या ये मूल एक बार फिर ज़मीन में गाढ़े नहीं जा सकते जिससे नयी शाखाएँ उग सकती और हमारा एक नया संसार बस जाता। काश! ऐसा ही हो।

ooo

कश्मीरी कहानियों का मूल्यांकन

❑ डॉ० भूषण लाल कौल

कश्मीर में कहानी कहने-सुनने का प्रचलन बहुत पुराना है, पर कश्मीरी में कहानी लेखन लगभग पच्चास-साठ वर्ष से ही शुरू हुआ है। आज कश्मीरी कहानी हिन्दी व उर्दू कहानियों के समक्ष अपना विशेष स्थान बना रही है। प्रस्तुत आलेख में तीन कहानियों का मूल्यांकन किया गया है।

1. जवाबी कार्ड : मूल० दीनानाथ नादिम
अनु० डॉ० बद्रीनाथ कौल

2. आग : डॉ० रतनलाल शांत

3. उजड़े मूल, फैलती शाखाएं : अवतार कृष्ण राज़दान

जवाबी कार्ड

बीसवीं शताब्दी में आधुनिक कश्मीरी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर स्वर्गीय पंडित दीनानाथ कौल 'नादिम' (1916-1988 ई०) ने ही कश्मीरी कहानी साहित्य के इतिहास में कहानी-लेखन का प्रथम प्रयोग किया है। मैं 'जवाबी कार्ड' (लेखनवर्ष सन् 1948) को बिना किसी सन्देह के कश्मीरी भाषा में लिखित प्रथम कहानी मानता हूँ। हिन्दी साहित्य में पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने 'उस ने कहा था' (सन् 1915 ई०) लिखकर जो ख़्याति पाई वही नादिम साहब को 'जवाबी कार्ड' लिखकर प्राप्त हुई। कश्मीरी भाषा में लिखित कहानियों का कोई भी संग्रह तब तक श्रेष्ठ प्रतिनिधि संग्रह नहीं माना जायेगा जब तक न उस में 'नादिम' की कहानी 'जवाबी कार्ड' संकलित हो। कहानी छः दृश्य चित्रों पर आधारित है। शैली वर्णानात्मक है यद्यपि संवाद-शैली भी व्यवहार में लाई गई है।

स्वतंत्रता प्राप्ति, देश विभाजन, कश्मीर पर कबाइली आक्रमण, मलेशिया (Militia) नाम से कश्मीर में सेना के एक नये पैदल सेना-दल (Infantry) का संगठन तथा कश्मीरी नवयुवकों का देश अभिमान की रक्षा हेतु सेना में भर्ती होना तथा शत्रु सेना से लड़ते-लड़ते शहीद हो जाना आदि घटनाओं के आधार पर ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि के साथ नादिन साहब ने 'जवाबी कार्ड' कहानी का सर्जन किया है।

कहानी का केन्द्रीय पात्र 'जून द्यद' है। अपने स्नेहमय व्यवहार से उस ने गाँव वालों का दिल जीत लिया है। वह सब की माँ है, गाँव में उसका बड़ा सम्मान किया जाता है। उस की बात को कोई टाल नहीं सकता। उसने दूर के एक रिश्तेदार के लड़के को मातृस्नेह

से अभिभूत कर दिया है। कुछ लोगों का कहना है कि जूनद्यद ने उसे मकदूम साहब की सीढ़ी से उठा लिया था और स्वयं पाल-पोसकर पुत्र रूप में स्वीकारा और वह भी उसे माँ समझ कर पुत्र-कर्त्तव्य निबाहता रहा। जूनद्यद का यही पुत्र गुलसॉब है जो मलेशिया फौज में भर्ती होकर प्रशिक्षण पाने के बाद सीमा क्षेत्र में ड्यूटी कर रहा है।

एक दिन वह गाँव आया तो पास-पास स्थित दो गाँव के समस्त लोग-पुरुष, स्त्री, बच्चे-उसे मिलने आते हैं और कुछ दिन गाँव में ठहर कर जब वह वापस जाने लगा तो गाँव वालों ने उपहार देकर और अपने आशीर्वादों का कवच पहनाकर उसे युद्ध क्षेत्र में कर्त्तव्य-निर्वाह के हेतु विदा किया।

कुछ दिनों के बाद माँ जवाबी कार्ड भेज देती है लेकिन बिना उत्तर के कार्ड वापस पहुँचता है। गाँव में मातम छा जाता है। बड़ी मुश्किल से यह सूचना जून द्यद को दी जाती है। ऐसा समझा जाता है कि गुलसॉब रणक्षेत्र में अपने प्राणों की आहुति दे चुके हैं तभी तो कार्ड बिना उत्तर के वापस आ गया।

माँ के लिये ये असहनीय क्षण थे। विक्षिप्तावस्था में वह कार्ड हाथ में लेकर गाँव वालों से कहती है कि गुलसॉब ने 'मुझे औरतों की फौज में भर्ती होने के लिये' लिखा है और एक दिन सचमुच लकड़ी की बन्दूक लेकर और लम्बा सफ़ेद ढीला परिधान धारण कर तथा कमर बन्द बान्धकर वह निकल पड़ती है। यह वह दिन था जब गाँव में मौत की मुर्दनी छाई हुई थी, कौए भी वृक्षों पर ख़ामोश मातम कर रहे थे।

1. कहानी विशेष घटना-चक्र पर आधारित है। कश्मीर के सांस्कृतिक जीवन में हिन्दू-मुसलमान का गंगा-यमुनी मेल देखते ही बनता है। कहानी के अन्य पात्र हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं और जूनद्यद सब की माँ है। वात्सल्य का अथाह स्रोत उस के व्यक्तित्व में सतत् प्रवाहित देखने की मिलता है।
2. यह वह ज़माना है जब कबाइली आक्रमणकारियों को देश के बाहर खदेड़ने के लिये लकड़ी के बन्दूक लेकर सड़को पर मार्च करते हुए लोग देखे जाते थे और सहगान के रूप में समवेत स्वर में गाते थे-

   'हमलाआवर ख़बरदार हम कश्मीरी हैं तैयार!'
3. सम्पूर्ण कहानी का अपना विशिष्ट आँचलिक रंग है। परवर्ती युग में आँचलिक कथा-साहित्य की एक विशिष्ट प्रवृत्ति विकसित हुई लेकिन नादिम साहब ने सब से पहले कश्मीर के अंचल को सहजता के साथ कहानी की पृष्टभूमि में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।
4. 'नादिम' साहब कश्मीरी भाषा के महान विद्वान और ज्ञाता थे। नये शब्द-चित्रों एवं शब्द-प्रयोगों के सर्जन में उन्होंने अपनी अद्‌भुत क्षमता का परिचय दिया है। सर्व प्रथम कश्मीरी कहानी में मनोविश्लेषण की पद्धति को अपनाकर जूनद्यद के मानस की व्यथा

और अन्तरात्मा की पीड़ा को लेखक ने बड़ी कुशलता के साथ अभिव्यक्त किया है। विक्षिप्तावस्था में किस प्रकार आदमी वस्तु स्थिति के प्रति अपनी मानसिक प्रतिक्रिया व्यक्त करता है और प्रकृति किस प्रकार अनूकूल वातावरण की सृष्टि करती है-यह अन्तर-बाह्य साम्य प्रस्तुत कहानी में देखते ही बनता है।

5. कहानी का घटना परिवेश वास्तविक वस्तुस्थिति के साथ जुड़ा है। इस में सन्देह नहीं कि कश्मीर में बड़े-बुजुर्गों का सम्मान होता था। उनकी हर बात को आदेश के रूप में स्वीकारा जाता था। ग्रामीण जीवन में धार्मिक-सामाजिक गतिविधियाँ बड़े-बुजुर्गों की देखरेख में ही सम्पन्न होती थीं।

   जूनद्यद वस्तुत : हमारे सांस्कृतिक जीवन में इसी वैशिष्ट्य की प्रतीक है। सम्पूर्ण कहानी में वह आदि से अन्त तक बदलते घटना चक्र के साथ जुड़ी है और उस की मनः स्थिति के एक कारुण्य दृश्य से ही कहानी का अन्त हो जाता है।

6. अनुवादक महोदय ने यथा सम्भव कश्मीरी शब्दावली को हिन्दी में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जहाँ उन्हें किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव हुआ वहाँ उन्होंने मूल कश्मीरी शब्दों के द्वारा ही कहानी को आगे बढ़ाने का प्रयास किया है।

   मैं समझता हूँ कि यह नितान्तावश्यक है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के कलेवर में प्रादेशिक भाषाओं और बोलियों के सर्व प्रचलित शब्द तत्सम रूप में ही ग्रहण किये जाये 'फ्यरन', 'पोछ़', 'द्यद', 'कावमाल्युन', 'संगर माल' आदि शब्दों को इन के तत्सम रूप में ही ग्रहण करना होगा। यह हिन्दी भाषा के हित में है क्योंकि राष्ट्रभाषा के रूप में यह समस्त भारत का प्रतिनिधित्व कर रही है किसी हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश का नहीं।

7. प्रस्तुत कहानी का अनुवाद पढ़ कर मुझे लग रहा है कि अनुवादक को तनिक सावधानी के साथ अपना कर्त्तव्य कर्म निबाहना चाहिये था। पण्डित दीनानाथ 'नादिम' की कश्मीरी कहानी का अनुवाद हो रहा है यह कोई साधारण बात नहीं है। फिर भी प्रयास स्तुत्य है। मेरा विचार है कि किसी भी लेखक को 'हरफ़न मौला' बनने का प्रयास नहीं करना चाहिये।

स्वर्गीय 'नादिम' ने यह कहानी लिख कर वस्तुतः अपने संवेदनशील व्यक्तित्व का एक मनोरम छवि चित्र सहृदय लेकिन प्रबुद्ध पाठक के सम्मुख प्रस्तुत किया है। ०

आग

डॉ. रतन लाल शान्त द्वारा लिखित कहानी 'आग' बेघर हुए कश्मीरी पंडितों की त्रासदी को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समस्त मानसिक उलझनों और विडम्बनाओं के साथ प्रस्तुत करती है।

एक सामान्य निम्न-मध्यवर्गीय पाँच सदस्यों का परिवार एक कमरा-मकान में रहने को विवश है। जम्मू में भीषण गर्मी के दिन, आग उगलती तथा कथित स्वर्णरश्मियाँ, साधनों की

कमी, अविश्वसनीय वर्तमान, अनिश्चित भविष्य लेकिन फिर भी जीवन जीने का दृढ़ संकल्प, अस्तित्व रक्षा हेतु संघर्ष।

विस्थापन के समय अधिकांश विस्थापितों को जम्मू के तपते ग्रीष्म और उमस भरे दम घुटा देने वाले बरसात का कोई अनुभव नहीं था। मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा कि सन् 1990 में जो लोग दूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों से प्राण बचाकर जम्मू आ रहे थे उन्होंने अपने साथ घास की चटाइयाँ बिछावन, के लिये लाई थीं। उन्हें मालूम ही नहीं था कि 'हम कहाँ जा रहे हैं। 45°-47° स्यलशस गर्मी में कैसे रहा जा सकता है। अस्तबलनुमा किराये के एक कमरा आवास में कैसे जीवन-निर्वाह सम्भव है। चूल्हा जलेगा या नहीं। कई परिवारों के पास खाने को कुछ नहीं था। बच्चों को खिला कर घर के बड़े-बूढ़े कभी-कभी बिना खाये दिन काटने लगे।

कैम्पों की हालत बहुत खराब थी। पानी की कोई व्यवस्था नहीं थी। एक शिवरात्रि के दिन जब ज़बरदस्त बारिश हुई तो 'वटुक' देव भी जल-प्रवाह में बह गये।

ज़िन्दगी वीरान बन गई। प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते-करते विस्थापित टूट चुका था। कहीं कोई सहारा नहीं मिल रहा था। सर्वत्र अन्धेरा छाया हुआ था। भयाक्रान्त मानव समाज तड़प उठा। कश्मीर के मूल निवासी और कश्यप ऋषि की सन्तानों को जान हथेली पर लेकर भागना पड़ा।

पण्डित नन्दलाल-शोभावती का परिवार भी उनमें एक है। नन्दलाल के परिवार में पत्नी शोभावती के अतिरिक्त उसका ज्येष्ठ पुत्र चान्द जी, उस की पत्नी चुन्नी और उन की बेटी डॉली है। ये लोग जम्मू में किराये के एक कमरे में पिछले तीन वर्षों से रह रहे हैं। मुसीबतों का पहाड़ उन पर टूट पड़ता है जब घाटी में एक दिन उन का अठारह वर्षीय पुत्र लाल जी पिता के लिये दवाई खरीदने बाज़ार गया और आज तक लौट कर नहीं आया। परिवार इस त्रासदी से क्षुब्ध हो उठा। बेटे का ढूँढ़ने का हर सम्भव प्रयास किया गया परन्तु व्यर्थ। बेटा नहीं मिला। माँ शोभावती पुत्रशोक में आज भी विह्वल है और पिता नन्दलाल विक्षिप्तावस्था में भीतर-ही-भीतर सोच में पड़ा गुमसुम दिखाई देता है। निश्चेष्ट और स्तब्ध।

कहानी का सबसे सशक्त पात्र जगन्नाथ उर्फ़ जगरा है। जगरा श्रीनगर में ही रहा है। उसके परिवार में कोई नहीं है। वह बेहद चालाक, मक्कार दुष्ट प्रकृति का जगन्नाथ नहीं अपितु दैत्य नाथ है। आतंकवादियों का जी हजूर बनकर उनके लिये हर प्रकार का उचित-अनुचित काम कर दिन गुज़ार रहा है। बात यहीं तक सीमित रहती तो ठीक थी लेकिन वह एक दूसरा खेल खेल रहा है। दलाल बन कर विस्थापितों की अचल सम्पत्ति (मकान, ज़मीन आदि) के खरीदार (ग्राहक) ढूँढ़ कर पण्डितों को पूर्वजों की सम्पति बेचने के लिये (साम-दाम-दण्ड-भेद) सभी नीतियों को अपनाकर तैयार करने का प्रयास करता है। कहानी के इस मोड़ पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विस्थापित लोगों को अपनी जात-बिरादरी के धूर्त ठगों

ने सब से अधिक लूटा है। कोई सन्त बनकर लूट रहा है तो कोई नेता बनकर। कोई प्रचारक का स्वाँग धारण करता है तो कोई जातिहितैषी।

कहानीकार शान्त जी बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने ज़िन्दगी के एक वीभत्स यथार्थ को, इतिहास की एक दुर्घटना को धर्मान्धता के शिकार निष्पाप जन-समाज के साधनहीन विवश जीवन को कहानी के कथा कलेवर में विश्वसनीय सन्दर्भों के माध्यम से यथा तथ्य रूप में प्रस्तुत किया है।

शान्त जी कश्मीरी साहित्य के एक चर्चित युग प्रतिनिधि कहानीकार हैं। लेखक सदा अपने समसामयिक युगीन घटना चक्र से प्रेरित एवं प्रभावित रहते हैं। शान्त स्वयं विस्थपित हैं, यातना झेल रहे हैं, पीड़ा भोग रहे हैं। व्यथा का पारावार उन के मानस में उमड़ रहा है। पीड़ा और आक्रोश के कारण वे व्यंग्य उक्तियों के द्वारा व्यवस्था पर प्रहार करते हैं।

जगरा नन्दलाल के एक कमरा आवास पर अकस्मात् बिना सूचन दिये बिन बुलाये मेहमान की तरह पहुँच जाता है और परिवार के सदस्यों में खोये हुए पुत्र की स्मृति जगा कर आग में घृत डालकर अपनी नीचता/व्यवहार-कुशलता का परिचय देता है। लगता है वह सलाम वोका का एजेंट है। सलाम वोका ने लाल जी को नवाकदल में नानवाई की दुकान पर काम करते देखा है। जगरा यह समाचार परिवार वालों को देकर सनसनी फैलाने का प्रयास करता है।

यह सब झूठ है। एक बहाना है सब का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये तथा अपने वास्तविक उद्देश्य को छिपाने के लिये। समय ने जगरा को बड़ा व्यवहार-कुशल बनाया है। लेखक ने कहानी में मुहावरों का प्रयोग किया है-'हरामी का पिल्ला' आदि।

बातों-बातों में ही जगरा अपने असली मुद्दे (अभिप्राय) पर आता है और कश्मीर में आजकल प्रचलित एक नये मुहावरे का प्रयोग करते हुए नन्दलाल से कहता है-''सुनो भाई, तुम से कहता हूँ। इस वक्त चार पैसे मिलते हैं तो **खर्च करदो मकान**............। हाँ, इतना तुम भी समझ लेना कि तुम्हारा मकान पहले जैसा नहीं रहा, जैसा तुम छोड़ गए.........अब जो उस की ईंट-ईंट सरक कर गिर जाए तो अच्छा नहीं कि टंटा ही खत्म करो...........?'' यह था उद्देश्य जगरा का नन्दलाल के घर पहुँचने का।

1. नन्द लाल का नौजवान पुत्र चाँद जी वस्तुतः उन लक्ष्यहीन, दिशाहीन और शक्तिहीन विस्थापित नवजवानों का प्रतिनिधि पात्र है जो एक क्षण में भाई की याद से तड़प उठता है और दूसरे ही क्षण अपनी विवशता महसूस कर मूक हो जाता है। लेकिन मक्कार जगरा से वह किसी भी तरह सहमत नहीं होता। उसे नफ़रत हो रही है जगरा के स्वार्थमय व्यवहार से। वह जगरा के सुझाव को ठुकरा कर मानो उसके माथे पर चपत मारते हुए कहता है-'जगरनाथ जी। मैं ज़रूर जाऊंगा और जाकर अपने ही घर में रहूँगा। वहीं से भाई को ढूँढ़ने निकलूँगा।'

हालांकि 1993-94 में यह सम्भव नहीं था। इसीलिये जगरा के चले जाने के बाद जब शाम की छायाएँ अन्दर आने लगी तो चाँद जी मन-ही-मन वस्तुस्थिति पर विचार करने लगा और अपनी असलियत का अहसास होते ही वह तड़प उठा और ''बैठकर फफक फफक कर रोने लगा।''

2. चान्द जी ने जगन्नाथ का मुँह बन्द करने के लिये जिस साहस का प्रदर्शन किया यथार्थ इस के बिल्कुल विपरीत है।

3. कहानी का शीर्षक 'आग' है। कहाँ आग नहीं लगी है? कश्मीर को देखिये बन्दूक़ आग उगल रहे हैं। जम्मू को देखिये सूर्य देव आग उगल रहे हैं। शोभावती के हृदय में पुत्र-बिछोह के कारण आग सुलग रही है और नन्दलाल के हृदय में आग के शोले अब बुझ चुके हैं। चान्द जी में प्रतिशोध की आग भभक रही है। और दाम्पत्य जीवन का सुख उपलब्ध न होने के कारण अतृप्तावस्था में चुन्नी तड़प रही है। यहाँ तो अँगारे सुलग रहे हैं।

4. शान्त जी ने इस कहानी को कश्मीरी भाषा में लिखा है और स्वयं इस का अनुवाद हिन्दी में किया है। अनुवाद करते समय उन्हें भी पारिभाषित शब्दों को रूपान्तरित करने में कठिनाई महसूस हुई है। यही कारण है कि विशिष्ट शब्दों के मूल अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिये उन्होंने पाद-टिप्पणियाँ देकर अर्थ पर सम्यक् प्रकाश डाला है उदाहरण स्वरूप कश्मीरी भाषा का 'शोरी' शब्द देखिये। यह वस्तुतः 'ईश्वरी' शब्द का तद्भव रूप है।

प्रस्तुत कहानी का अभिव्यक्ति पक्ष अत्यंत सशक्त और अर्थ अभिव्यक्ति में समर्थ है। भाषा श्रेष्ठ स्तर की 'शिष्ट जन भाषा' है। शान्त जी दोनों भाषाओं-कश्मीरी और हिन्दी के मर्मज्ञ विद्वान हैं। भाषा सौन्दर्य के तीन उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

1. 'रोशनी का अजदहा मुँह खोले सब को लीलने आ गया था।'

2. ''उसे 'खर्च कर दो' का यह नया गढ़ा मुहावरा सुनकर तो उसके शरीर में जैसे आग का मूसल उतर गया हो।''

3. वस्तुतः नन्दलाल के लिए काम और व्यस्तता की संभावना खुल गई थी। वह ठीकरे समेटता रहा और यों दिन काटता रहा।....

   कभी ईंटि इस कमरा-भर घर की गज़-भर छाया में ले जाता और कुछ देर वहीं बैठा रहता।

4. शान्त जी नाटकीय अन्दाज़ में संवादों के साथ क्रिया-व्यवहार (व्यापार) जोड़ कर वस्तुतः रचना-विन्यास (Plot Structure) को विश्वसनीय आधार प्रदान करते हैं। बिना

किसी कठिनाई के प्रस्तुत कहानी को मंच पर प्रस्तुत किया जा सकता। यह विशेषता हर कहानीकार में देखने को नहीं मिलती। वे सहजता के साथ अत्यन्त सूक्ष्म बातों की ओर ध्यान देते हैं। वे स्वयं एक सफल नाटककार और अभिनेता हैं। मंचन की बारीकियों से परिचित और पूरी नाटकीयता के साथ कहानी को प्रस्तुत करने में सक्षम।

5. कहानी बहुत लम्बी बन गई है। दृश्यों के वर्णनात्मक चित्रण के कारण अथवा मनोविश्लेषण के कारण कहानी ने विस्तृत आकार ग्रहण किया है। सम्भवतः अपने भुगते हुए यथार्थ को वाणी प्रदान करते हुए लेखक अपने-आप पर नियंत्रण नहीं रख सका है। इस कहानी को आकार की दृष्टि से छोटा किया जा सकता है।

   आज ज़माना बदल गया है। 'मिनी' कहानी ने कहानी के स्वरूप और संवेद्य दोनों को नये सन्दर्भों के साथ जोड़ दिया है। आज लोग लम्बी कहानियाँ पढ़ने के लिये तैयार नहीं होते। संकेत पर्याप्त है, विस्तार देने की आवश्यकता नहीं। यह केवल मेरा सुझाव है। सम्भव है लेखक मुझ से सहमत नहीं होंगे। उन्हें पूरा अधिकार है।

6. प्रस्तुत कहानी 'आग' पढ़ कर मुझे ऐसा लगा कि मेरे ही जीवन का एक दुखद चित्र दृश्य कहानी की पात्र योजना के माध्यम से मेरी ही आँखों के सामने साकार हो उठा है। नन्दलाल-शोभावती की त्रासदी कई लाख विस्थापितों की त्रासदी है।

   आग आज भी सुलग रही है, सुलगती रहेगी, कभी बुझ नहीं सकती कोई बुझा नहीं सकता।

उजड़े मूल, फैलती शाखाएँ

अवतार कृष्ण राजदान की कहानी 'उजड़े मूल, फैलती शाखाएँ' एक वर्ग-विशेष के सामाजिक जीवन की त्रासदी से जुड़ी है। विश्व स्तर पर सम्भवतः यह पहली घटना है जहाँ एक महान देश के देशवासी अपने ही देश के भीतर शरणार्थी बन कर रहने को विवश हैं।

वे लोग जो घाटी के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सुखद वातावरण में रहकर जीवन-निर्वाह कर रहे थे जहाँ परस्पर सौहार्द, बन्धुत्व और मानव प्रेम की भावना पनप रही थी, अचानक अपनी समस्त चल-अचल सम्पत्ति छोड़कर देश त्याग के लिये विवश हो जाते हैं।

कहानी का मुख्य पात्र ऐसे ही विस्थापितों में एक है। उस के तीन भाई थे। एक का देहान्त हुआ था, एक मुम्बई में निवास कर रहा है और एक श्रीनगर में ही रह रहा था, अपने पुश्तैनी मकान में।

दो विशिष्ट परिवेश उसके सामने हैं-दिल्ली का तप्त माहौल, लोगों की भाग-दौड़, तेज़ भागता जीवन, किसी का किसी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, महानगरी वातावरण और पैसा कमाने का नशा तथा सुबह से शाम तक अज्ञात लक्ष्य की ओर सब की दौड़। विस्थापित बन्धु इस नये माहौल में परायापन महसूस करने लगा। कहाँ उसकी पैतृक भूमि का सांस्कृतिक

जीवन अत्यंत सहज एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण और कहाँ महानगर का दम घुटा देने वाला जीवन। वह मन-ही-मन दोनों की तुलना करके क्षुब्ध हो उठा अपनी मातृभूमि की छत्र-छाया (आश्रय) में उसकी अपनी एक विशिष्ट पहचान थी और यहाँ वह अपनी पहचान ही खो देता है। यहाँ किसी को किसी की कोई चिन्ता नहीं। हर एक मात्र आपने स्वार्थ के विषय में सोचता है और अपने अस्तित्व की रक्षा करने में ही वह व्यस्त रहता है। मान-सम्मान, आतिथ्य-सत्कार, शर्मोहया, बन्धुत्व, मानव-प्रेम, सहज-व्यवहार आदि शब्दों के अर्थ ही बदल गये हैं। वह अपने भूत को महानगरी जीवन में तलाशते-तलाशते टूट जाता है।

प्रस्तुत कहानी का प्रमुख पात्र विस्थापन की यातना भुगत रहा है। वह मन-ही-मन उदास है। उसने सब कुछ खोया अपना स्वर्णिम अतीत, प्रकृति का रम्य वातावरण, साधु-सन्तों और महापुरुषों की साधना भूमि, हिमाच्छादित पर्वतशृंग, महान तीर्थ एवं शक्ति पीठ। उसे परेशानी इस बात की है कि उस की पहचान ही डाइल्यूट (Dilute) हो रही है। किसी भी जाति, वर्ग या समुदाय के लिये यह घातक स्थिति है।

कहानी का मुख्य पात्र घर छोड़ते समय अपने अनुज को पैतृक आवास बेच डालने का परामर्श देता है और यहाँ तक भी धमकी देता है कि अगर उसकी ओर से एक महीने तक कोई उत्तर नहीं मिला तो वह अपना हिस्सा बेच देगा।

कहानी के मुख्य पात्र के तीन पुत्र और तीन पुत्रियाँ हैं। उसने सारी ज़िम्मेदारियाँ पूरी की हैं। अब वह चाहता है कि श्रीनगर में सब से पुराना मकान-'राम कौल का मकान' जिस में बीस कमरे हैं, बेच कर वह अपने हिस्से का पैसा वसूल ले। उसे कोई चिन्ता नहीं कि उसका अनुज कहाँ जायेगा, उसे पैतृक सम्पत्ति के खो जाने का ग़म नहीं। बुज़ुर्गों की विरासत अपने हाथों बेचने के लिये वह तैयार है। ऐसा लगता है कि जैसे उसके भीतर का देवता कब का दम तोड़ चुका है।

यह वस्तुतः एक भीषण सत्य की ओर संकेत है। विस्थापन के बाद अधिकांश विस्थापितों ने कश्मीर में अपने मकान, खेत-खलिहान, बाग़-बगीचे गाजर-मूली के भाव बेचकर कुछ पैसा इकट्ठा किया और भिन्न-भिन्न शहरों में रहने के लिये एक कमरा, दो कमरा के आवास बना लिये।

सोलह वर्षों का अन्तराल। आतंकी आंधी यद्यपि आज भी है तथापि मूल निवासियों की सोच में बदलाव आ गया है यह पिछले दो या तीन वर्षों के घटनाक्रम का परिणाम है। उन्हें अब विश्वास हो चुका है कि भारत अपनी प्रभुसत्ता के साथ कोई सौदा नहीं करेगा। किसी को भी सोने की तश्तरी में भेंट स्वरूप कुछ भी नहीं दिया जायेगा।

इस द्रुत बदलते माहौल में मुख्य पात्र की सोच में बदलाव आ रहा है। आज वह चाहता है कि श्रीनगर जाकर अपने अनुज से मिल ले। अपने पूर्वजों के मकान को देख ले। आज उसे मकान बेचने की चिन्ता नहीं, अब वह बेचना भी नहीं चाहता। तब मुख्य पात्र का हृदय

पत्थर बन चुका था जब घर छोड़ते समय वहीं पर रहने वाले भाई ने कहा था-''अपना आशियाना बेच कर इन को (बच्चों को) सड़क के कीड़े नहीं बनाना चाहता हूँ।''

सोलह वर्षों तक परस्पर कोई पत्राचार नहीं रहा। आज उसे अनुज की चिन्ता सता रही है। वह पत्र लिखता है। कोई उत्तर नहीं आया। वह तार भेजता है। उत्तर मिला, कुछ दिनों के बाद दूसरा लिफ़ाफ़ा मिला जिसमें अनुज ने मानो उस के मुंह पर तमाचा मार कर दस लाख रुपये का चैक चिट्ठी के साथ भेज दिया था और पत्र में लिखा था- ''आज कल इस मकान का पंद्रह लाख रुपये कोई भी देने के लिये तैयार है। उसी को ध्यान में रखकर दस लाख रुपये का चैक भेजता हूँ। इस में पाँच लाख रुपये मुम्बई वाले भाई को भेजना। रसीद यथाशीघ्र भेजना ताकि मकान मेरे नाम कोर्ट में रजिस्टर हो जाए।''

1. समस्त साधन उपलब्ध होने पर भी कहानी का मुख्य पात्र अपने पूर्वजों की सम्पत्ति को बेचने के लिये व्याकुल है। उसी का अनुज बहुत ग़रीब होने के बावजूद अपने पूर्वजों की सम्पत्ति की रक्षा करता है और उसे बचा लेता है। अपने पूर्वजों के नाम पर आँच तक आने नहीं देता। प्रस्तुत कहानी मूलतः क्षुद्र मानव प्रकृति एवं उसकी स्वार्थ प्रेरित व्यवहार-कुशलता को रेखांकित करती है।

2. प्रस्तुत कहानी में घाटी के अल्पसंख्यकों एवं बहुसंख्यकों के जीवन की कई सच्चाइयाँ एकसाथ साकार हो उठी हैं। इतिहास अपने भीषण विकराल रूप में मुखर हो उठा है। दिवा-स्वप्न जीवियों की निद्रा टूट चुकी है। स्वयं कहानीकार के शब्दों में 'लोग अब यह जानने लगे हैं कि कश्मीर की आज़ादी का नारा खोखला है।'

3. कहानी ऐतिहासिक घटना चक्र से सम्बन्धित है। मानव प्रकृति के बदलते रंग इस कहानी को आकर्षक बना देते हैं। कहानीकार ने कुशलता के साथ कहानी के मुख्य पात्र की मानासिक स्थिति का विश्लेषण किया है। प्रायः देखा जाता है कि हर आदमी मात्र अपने हितों की रक्षा के लिये चिन्तित रहता है। यह एक सच्चाई है कि मातृभूमि छोड़ते समय एक भाई ने दूसरे भाई से यह नहीं कहा कि 'मैं कल जा रहा हूँ।' चुपचाप देखते ही देखते घर के घर खाली हो गये। सब केवल अपने अस्तित्व की रक्षा में जुट गये। सारे रिश्ते अर्थहीन शब्द बन कर रह गये। वर्ग और समुदाय के विषय में किसी ने नहीं सोचा। जब लोग शरणार्थी कैम्पों में एकत्र हुए तो वर्ग और समुदाय की चर्चा होने लगी।

4. अवतार कृष्ण राज़दान कश्मीरी और हिन्दी दोनों भाषाओं में लिखते हैं। साहित्य सर्जन ही उनकी जीवन साधना है। इसी में वे संतुष्ट रहते हैं। वे जीवन के यथार्थ से जुड़े हैं। जिस स्थिति से वे स्वयं गुज़र रहे हैं उस का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव उनके मन-मस्तिष्क कर निरन्तर पड़ता रहता है। साहित्यकार इस सन्दर्भ में अधिक सचेत होता है। हर क्रिया की प्रतिक्रिया उसके मानस को अधीर कर देती है।

5. सोलह वर्ष व्यतीत होने के बाद आज कहानी का मुख्य पात्र मन-ही-मन लज्जित है। वही चित्राकृति उस की आँखों के सामने घूमती नज़र आती है जिसे उन्होंने दिल्ली के आवास पर एक दिन देखा था। एक भारी-भरकम पेड़ अपने जड़ों से उखड़ चुका है। उसमें शाखाओं का विस्तार तो दिखाई देता है, डालियों का फैलाव तो है पर मूल उखड़े हुए। उसे महसूस होता है कि पेड़ अभी गिर जायेगा, ज़रूर गिर जायेगा और सोचते-सोचते ही वह काँप उठता है।

6. कहानी के अन्तिम दो वाक्यों में कहानीकार का लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है। उसने अपने हृदय में भविष्य का सपना सँजो कर रखा है। वह 'सर्व जनहित' की बात सोचता है। पश्चाताप की अग्नि में कहानी के मुख्य पात्र के क्षुद्र स्वार्थ जल कर भस्म हो जाते हैं और 'सर्वजन हिताय' की भावना से प्रेरित होकर वह कहता है :-

> ''दुख यदि है तो इस बात का कि हमारे मूल क्यों
> उखड़ गये और शाखाएँ दूर दूर तक फैल गयी। क्या
> ये मूल एक बार फिर ज़मीन में गाढ़े नहीं जा सकते।''

7. कहानी का अभिव्यक्ति पक्ष कमज़ोर है। लगता है कि लेखक कश्मीरी में सोचकर हिन्दी में लेखन कार्य कर रहे हैं। भाषा को और अधिक चुस्त एवं मर्मस्पर्शी बनाने की आवश्यकता है।

8. आज कहानी में वर्णनात्मकता का कोई महत्त्व नहीं। एक संकेत ही बात को स्पष्ट करने के हेतु पर्याप्त है। नित नये प्रयोगों के प्रति आकर्षित होना तथा रचनाओं में तदानुसार लगातार प्रयोग करते रहना तो समय की पहचान है। राज़दान साहब को भी समय के साथ-साथ अभिव्यक्ति के प्रयोगात्मक स्वरूपों की उपयुक्तता पर विचार करना होगा। यदि वे चाहते तो कहानी को और अधिक संक्षिप्त बनाया जा सकता था।

प्रस्तुत कहानी का कथा तत्त्व अत्यंत आकर्षक, ऐतिहासिक एवं तथ्याधृत है। लेखक बधाई के पात्र हैं। लेकिन प्रस्तुति में शैथिल्य है। लेखक को इस विषय में सावधान रहना होगा।

अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कश्मीरी की तीनों कहानियां सफल हैं और कहानीकार बधाई के पात्र हैं।

०००

पंजाबी कहानी के अंतर्गत तीन कहानियां

❑ मूल – इछुपाल

आदिकाल से अब तक जो कुछ भी श्रेष्ठ साहित्य के रूप में रचा गया, वह सब परंपरा के अंतर्गत आता है और इसे आधुनिकता का विरोधी समझा जाता है। समय के बदलते प्रवाह में मानव अपने वर्तमान को जिन उदाहरणों से संवारता है, वे सब समकालीन या आधुनिक कहलाते हैं। और वर्तमान में ये सब आधुनिक परंपरा का अंग बन जाते हैं। फिर भी हर युग की पीढ़ी अपने वर्तमान की सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक आकांक्षाओं के दर्पण के आगे परंपरा को परख कर वर्तमान को संवारने में सहायक होती है।

आज साहित्य का विकास जिस तेजी से हो रहा है उससे वह अपनी पारंपरिक भाषा की सीमा से निकल कर दूसरी भाषा के विकास क्षेत्र को भी छू रही है। पंजाबी भाषा का यह राष्ट्रीय-अतंर्राष्ट्रीय विस्तार इस युग की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

इस लेख में रियासती पंजाबी कहानी के अंतर्गत निम्नलिखित तीन कहानियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है–

सतीसर का प्रकाश-स्तंभ : मूल० : खालिद हुसैन

तुंबकनाड़ी : मूल० : प्रो० प्रेम सिंह

बंद दरवाजे का रहस्य : मूल० : हरभजन सिंह सागर

पहली दो कहानियों का कथानक कश्मीर की त्रासदी के साथ संबंधित है जबकि तीसरी कहानी का कथानक इनसे भिन्न है। सागर जी की कहानी समकालीन समस्या नारी-विमर्श को लेकर लिखी गई है।

सतीसर का प्रकाश-स्तंभ

यह कहानी वास्तव में कुछ संकेत दे रही है। यह एक ऐसे सेक (ताप) की ओर संकेत है जो अंदर-ही-अंदर सुलगता हुआ राख का ढेर बन जाता है। कहानीकार का संकेत स्पष्ट है। रियासत पिछले कई वर्षों से इसी आग में सुलग रही है। कहानी का आरंभ एक ऐसे पीर, फकीर, वली के नाम से हुआ है, जिसका नाम सुनते ही मन शांत और निर्मल हो जाता है। यह दरवेश फकीर सांझा पीर है और इसके किस्से कश्मीर में लोक-किस्से बन गए हैं। कहानी अनुसार :–

वह एक ऐसा चोर था, जिसे उसके भाइयों ने चोरी करना सिखाना चाहा था, पर वह दुनिया की सारी सुख-सुविधाओं को छोड़कर प्यार का आटा चुरा कर ले गया। छज्ज (सूप) छानने (चलनी) से छानकर करूणा रूपी तवे पर रोटियां पकाने लगा।

उपरोक्त कथनानुसार एक वली, फ़कीर अपने काम में व्यस्त रहता है। उसे मात्र पूजा-पाठ से ही सरोकार होता है। ऐसे फकीर का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता अपितु उसी के रंग में, मस्ती में रंग जाते हैं। कहानी का उद्देश्य संकेतों से समस्याओं की निशानदेही करना है।

कहानी पढ़ते ही कुछ प्रश्न उभर कर सामने आए जैसे :-

1. मिथ को कहानी का धुरा क्यों बनाया?
2. क्या रियासत में ऐसी घटित घटना के साथ इसका कोई गहरा रिश्ता है?
3. नूर अपनी दूध माँ को लेकर कहाँ चला गया?
4. क्या उसके चार शिष्य उसे मना सकते हैं?
5. क्या लोगों के हाहाकार की पुकार उस तक पहुँची है?

इन प्रश्नों को उभार कर कहानीकार किसी तथ्य तक पहुँचाने का यत्न करता है। पाप का घड़ा जब भर जाता है तो उसको छलकना भी है। और इसके छींटे कहाँ-कहाँ पड़े हैं और वहाँ क्या घटित हुआ इस ओर भी ध्यान जाता है। कहानीकार को पूरा विश्वास है कि इस 'गन्न-कल्चर' को समाप्त करने में ऋषि-मुनि ही सहायक हो सकते हैं।

कहानीकार व्यक्ति, परिवार, समाज और सरकार की भूमिकाओं को कहानी में परत-दर-परत खोलता है। कहीं-कहीं कहानीकार चिंतनीय स्थिति में घिरा हुआ, व्याकुल-सा दिखाई देता है। फिर भी वह इस बात पर दृढ़ है कि लुप्त हुए मानवता के साए को धरती पर फिर से लाया जाए ताकि यहाँ अमन और शांति की लताएं चारों ओर फैल सकें। कहानीकार ऋषि के प्रवचनों के माध्यम से लोगों की उनके भूल चुके मंतव्य से पहचान कराता है।

'बीजा हुआ ही काटा जाता है।' इस उक्ति के माध्यम से कहानीकार एक विशेष नुक्ते की ओर संकेत करता है। कश्यप ऋषि ने भी आग के अलाव को ठंडा कर के इसी मार्ग से पानी बाहर निकाला था। हाकिम और उनसे मिले राक्षसों ने इसी रास्ते से प्रवेश किया था और इसी रास्ते से बाहर भी निकाले जा रहे हैं। कहानीकार द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों के माध्यम से ऋषि-मुनियों की सैरगाहों से विचरते हुए कुछ हीरे, मोती पाने का यत्न किया गया था। अभी बहुत कुछ है इस कहानी के भीतर। यह कहानी प्रतीकों के माध्यम से बहुत कुछ सांकेतिक रूप से पाठकों/श्रोताओं तक पहुँचाने में सफल हुई है।

तुंबकनाड़ी

इस कहानी के नाम से ही कश्मीरी साज़ और इस साज़ की गूंज, आकार और इससे जुड़ी भावनाओं का एहसास हो जाता है। इस साज़ की आवश्यकता अमरीका में रह रही डॉ० शकुंतला को है। वह चाहे बहुत वर्षों से अपना इलाका, अपनी रियासत ही नहीं अपितु अपना देश छोड़ कर अमरीका में बस गई है। रियासत में शादी-विवाह के अवसर पर सारी रात एक बड़े शामियाने के नीचे मेंहदी रात का आयोजन होता था। इस अवसर पर तुंबकनाड़ी की और वनवुन (शादी-विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले गीत) और नृत्य से सारा वातावरण गूंज उठता था। तुंबकनाड़ी के साथ गीत गाने का शौकीन अमीन का बाप कई-कई दिन इस साज़ की गूंज के नशे में डूबा रहता था।

दूसरी ओर डॉ. शकुंतला पश्चिमी सभ्यता में घुल-मिल न सकी थी। उसकी कल्पना में अपनी धरती की गंध और वे सारे विश्वास/संस्कृति थी। जिसे आज भी उसने अपने पल्लू के साथ चाबियों के गुच्छे की भांति बांध रखा था। वह सिमरन से मिन्नत करती है कि वह कश्मीर से उसके लिए दो तुंबकनाड़ियां ले आए। उदाहरण देखिए-

"सिमरन तेरा मेरे पर बड़ा एहसान होगा यदि तू कश्मीर से लौटते हुए दो तुंबकनाड़ियां ले आए। तुंबकनाड़ी बजेगी तो मुझे लगेगा कि मेरे बेटे की शादी है हमारे कान इसकी मीठी थाप के लिए तरस गए हैं।"

कहानीकार द्वारा तुंबकनाड़ी के महत्त्व को सोचने-समझने और समझाने के लिए वातावरण का सृजन बिल्कुल वास्तविक प्रतीत होता है।

सिमरन के पत्र से जहाँ घर में खुशी की लहर दिखाई देती है, वहीं बहन की ओर से भेजी गई। खरीद-फरोख़्त की सूची में पहले न. पर तुंबकनाड़ी होती है। सिमरन के भाई को तुंबकनाड़ी खरीदने की चिंता घेर लेती है। वह यह सोच कर भी चिंतित होता है कि यहाँ आतंक के भय से उसे (सिमरन को) घर में ही कैद हो कर रहना पड़ेगा। एक ओर प्रश्न उसे बार-बार सोचने पर विवश कर रहा था कि वह जब पहली बार एक महीना रह कर वापिस अमरीका गई थी, तब यहाँ कभी भी न आएगी ऐसे उसने कहा था। पर अपनी धरती का मोह, अपने बहन-भाइयों के प्यार की कशिश उसे खींच लाई थी।

तुंबकनाड़ी खरीदने की सोच में घिरा जब वह कार्यालय पहुँचता है तो उसका पी. ए. अमीन मीटिंग से संबंधित सारी जानकारी देता है।

तब वह पी. ए. को जलपान के मीनू के विषय में पूछता है। प्रत्युतर में बतलाता है "मैं कल ही मुगल दरबार आर्डर दे आया था। नानवेज़ में कबाब और वैज में चीज़ पकौड़े रखें हैं। पर सर आपके और सरन सिंह के लिए फिशकटलेट भी मंगवाए हैं।"

यहाँ कहानीकार जिस ओर संकेत करता है। उसे either/or का तर्क कहा जा सकता है। धर्मों का ही नहीं, धर्म और धर्म के साथ जुड़े खान-पान, पहनावे, विश्वास, संस्कृति और खुशी-गमी की आज-सभी में भिन्नता है।

कहानी के कथानक से ज्ञात होता है कि तुंबकनाड़ी का संबंध एक विशेष संस्कृति के साथ, विशेष लोगों के साथ भी उतना ही गहरा है। कहानीकार जहाँ तुंबकनाड़ी के विशष में सोचता है, वहीं वह धरती पर घटित हो रही घटनाओं के लिए भी चिंतित है। थोड़ी देर बाद बड़शाह चौक में फायरिंग होने के कारण मीटिंग पोस्टपोन होने की खबर मिलती है। फायरिंग में कुछ केजुएलटीज़ भी हुई, बड़शाह चौक और लाल चौक बंद हो गए। इससे उसकी चिंता बढ़ जाती है। क्योंकि उसकी बहन कुछ ही दिनों में अमरीका से अपने घर आ रही थी।

कहानीकार जब तुंबकनाड़ी की कीमत के विषय में अमीन के अब्बा से पूछता है तो उसका कहना-सरदार जी क्यूं शर्मिंदा करते हैं। दूसरों की नज़र में हम कश्मीरी खूनी तो बन गए हैं। अब आप हमें और छोटा न करो। क्या मैं इतना गया-गुजरा हूँ कि प्रदेश रह रही बेटी को एक छोटा-सा तोहफा भी नहीं दे सकता। उसके इस कथन के बाद बैठक को चुप्पी निगल जाती है।

उसके इस कथन के माध्यम से कहानीकार बहुत कुछ कह जाता है। यह इस कहानी की सफलता है।

बंद दरवाज़े का रहस्य

इस कहानी के शीर्षक से एक प्रश्न सूचक चिह्न मस्तिष्क पर दस्तक देने लगता है। बंद दरवाजे के अंदर घर या बाहर की ओर कौन-सी चीज़ है जो कहानीकार को कहने पर मजबूर कर रही है कि बंद दरवाजे का रहस्य क्या है? कहानी का 'मैं' पात्र इसका चश्मदीद गवाह है। मकान मालिक का लड़का शारीरिक दृष्टि से अपनी बहन से छोटा है पर वह मुख्य दरवाजा आसानी से खोल कर स्कूल चला जाता है। पर जब उसकी बहन तैयार होकर इस दरवाजे के पास पहुँचती है तो वह और उसकी माँ इस दरवाजे को नहीं खोल सकती। तभी एक आवाज़ आती है-

- कालेज की बस पहुंच गई है या नहीं?

- पहुँच गई है पापा।

जब उसे पूरा विश्वास हो जाता है कि बस पहुंच गई तो वह दरवाज़ा खोल देता है। यह सब 'मैं' पात्र देखता है। उसे यह दरवाज़ा वास्तव में रहस्यमयी लगता है।

मालिक मकान की पत्नी बहुत सुंदर है। उसकी सुंदरता आकर्षित करती है-पर उसकी पहुंच भी दरवाजे के कुंडे तक नहीं है।

ऐसा क्यों है? यह मकान मालिक किस दौर का व्यक्ति है? किस सोच का मालिक है? औरत को क्या समझता है? गुलाम? अपनी बेटी को भी? कहानीकार की इसके पीछे कौन सी सोच कार्यशील है? यह सब कहानी के कथानक का एक हिस्सा है। लड़का हाकी के साथ दरवाज़े का कुंडा खोल लेता है पर लड़की जब खोलने का यत्न करती है तो वह सफल नहीं हो पाती।

कहानीकार का यह कहलवाना-

– बेटी! तू पुरुष नहीं कि कुंडा खोल सके। यह तो मेरे से भी नहीं खुला। भला तू कैसे खोल सकेगी? चल बैठ अंदर।

बेटी को तो बाहर का खुला वातावरण कालेज में मिल जाता था पर उसकी माँ जिसकी सज-धज मात्र घर की चार दीवारी के भीतर ही रहती थी। प्रश्न उठता है कि मकान मालिक के अवचेतन में क्या छुपा है? वह औरत ही नहीं अपितु औरत जात के विषय में कैसे सोच रहा है? उसके ज्ञानवान होने का अनुमान अखबार पढ़ने की रूची से लगाया जा सकता है? आँखों पर मोटे शीशे की ऐनक। ऐनक पर चाहे धुंद छाई हो। दूसरी ओर अखबार जिसे पढ़ना उसके नित्य कर्म में आता है। वह क्यों ऐसा सोच रहा है? दुनिया के कौन से कोने में कौन-सी तबदीली आनी है? क्या हुआ? कैसे हुआ? किसकी सरकार आई है? इन सारे अर्थों में उसकी अपनी सोच घर के प्रति या नारीवर्ग के प्रति और मुख्य दरवाज़े का कुंडा कुछ सोचने पर विवश करता है। ''मैं'' चाहता है कि उसका घर, उसके घर के सारे सदस्य एक समान हों। जैसे उसकी पत्नी कालेज में पढ़ाती है। वह बाज़ार, घर, कालेज और कालेज के सहकर्मियों एवं विद्यार्थियों के साथ उठती-बैठती है। ''मैं'' अपने कालेज के माध्यम से उसके (मालिक मकान) जीवन में प्रवेश करता है और अपनी दलील के साथ उसे कायल करने और मनाने का यत्न करता है।

वास्तव में ''मैं'' मुख्य दरवाज़े के कुंडे का रहस्य समझा गया है। पर वह कोई भी उल्टा या सीधा तरीका अपना नहीं सकता। क्योंकि वह जानता है कि मकान मालिक उसे मकान खाली करने की धमकी दे सकता है। कहानीकार चतुराई से काम लेता हुआ उसके सामने पड़ी खाली कुर्सी पर बैठता है। अखबार पर मार्गरेट थेचर का चित्र देखकर बात शुरू करता है। आपका इस औरत के विषय में क्या विचार है?

– यह औरत ग्रेट-ब्रिटेन की प्रधानमंत्री है।

– वाह! साहब वाह! आपने इस औरत की नयी व्याख्या की है।

– साहब इस औरत के विषय में मैंने पढ़ा है कि यह खुली रोशनी और ताज़ा हवा में रहना पसंद करती है।

कहानीकार शीघ्रता से चरमसीमा लांघ कर बंद दरवाज़े के कुंडे को खोलना चाहता है, जिसके भीतर कैद माँ-बेटी को आज़ादी की चाहत थी। पर अपने बस का रोग न समझता हुआ चुप्पी साध लेता है।

कहानी में एक ओर मोड़ आता है। और इस मोड़ पर कहानीकार को एक चिंता है। एक ऐसी चिंता जो स्त्री-वर्ग पर प्रश्न चिन्ह बनी हुई है। वास्तव में ''मैं'' ने सारे अधिकार अपनी पत्नी को दिए हैं। उसे यहाँ मात्र छुट्टियां ही बीतानी है उसे मकान पसंद आ गया था। हर तरह की सुख-सुविधा, हवा, धूप, छावं, पानी, बिजली, खुली बड़ी-बड़ी खिड़कियां, खुला आंगण, लान आदि। सब कुछ उसकी कल्पना अनुसार। पर ''मैं'' पात्र को मुख्य दरवाज़े का कुंडा और मकान मालिक की स्त्री-वर्ग के प्रति सोच 'घुन' की तरह अंदर-ही-अंदर से खाए जा रही थी। वह नहीं चाहता था कि इस रहस्य का पता उसकी पत्नी को लगे। इसलिए जब भी वह अपनी पत्नी के साथ शाम को या छुट्टी के दिन बाजार या किसी दोस्त के जाता तो झट आगे बढ़ कर दरवाज़ा खोल देता। एक दिन उसकी पत्नी उससे पहले तैयार होकर आंगन में आ गई। वह मुख्य दरवाज़े की ओर बढ़ी ही थी कि मालिक मकान बोल पड़ा-

''तुझे पता होना चाहिए कि घर की दहलीज़ लांघने से पहले दरवाज़ा खोलना पड़ता है। जो तेरे से नहीं खुलेगा।''

उसने दरवाज़ा खोलना चाहा, पर उससे दरवाज़ा नहीं खुला। उसने दाएं पैर की चप्पल उतार कर कुंडे पर दे मारी और टन की आवाज़ के साथ कुंडा खुल गया। दरवाज़ा खुलते ही प्राकृतिक ताज़ा हवा पूरे घर में फैल गई और प्राकृतिक हवा के आने से घर की औरत की भटकन समाप्त हो गई। कहने का तात्पर्य यह है कि नारी की चेतना जागृत हो गई।

निः संदेह पंजाबी कहानी के अंतर्गत इन कहानियों को पढ़ने पर लगा कि एक नया धरातल कहानीकार ने सृजत किया है। इसे और सतर्कता से रेखांकित किया जा सकता है। तीनों कहानियां पाठक पर अपनी छाप छोड़ जाती हैं।

अनु० नीरू शर्मा

०००

पंजाबी कहानी

तुंबकनाड़ी

❑ मूल – प्रो० प्रेम सिंह

अमेरिका से आई अपनी छोटी बहन डॉ० सिमरन की चिट्ठी को उसने कई बार पढ़कर पूरे परिवार को सुनाया।

बच्चे बहुत खुश थे क्योंकि उनकी चहेती बुआ जो आ रही थी।

भाभी खुश थी.... उसकी छोटी ननद लगभग पांच बरस बाद आ रही थी। पर... वीर जी[1] कुछ उदास थे क्योंकि वीर जी! वीर जी! कह कर चहकने वाली सिमरन इस बार अधिक दिन उनके पास नहीं रुकेगी। क्योंकि इस बार वह मात्र दस दिनों के लिए ही आ रही थी।

पर वे भली-भांति जानते थे कि उनकी लाडली सिमरन को कश्मीर से वापिस जाने की जल्दी क्यों थी ? सिमरन का वह कश्मीर जहां पर वह पली-बढ़ी थी, कहीं खो गया था। बारूदी धुआं उसके स्वर्ग को निगल गया था। धरती की इस सुंदर वादी की सदियों पुरानी चहल-पहल अब नहीं थी। भय के दम-घोटू वातावरण ने कश्मीर की आत्मा को मानो काट-सा दिया था।

उन्हे याद आ रहा था, जब सिमरन पिछली बार आई थी तो बहुत मायूस हुई थी। पूरा-पूरा दिन वह घर में ही कैद रहती थी। एक दिन बारामूला जाकर ननिहाल वालों से मिल आई थी। वह गुलमर्ग और पहलगांव जाने का कार्यक्रम बनाती रही पर जा न सकी और न ही भाभी ने उसे बागों में घूमने जाने दिया था।

लगभग एक महीना घर में ही बिता कर वह भरे दिल से अमेरिका लौट गई थी जाते-जाते कह गई थी-''वीर जी, अब मैं यहाँ नहीं आऊंगी, क्योंकि कश्मीर तो मेरे लिए जेल बन गया है।''

वह आज फिर से आ रही थी। भला अपनी मिट्टी की खुशबू और अतीत के आकर्षण से वह कब तक आँखें मूंदती सोचते ही वीर जी मुस्कुरा दिए।

उन्होंने दोबारा चिट्ठी की उन पंक्तियों को पढ़ा, जिसमें सिमरन ने वह सारा सामान लिखा था, जिसे जाते समय वह अपने साथ ले जाना चाहती थी। हर बार विदा करते समय वह कई सौगातें उसके बैग में भर देते थे।

पर... इस बार बहन की ओर से लिखी गई सूची में दो तुंबकनाड़ियां भी लिखी थीं।

सिमरन 'झल्ली'[2] ने तुंबकनाड़ियों को क्या करना है? ढोलक मांगती तो बात समझ में आ जाती। क्योंकि बचपन से ही उसे ढोलक बजाने का शौक था। किसी के भी घर शादी-

---

1. *वीर जी-भाई के लिए प्रयुक्त संबोधन*
2. *झल्ली-पगली*

ब्याह होता तो वह झट से ढोलक बजाने लगती। गीत और टप्पों से तो वह समां बाँध देती थी। मेरी शादी में तो ढोलक बजा और गा-गाकर पगला-सी गई थी। उसे देख सभी सोचने पर विवश थे कि इतनी छोटी-सी लड़की इतना अच्छा ढोलक बजाना कहाँ से सीख आई है? ''पर.... आज तुंबकनाड़ी का शौक कैसे चढ़ गया इसे।''

इन्हीं सोचों में उलझा वह आफिस पहुंच गया कुर्सी पर बैठते ही पी.ए. ने आदाब करके दिन के मुख्य कार्यों की सूची उनके आगे रख दी।

सूची पर सरसरी दृष्टि डालते हुए पूछा-''मि० अमीन सारे जरूरी कागज़ात तैयार हैं। मीटिंग में जिस रेफरेंस की जरूरत पड़ सकती है उसे भी तैयार रखना। हर मैंबर की फाइल में प्रोजैक्ट भी रख देना। हाँ, चाय के साथ क्या मीनू है।''

''सर आप चिंता न करें मैंने पहले कब आपको शिकायत का अवसर दिया है। सर, कल ही मैं मुगल दरबार आर्डर दे आया था। नानवैज में कबाव और वैज में चीज़ पकौड़ा रखा है। सर, आप और मि. सरन के लिए स्पैशल फिश कटलेट भी मंगवाए हैं।''

''गुड! वैल डन! मि. अमीन आपने मेरा एक पर्सनल काम करना है।''

''सर, हुकम कीजिए।''

''मुझे दो तुंबकनाड़ियां चाहिये। पर हों टाप क्लास।''

''पर सर जी, आप भी अब....?''

''तू, हैरान क्यों हो रहा है। क्या मैं कश्मीरी नहीं हूँ? क्या तुंबकनाड़ी के साथ मेरा कोई रिश्ता नहीं?''

''नो सर, ऐसी कोई बात नहीं? मैं आज तक सरदारों की जितनी भी शादियों में गया हूँ। वहाँ ढोलक और ढोल बजते ही देखे हैं। आपके यहाँ शादियों में लड़के-लड़कियां मिल कर नाचते हैं तो समां बंध जाता है। सर आप लोगों में बड़ा खुलापन है।

तीन बरस पहले मैं मोहन सिंह के विवाह में तराल गया था। वहाँ मैंने भी बड़ा मज़ा किया था। सर आप बहुत ज़िंदादिल लोग हैं। इसीलिए तुंबकनाड़ी के नाम ने मुझे सोचने पर विवश कर दिया। मैंने आज तक कभी किसी सरदार को तुंबकनाड़ी बजाते नहीं देखा।

खैर सर आप तुंबकनाड़ियों की चिंता न करें। यह काम मैं अपने अब्बू को सौंप दूंगा। वे संगीत के शौकीन हैं। अब्बू जी तो कई-कई रातें संगीत महफिलों में गुजारते थे और जब घर आते तो कईं दिनों तक संगीत के नशे में ही रहते थे। पर आजकल उदास और गुमसुम से रहते हैं। सर आपको ये कब तक चाहिएं।''

''ज़्यादा-से-ज़्यादा एक सप्ताह तक।''

''सर, समझे आपका काम हो गया। मैं आपके घर पहुँचा दूँगा।''

उसके लिए तुंबकनाड़ी कोई अनजानी चीज़ नहीं थी। यह अलग बात है कि उनके घरों में शादी-विवाह में तुंबकनाड़ियां नहीं बजती थीं।

पर उसने तुंबकनाड़ी बजती देखी थी। इसकी मीठी थाप सुनी थी। कई बार अपनी मित्र-मंडली के साथ तुंबकनाड़ी की थाप पर नृत्य भी किया था। वह जानता था कि कश्मीरी इस साज़ को शुभ शगुन मानते हैं। कश्मीरियों में जब कभी भी खुशी का अवसर होता तो पहले तुंबकनाड़ी ही बजती है।

उसने बाहर की ओर देखा। अचानक उसकी दृष्टि महादेव की टीसी पर जाकर टिक सी गई। उसे यूं लगा मानो वह अपने कालेज के साथियों और हाइकरों के साथ उस चोटी पर बैठा हो। उसकी नज़र थोड़ा ऊपर उठी तो पीर-पंचाल की झक सफ़ेद बर्फ ने उसे आलिंगन-बद्ध कर लिया। उसके तन-मन ने बर्फ की ठंडक महसूसी। वह पल-दो-पल के लिए भूल गया कि उसे बंकरों के आगे से गुज़रना पड़ता है... कितनी ही बार क्रास-फायरिंय में जान बचाकर उसे पगड़ी हाथ में लेकर भागना पड़ा है।

सोचों में उलझा वह वहाँ जा पहुँचा, जहाँ तुंबकनाड़ी बजती थी। 'वनवुन' के साथ आस-पड़ोस नाच रहा था। ये वे दिन थे जब उसकी बस्ती में सारे कश्मीरी मिल-जुलकर रहते थे। चारों और शांति थी, आपस में भाईचारा व स्नेह था।

पड़ोस में उसका मित्र हृदयनाथ गंजू रहता था। उसके बेटे नोबे की मेंहदी रात थी। सारे मुहल्लेदार हृदयनाथ के आंगण में इकट्ठे हुए थे। तुंबकनाड़ी की आवाज़ चारों ओर गूंज रही थी। सारे नाते-रिश्तेदार 'वनवुन' गाते हुए झूम रहे थे। मदमस्त वातावरण में वह हृदयनाथ कौल और उसकी पत्नी किशना के साथ नाच रहा था। नाचते हुए उसे महसूस हो रहा था। मानो धरती और आकाश भी उसके साथ झूम उठे हों।

अचानक उसके केबिन का दरवाज़ा खुला और वह बीते दिनों की मीठी यादों में से लौट आया।

''सर! आज की मीटिंग पोस्टपोन हो गई है।''

''पोस्टपोन! पर क्यों?''

''सर, बड़शाह चौक में क्रास फायरिंग हो रही है। कुछ कैजुएल्टीज़ भी हुई हैं। बड़शाह और लाल चौक बंद हो गए हैं। बाहर अफरा-तफरी का माहौल है। हमारे दो डायरेक्टर भी इस क्रास फायरिंग में फंस गए थे। पर भगवान की कृपा से उनकी गाड़ी रास्ते से ही वापिस चली गई। वह दोनों अपने कार्यालय सकुशल पहुंच गए हैं। कमीश्नर साहब के आफिस से फोन आया था कि आज की मीटिंग पोस्टपोन कर दी गई है।''

''पर सुबह तो सब कुछ ठीक-ठाक था। यह क्या हो गया?''

''सर, महीयुद्दीन को घर से फोन आया था कि गऊकदल से एक जलूस आ रहा था। पुलिस ने बड़शाह चौक के पास रोक लिया तो लोग पथराव करने लगे, पुलिस ने अश्रु गैस चलाई। तभी भीड़ बेकाबू हो गई और फायरिंग होने लगी।''

"बहुत बुरा हुआ। सुबह बच्चे स्कूल गए थे। पता नहीं वे कैसे होंगे? वे घर कैसे आएंगे?"

"सर, गाड़ियां तो चल पड़ी हैं। मुझे लगता है शाम तक हालात ठीक हो जाएंगे।"

उनके (वीर जी) मन में आया कि वह बहन को कश्मीर आने से रोक दें। क्योंकि टेंशन में वह यहाँ आकर क्या करेगी? "पगली तुंबकनाड़ी ढूंढ़ रही है। वनवुन की बात करती है। यहाँ तो रोना-पीटना चल रहा है।" पर चाहते हुए भी वे अपनी बहन को आने से रोक न सके।

और हाँ, डॉ० सिमरन के श्रीनगर पहुँचने से पहले ही हालात ठीक हो गए। समय का चक्र चल पड़ा। वे सारी चीजें खरीद लीं गईं, जिनके लिए सिमरन ने लिखा था। और अब अगर कुछ रहता था तो वे थीं तुंबकनाड़ियां। वे भी एक-दो दिन तक पहुंच जानी थीं।

डॉ० सिमरन ने घर पहुँचते ही वीर जी के गले लगते हुए तुंबकनाड़ियों के बारे में पूछा बहन के सिर पर प्यार से हाथ रखते हुए कहने "ले लीं हैं। चिंता मत कर।"

रात के खाने के बाद, परिवार में बातें होती रहीं। बच्चें बातें सुनते-सुनते बुआ के पास ही सो गए थे। आखिर उसने बहन से पूछ ही लिया "सिमरन तुझे तुंबकनाड़ी की क्या ज़रूरत पड़ गई? तू बजा सकती है क्या?"

"वीर जी! मुझे कहाँ तुंबकनाड़ी बजानी आती है। यह मैं अपने लिए नहीं ले जा रही।"

"तो फिर!"

"आपको बताया तो था कि शकुंतला खजानची मेरी कुलीग है। हमारे पास ही रहती है। बहुत अच्छे लोग हैं। कश्मीर से दूर होने के कारण हमें घर की अक्सर याद सताती है। इसलिए हम लोग आपस में मिलते रहते हैं। और एक-दूसरे के काम आकर खुशी महसूस करते हैं। ये तुंबकनाड़ियां मैं शकुंतला के लिए ले जा रही हूँ।"

"पर वह तुंबकनाड़ी का क्या करेगी? अजीब पंतेआनी[3] है। विदेश जाकर भी तुंबकनाड़ी को नहीं भूली है।"

"वीर जी, अपने देश का कोई जवाब नहीं। कश्मीर से पलायन करने पर पंडित कश्मीर के लिए दीवाने हो गये हैं। इस आतंकवाद के कारण सैंकड़ों पंडित स्टेटस चले गए हैं। युवक रोज़गार की तलाश में हैं। पर हमारी पहली पीढ़ी बहुत दुखी है और कश्मीर को अक्सर याद करती है।"

"हम यहाँ कौन से सुखी हैं। टैंशन ने हमें भीतर से तार-तार कर दिया है। खुशियां हम से रूठ गई हैं।"

"वीर जी, आप फिर भी भाग्यशाली हो। ऐसे में भी आप अपने संगी-साथियों के साथ अपने वतन में ही रह रहे हो। पर हम तो परदेस में हैं। अपने देश से बहुत दूर। परसों जब शकुंतला मुझे एयरपोर्ट पर छोड़ने आई थी तो गले लगकर रो पड़ी थी और कहने लगी- सिमरन मैं तेरा एहसान कभी नहीं भूलूंगी यदि तू वापिस आते हुए दो तुंबकनाड़ियां ले आए

3. पंतेआनी-पंडिताइन

तो? तुंबकनाड़ी बजेगी तो मुझे लगेगा कि मेरे बेटे की शादी हो रही है। तुंबकनाड़ी के बिना कैसी शादी? हमारे कान तो उसकी मीठी आवाज़ सुनने के लिए तरस गए हैं।''

वे रात देर तक बातें करने के कारण सुबह देर से उठे थे। क्योंकि आज रविवार था। नाश्ता करते दस बज गए। तभी उनकी काल बैल बजी। वीर जी ने स्वयं जाकर दरवाज़ा खोला।

''सर, आदाव अर्ज़।'' सामने अमीन और उसके अब्बू खड़े थे।

उन्हें ड्राइंगरूम में बिठाकर , चाय के लिए कहा और साथ ही सिमरन को सुनाया कि उसकी सौगात आ गयी है। सुनते ही सिमरन ड्राइंगरूम में आ गई। तुंबकनाड़ी देखकर वह खिल उठी और उसे बजा कर देखने लगी।

''कमाल का साज़ है। कश्मीरी भला कैसे इसके बिना कैसे रह सकते हैं।'' देखते-ही-देखते वह अतीत में खो गई। फिर अचानक बोली-

''वीर जी, इस सौगात को कैसे ले जाऊंगी। ये तो रास्ते में ही टूट जाएंगी। इससे अच्छा है मैं इन्हें न ले जाऊं।''

''सिमरन रानिये! मुझे माफ कर। इन्हें स्टेटस पहुंचाना मेरे बस का रोग नहीं। मैं पहले ही इन भले लोगों को तुंबकनाड़ियों की तकलीफ देने पर शर्मसार हूँ।''

वीर जी की बात सुन सिमरन निराश हो गई। अमीन के अब्बू ने उसकी निराशा को भांपते हुए पूछा-''सिमरन पुत्तर! तुंबकनाड़ियां अमेरिका क्यूं ले जानी हैं? हम तो इन्हें अब हाथ लगाते हुए भी झिझकते हैं।''

''अमेरिका में जहाँ सिमरन काम करती है वहाँ कुछ कश्मीरी परिवार भी रहते हैं। इसकी सहेली शकुंतला के बेटे की शादी है। उसी ने इसे तुंबकनाड़ी लाने को मिन्नत की थी।''

''सरदार जी! बस इतनी-सी बात है? आप निश्चिंत हो जाएं। इनकी पैकिंग करवाना अब मेरी ज़िम्मेदारी है। हमारे मुहल्ले में पेपरमाशी के व्यापारी अपना सामान विदेश भेजतें हैं। उनसे ही इनकी पैंकिग करवा दूंगा।''

अमीन के अब्बू की बात सुन सबने राहत की सांस ली। पर सिमरन तो खिल उठी। उसे अमीन और उसके अब्बू बड़े भले लगे। उन्होंने तुंबकनाड़ियां उठाते हुए आज्ञा मांगी।

''मैं आप का शुक्रगुज़ार हूँ। आपने हमारी परेशानी हल कर दी। पर एक मेहरबानी और कर दें। कृपया इनकी कीमत बता दें।''

''सरदार जी, क्यों शर्मिंदा कर रहे हैं। दूसरे लोग तो हमें शंका की दृष्टि से देखते हैं पर आप तो हमें...? क्या मैं इतना गया-गुजरा हूँ कि अपनी परदेसन बेटी को छोटी-सी सौगत भी नहीं भेज सकता।'' कहते हुए उनकी आँखें नम हो गईं थीं।

अनु० नीरू शर्मा

०००

पंजाबी कहानी

सतीसर का प्रकाश-स्तंभ

❑ मूल – खालिद हुसैन
❑ अनु० – कुलविन्दर मीत

वह सूर्यवंशी सलरसैफैज का बेटा था। सधरां और सलार का सूर्य! उसने जन्म लेते ही झूठे संसार को देखकर माँ सधरां का दूध पीने से इन्कार कर दिया था। परन्तु लल्लेश्वरी की गोदी में बैठकर उसे सुकून मिला था। लल्लेश्वरी उसकी दूध-माँ थी। जिसने उसे अपनी छाती का दूध पिलाया था और उसके भीतर प्यार तथा मानवता की मिश्री घोली थी।

वह एक ऐसा चोर था जिसको उसके भाइयों ने चोरी करना सिखाना चाहा था पर वह दुनिया की सारी चीज़ें छोड़कर मुहब्बत का आटा चोरी करके ले गया था...। और सचाई के चलने से वही आटा छानकर करुणा के तवे पर रोटियाँ सेकने लगा और जनता को खिलाने लगा। वह एक ऐसा आवारा था, जिसकी आवारागर्दी से तंग आकर माँ सधरां ने उसे विवाह की बेड़ियों में जकड़ा था पर वह सब कुछ छोड़कर-प्रभु-ज्ञान की खोज में एक गुफ़ा में जाकर बैठ गया और वहाँ बारह वर्षों तक कर्म-ज्ञान के चरखे पर अपने आदर्शों का सूत कातता रहा। यौवन नार उसे अपने हुस्न का गुलकंद खिलाने और वासना के जाल में फँसाने के लिए गुफ़ा के भीतर गई थी, पर पगली फक़ीरी चोला पहनकर बाहर निकली थी।

उसका नाम नूर था। वह मुहब्बत और करुणा के आसन पर बैठकर लोगों के दिलों को अपनी नुरानी किरणें बाँटता था। उसकी मुहब्बत-भरी आँख अवगुण नहीं देखती थी। वह मुहब्बत का नूरी कलमा पढ़ता रहता और जनता को कहता कि परमात्मा ही तमाम पृथ्वी का स्रष्टा है और स्वामी है। इसलिए प्रभु को अपनी निजि सम्पत्ति न बनाएँ और प्रभु नाम पर धरती पर फ़साद मत करें। उसका कहना था कि अपने भीतर संयम और नेकी का पौधा उगाएँ ताकि प्यार रूपी समुन्द्र मन में धमाल मचाए और सच्चे प्रभु का स्मरण करवाए। वह कहता कि अपने दिलों को मुहब्बत तथा नेकी से बुहारते रहो। और दिलों के मक्के तथा शिवालय को गंगाजल और ज़मज़म से धोते रहो ताकि नफ़रत और बुराई तुमसे कोसों दूर रहे। वह समझाता कि अपने मन पर काबू रखो। अपने अंतर्मन रूपी कुत्ते को स्वाभिमान तथा इज्ज़त बेचकर मत पालो। बल्कि उसे भूखा मारो। वह बंदा परमात्मा का था पर सेवक सबका था। वह कामल सूफ़ी दरवेश था जो मस्जिद में बैठकर शंख बजाता और मंदिर में बैठकर नमाज़ पढ़ता। वह अपनी माँ लल्लेश्वरी की गोद में खेलता रहता। दोनों ने मिलकर अपने श्लोकों तथा वाक्यों से अमन, शांति, मित्रता और एकता की लौ जगाई थी। वह लोगों के दिलों पर शासन करता था। और लोग उसे प्रेम से नुंद ऋषि कहते थे। क्योंकि वह रांझा सबका सांझा था।

उसका सम्मान और वैभव वहाँ के राक्षस को काँटों की भांति चुभता था। वह उससे बेहद नफ़रत करता था। शत्रुता तथा क्रोध की आग उस राक्षस के भीतर भभक रही थी। वह नूर की रोशनी मिटाना चाहता था। वह गंगाजल और ज़मज़म को लड़वाना चाहता था। उसका नाम शासक था। धरती पर शासन करने वाला शासक। लोगों को गुलाम बनाने वाला शासक अपने साम्राज्य के नशे में चूर रहने वाला शासक। उन दोनों की अक्सर टक्कर रहती। एक ओर सम्पन्नता की महत्त्वाकांक्षा थी तो दूसरी और फ़कीरी की संतुष्टी थी। नूर का कहना था कि शासक लोगों के दिलों में राज करे, उनके जिस्मों पर नहीं। वह शासक को समझाता कि मनुष्य का शिकार प्यार और एहसान से करे, शोषण से नहीं। शोषण एक बीमारी है और दया उसकी दवाई है। नूर शासक को नसीहत करता कि अपनी आत्मकथा में से 'मैं' शब्द बाहर निकाल दो, नहीं तो नफ़रत की आग में जलकर भस्म हो जाओगे। वह शासक को सबक देता कि यह 'मैं' तबाही और बर्बादी लाता है। गुड़-सी मीठी ज़िन्दगी में ज़हर घोल देता है। लोगों को तेज़ाब में नहलाता है। यह शब्द हस्ति एवम् मस्ति का शत्रु है। पर उस राक्षस ने नूर की एक न सुनी। उसका कहना था कि उसकी आत्मकथा में सबसे उपयोगी पात्र तो 'मैं' ही है। उसे अपने भीतर से कैसे बाहर निकाला जा सकता है। शासक ने नूर को मनसूर समझा और उसकी बातों से खीजने लगा। वह उसकी बातें सुनकर तंग आ गया था। नूर के प्रवचन सुनकर शासक का खून खौलने लगा और आखिर उसने उस फ़कीर साईं को सबक सिखाने का फ़ैसला किया। उसे सूली पर टाँगने का निर्णय। भला शासक और उसका साम्राज्य अपने बाग़ी को कैसे बर्दाशत कर सकता था। शासक ने अपनी आत्मकथा के मुख्य पात्र ''मैं'' को अपने साथ मिलाया और एक बड़ा लश्कर तैयार किया और रणभूमि में उसे ललकारा।

शासक के साथ गर्व, घमण्ड, नफ़रत, दुश्मनी, भय तथा ताकत जैसे शस्त्र थे। नूर के संग फ़कीरी, दरवेशी, सच्चाई, नम्रता, मोहब्बत, हौसला, हिम्मत तथा संयम जैसे साथी थे। शासक के पास अहंकार की कटार थी और नूर के पास अक़्ल तथा सूझ की तलवार थी। वह रुहानियत का झण्डा लिए शैतानी ताकत की ओर बढ़ा। बहुत ज़ोरदार लड़ाई हुई। लोगों ने देखा कि शासक के सभी शस्त्र टूट गए। उसके हथियार उसके साथी नहीं बने। फ़कीरी युद्ध जीत गई। पर शासक ने हार नहीं मानी। उसका कहना था कि सरदारी कभी नहीं हारती। साम्राज्य समाप्त नहीं हो सकता।

शासक ने अपनी चालें बदलीं। राजनीति के शिवाले बदले! वह धीरे-धीरे फिर अपनी सेना तैयार करने लगा। उसने अधर्मी स्वामियों तथा जुनूनी मौलानों को अपने साथ मिलाया। उसने उनके सम्मुख धन-दौलत के ढेर लगा दिए। उनके हाथों में धर्म-जंज़ीरें पकड़ाईं ताकि मासूम बालकों के दिलो-दिमागों को पथभ्रष्ट किया जा सके। शब्दों की जादूगरी से नासमझों को अज्ञानी बनाया जाए। अमन-शांति और एकता के अर्थ मूल्यहीन कर दिए जाए। फिर कुछ देर पश्चात् जुनून और कट्टरवाद की पौध ने अपनी जड़ें पकड़ लीं। धर्म उन्माद की फ़सल फ़ैलने लगी। काम, क्रोध और लोभ अपना आकार बढ़ाने लगे। आँधी चलने लगी। सुनामी लहरें उठने लगीं। धरती काँपने लगी। चारों ओर शूल-ही-शूल उग आए। धर्म तथा राजनीति

ने दिलों में नफ़रत का ज़हर भर दिया। फ़कीरी तथा दरवेशी दम तोड़ने लगी। साधु संतों के आश्रम उजड़ने लगे। लोग ''ईश्वर अल्लाह तेरो नाम'' को छोड़कर बारूद की पूजा करने लगे। वेद, ग्रंथ, पुराण तथा धार्मिक किताबें दफ़ना दी गईं। नए ग्रंथ लिखे जाने लगे। जहाद तथा फ़साद की विचारधारा परवान चढ़ने लगी। घरों-सड़कों तथा रास्तों में बम बीजे गए। मक्कारी तथा फ़रेब की दुकानें मस्जिदों तथा मन्दिरों में सजाई गईं।

अब शासक प्रसन्न था। उसका साम्राज्य प्रसन्न था। उसने पूरी तैयारी के साथ पुनः युद्ध प्रारंभ किया। रणभूमि रक्त से सुर्ख हो गई। मोहब्बत, एकता, अमन, शांति, रुहानियत और संयम सभी हार गए। फ़कीरी, दरवेशी और सबूरी की गर्दन घोंट दी गई। शराफ़त, सादगी और पवित्रता की अर्थी निकाली गई। जनता साम्राज्य की ताकत के आगे झुक गई। ज़िन्दगी के पाँव में छाले पड़ गए। सांझ और प्यार के रिश्ते आग और लहू में भस्म हो गए। दहशत तथा भय ने मानवता के चीथड़े कर दिए। हर ओर जुनूनी घास के जंगल बन गए। समय ऐसा आया कि भाई-भाई से डरने लगा। सत्य और आदर्शों की दौलत धर्म और राजनीति के मर्तबानों में कैद कर दी गई। पगड़ियाँ मिट्टी में मिला दी गई। बहुएं जलीं, बहनें-बेटियाँ चौराहों पर निर्वस्त्र की गईं। फिर लोगों ने दुष्टों की चालें देखी। जोगियों, ढोंगियों की जय-जयकार देखी। शरीफ़ों की लाचारी देखी। विद्या और बुद्धिमान घास के भाव तौले गए। मिट्टी में गूँथे गए। लोक दुर्गति कुछ तो भय एवम् डर ने की और कुछ भ्रष्ट राजनीति ने। झूठ की पिटारी खुली दिखी? अधिकार का शरबत बिखरा देखा। धरती बाँझ हो गई। बहशी दरिन्दों ने आबरुओं को मुफ़्तमाल समझकर लूटा। गर्भाशय लहुलुहान हो गए। आँखों के आँसू सूख गए। उन्होंने बच्चे पालने छोड़ दिए। बच्चों के झूलने टूट गए। लोरियाँ जम गई। ममत्व के ठूँठ टूट गए? ताकत और दहशत ने इतने दुख बिखेरे की घर की छतों ने भी किसी को छाया नहीं दी। आँगन सूने हो गए। राजनीति और धर्म का बेलन इस अभागी धरती पर ऐसा चला कि ईश्वर शर्मिंदा हो गया। बिछड़ी मुहब्बतें देखकर लोग कराह उठे। भूखे रहे, यज्ञ तथा हवन करवाए, पर प्रभु दर पर नहीं आया। सभी इबादतें और प्रार्थनाएँ अन्धी हो गईं। बारूद ने ज़िन्दगी और मौत की दूरी मिटा दी। बदकारी और बदचलनी आम हो गई। बेशर्मी और बेहयायी सड़कों पर नाचने लगी। लोग घरों को छोड़कर चले गए। उन्हीं घरों को जिनमें उनका अतीत रहता था। घरों ने अपने वासियों को लाख कहा कि वे अपने अतीत को छोड़कर न जाएँ। उस अतीत को जिस पर उन्हें गर्व था। जो उनकी पहचान था। पर वे मौत तथा दहशत को देखकर भाग निकले काफ़िलों की सूरत में, उन्होंने पराई धरती पर शिविर जमा लिए। उनकी पहचान पराई जगह पर खो कर बिखर गई।

सांस्कृतिक क्रांति यूँ ही आती है। वर्षा की बूँदें चश्मे पी लेते हैं। चश्मे नदियों में मिल जाते हैं। नदियाँ अपने-आप को सागरों के हवाले कर देती हैं। यह ईश्वर की माया है। उनके जाने के बाद दहशत का जुनून और गहरा हो गया।

जनता मज़हबी जुनून और कट्टरवाद की गुलाम बन गई। अक़्ल के अन्धों ने एक दूसरे की बली चढ़ाई। पापी केवल पाप के हुए, न माँ और न बाप के हुए। घरों में हर-रोज़ तन्हाई

बिछी। बारूद के खेल में झोंपड़ियां जलीं। मंदिर, मस्ज़िद तथा दरगाहें जलीं। संत-फ़कीरों के डेरे जले। और एक दिन बारूद के इस खेल में नुंद ऋषि का मज़ार भी जल गया। आग और धुएँ के इस खेल में उसका बस रहा चरार भी जला। सारी धरती काली हो गई। सुरक्षा तथा बचाव प्रश्न बन गए। चुप्पी और सन्नाटे ने सतीसर को घेर लिया। खुशियाँ और हँसी रूठ गए। दिन मातम में डूब गए और रातें दर्द और गम में। हर घर का शोक हर दिल का रोग बन गया। ताकत तथा दहशत ने जी भरकर अपनी भूख मिटाई। लहू ने राक्षसों की प्यास बुझाई।

फिर यूँ हुआ कि दो परछाइयाँ मज़ार की काली राख से बाहर निकलीं और चरार के आकाश में लुप्त हो गई। लोगों की आँखें उन्हें देखकर पथरा गईं। परछाइयों को गायब होता देखकर साधु-संतों की समाधियाँ चीख उठीं।

सूफ़ी दरवेशों की कब्रें कांपी। यूँ प्रतीत हुआ जैसे नुंद ऋषि अपनी माँ लल्लेश्वरी को साथ लेकर इस अभागन धरती को छोड़कर कहीं चला गया है। शायद अपने पुरखों के देश में सूफ़ी-संतों की दुनिया में हलचल मच गई। संत अपने मठों से और सूफ़ी दरवेश खण्डहर बनी खानकाहों से बाहर निकल आए। उन सबने संयम के मैदान में सम्मेलन किया और निर्णय लिया कि माँ-बेटे को वापस लाया जाए। सतीसर को स्वतंत्र करवाया जाए। ताकत तथा भय के कहर से, जुनून तथा कट्टरवाद से। मासूम बच्चों और जवानों को जुनूनी मौलानों और पंडों की कैद से छुड़वाया जाए और उनके भीतर की मैल धोई जाए। बच्चों को पुनः रूहानी पाठशालाओं में लाया जाए और उनको शक्कर, गुड़ का शरबत पिलाकर उनके दिलो-दिमाग से नफ़रत का ज़हर बाहर निकाला जाए। बच्चों को बताया जाए कि मानवता का दूसरा नाम ही मुहब्बत है। मुहब्बत पत्थर को मोम बना देती है। मुहब्बत सिर्फ मुहब्बत को जन्म देती है। नफ़रत सिर्फ़ हैवान पैदा करती है। उन को समझाया जाए कि समस्या वार्ता से समाप्त होती है छल से नहीं। तर्क से ही मुसीबतें सुलझती हैं। गुमराह युवकों को अपनी सभ्यता, परंपरा तथा रहन-सहन दर्शाया जाए। उनके दिमाग में यह बात डाली जाए कि पानी में मथनी मारकर मक्खन नहीं निकलता। चिनारों और देवदारों को काटकर ठंडी छांव नहीं मिल सकती। ऋषि-मुनियों ने निर्णय लिया कि जनता को ताकत की पराधीनता से और भय की बीमारी से स्वतंत्र करवाया जाए। पूरी सतर्कता तथा निर्भयता से अपने नगर-वासियों और अन्य जनता की बेड़ी को डूबने से बचाया जाए। 'मैं' का सर काट दिया जाए ताकि मानवता की लताएं हरी हों।

.... और इस युद्ध का नेतृत्व सतीसर का प्रकाश-स्तम्भ नुंद ऋषि ही कर सकता है। लोगों ने निर्णय लिया अपने प्यारे गुरू को मनाने और उसे इज़्ज़त और सम्मान के साथ वापस लाने के लिए हरी पर्वत के चन्द्रवंशी हमज़ा मखदूम और उनकी बहन चक्रेश्वरी के अतिरिक्त नुंद ऋषि के चारों शिष्यों ऐशमुकाम के ऋषि ज़ैना सिंह ज़ैन दीन, बमज़ूह के बम साध बामदीन, तरसर के ऋषि वुतर नसरदीन और वाड़वन के ऋषि लद्दी रैना लतीफ़ दीन को भेजा जाए। ऋषि-मुनियों का यह काफ़िला मरगन से नीचे उतरा। और अपने लक्ष्य को पाने चल पड़ा।

भंडारकोट के पास चन्द्रभागा के किनारे खड़े गोवर्धन सरोवर के मालिक पिता एवं पुत्र शाह फ़रीदुद्दीन और शाह असरारुद्दीन ने उनका स्वागत किया। बहुत आदर के साथ उनको चौगान के मैदान में ले गए। रूहानियत के तवे पर पकी दुखों की रोटी, शूलों के सालन के साथ खाई गई। जनता के लिए दुआ और प्रसन्नता माँगी गई। इसके उपरांत सतीसर की तबाही और लोगों की बर्बादी और लाचारी के बारे में बातचीत की गई।

ऋषि-मुनियों ने बताया, ''उनका प्यारा अपने शरीर पर सतरंगी चोले पहनकर घूमता था पर वे सभी चोले आग की लपटों में जला दिए गए। राक्षसों ने तो नुंद ऋषि को नग्न कर दिया था। वह नंगा नहीं हुआ था। उसके शरीर पर पवित्रता तथा कलंदरी का लिबास था। जो कोई भी नहीं उतार सका। ताकत और भय, सतीसर की पहचान को समाप्त करना चाहते हैं। पर हम यह नहीं होने देंगे। हमें सूली पर टांगा जा सकता है पर सच और अधिकार को झुकाया नहीं जा सकता। हम धर्म और परंपरा के पाबंद नहीं हैं। हम मस्तमौला हैं। हमारे पास फ़कीरी का चोला है। दरवेशी की दौलत है, सूफ़ियों की रमज़ है। और प्रभु इश्क की मस्ती है।

हम मन की माला के मनके में प्रभु का गुणगान करते हैं। हमारे तन और मन उज्जवल हैं। हमारे भीतर मुहब्बत के दीप जलते हैं। हम ''मैं'' से कैसे हार सकते हैं। हम कश्यप ऋषि की संतान है। हम राक्षसों के विरुद्ध युद्ध जीतेंगे। शैतानी ताकतों को समाप्त करके दम लेंगे। इसलिए हम अपने प्यारे गुरू की तलाश में आपकी अमलदारी में आए हैं। हमें हमारा प्रिय ढूँढ़ दीजिए। हम विरह में व्याकुल हैं। हमारा प्यारा मीत ढूँढ़ दीजिए। शायद वह अपने बुजुर्गों के देश काठवार में ही धूनी रमाकर बैठा होगा। हे बुजुर्गों! हमारी मदद कीजिए।

ऋषियों-मुनियों की बात सुनकर शाह फ़रीद और शाह असरार हैरान हो गए और कहने लगे ''भला नुंद ऋषि अपनी दूध-माँ को लेकर यहाँ क्यों आएगा? उसके पास तो सतीसर की बादशाहत है। वह जनता के दिलों पर राज करता है। वह यहाँ क्या लेने आएगा? आप नुंद ऋषि को ढूंढ़ने निशात के उन पत्थरों में जाएँ जहाँ वासुगुप्त को शैवदर्शन का ज्ञान मिला था। क्षीरभवानी के चिनारों, मार्तण्ड के मन्दिरों, शारदापीठ और मटन भवन में तलाशो।

डल, गंगबल, मानसबल, बूलर और कौंसर नाग के पानियों में ढूंढ़ो। वैरीनाग और नागबल के नागों को पूछो। खेतों-खलिहानों और केसर-क्यारियों में जाओ। बुलबुल शाह की कमली और शाह हमदान के कलश को खंगालो। अपनी मातृभाषा और सभ्याचार में ढूँढ़ो। लोक-गीतों, नूरी वाक्यों और श्लोकों में ढूँढ़ो। अपनी प्रकृति में फैल जाओ। दिल की धड़कनों में ढूँढ़ो। आप उनको अपनी साँसों की तपिश में महसूस करो। सेबों और बादामों के बागों में जाओ। चीड़ों और देवदारों के जंगलों में जाओ। फूलों के गुलदस्तों में सूँघो। बर्फ़ ढकी पहाड़ियों की खूबसूरती में ढूँढ़ो। आपका प्रिय गुरू आपको अवश्य मिलेगा।

काठवार के राजाओं की बात सुनकर सभी ऋषि-मुनि वापस पलटे। मरगन के मैदान में सभी जनता उनके स्वागत में खड़ी थी। सच्चाई, मुहब्बत, अमन-शांति, श्रद्धा, मित्रता,

स्वास्थ्य और बचत के दीप जलाए। सम्मान और भावुकता से रजनीगंधा की टहनियाँ पकड़े और उनके बीच सतीसर का शासक नुंद ऋषि रूहानियत का ध्वज उठाए लोगों को संबोधित कर रहा था।

"आप अपनी संस्कृति को भूल चुके थे। आपने नफ़रत और ईर्ष्या का मैला चोला पहन लिया था। आपको लालच, घमण्ड, अहंकार और ईर्ष्या का रोग लग गया था। परमात्मा आपको भूल गया था। आपके ईमान की गर्मी ठंडी पड़ गई थी।"

आपके मन की गंदगी से पूरी धरती पर दुर्गंध फैल गई थी। आपने जो बोया वही काटा। आपने अपने माथे पर तिलक सजाया था पर आपका अंतर्मन साफ़ न था। आपके मन की सफ़ाई के लिए ऐसे रंगसाज़ की आवश्यकता थी जो आपके काले कपड़े सफ़ेद कर देता। आप एकता के गीत भूल गए थे। प्रभु प्रेम का स्मरण छोड़ दिया था। इसलिए आप मुसीबत और अपमान की दलदल में धंस गए। क्या मैंने नहीं कहा था, "अगर आप जीना चाहते हो तो आपको बादलों की गर्जन और बिजली की कड़क को सहना पड़ेगा। भरी दोपहर में फ़ैले अंधकार की चक्की के पाटों में से गुज़रना पड़ेगा। जीवन के पर्वत का बोझ अपने कंधों पर उठाना होगा। हथेलियों पर अंगारों को भी सहना होगा। और एक ही कौर में मानों ज़हर भी निगलना होगा।"

" .... फिर आप कैसे ताकत के भय रूपी पिंजरे में कैद हो गए। आप क्यों अत्याचार के आगे माथे टेक बैठे। पर अब आपके दिलो-दिमाग से अधर्मी पाखंडियों का जादू उतर चुका है। आपने बहुत-सी मुसीबतें देख ली हैं। मौत का ताँडव देख लिया है। आप नरक के चूल्हे में लकड़ी की भांति जले हो। मुश्किलों भरे दिन और भय युक्त रातें बिता चुके हो। अब आप आग का दरिया लाँघ चुके हो। बल और भय के साम्राज्य को रद्द कर चुके हो। इसलिए चलो आगे बढ़ो। "मैं" के विरुद्ध एक हो जाओ और विद्रोह कर दो। अत्याचार के ज्वालामुखी को ठंडा कर दो।

सतीसर को नफ़रत, शत्रुता, पाखंड और घमंड की कुप्रथाओं से मुक्त कराओ। अपनी संस्कृति को बचाओ। अपनी परंपरा को जीवित रखो। जुनून और कट्टरवाद को दफ़न कर दो।

.... और फिर पूरी कौम रूहानियत के ध्वज तले मतो गावरन की ओर चल पड़ी ताकि सतीसर का सारा गंदा पानी खादनयार से बाहिर निकाल दिया जाए।

ooo

पंजाबी कहानी

बंद दरवाज़े का रहस्य

❑ मूल – हरभजन सिंह सागर

❑ अनु० – यशपाल शर्मा 'निर्मल'*

वह घर भी कुछ आम घरों की तरह ही था। जब मैंने पहली बार उसमें प्रवेश किया तो मुझे दम घुटने जैसी कोई बात महसूस नहीं हुई। दूसरी मंज़िल पर सजे हुए बढ़िया हवादार कमरे, खूबसूरत लान, बिजली, पानी का बेहतर प्रबंध, किसी प्रकार की कोई समस्या नहीं। घर के मुख्य द्वार का कुंडा आम तौर पर बंद ही रहता है। परंतु आने-जाने की कोई पाबंदी नहीं। कुंडा खोलो और बाहर चले जाओ, वापसी पर दरवाज़ा खटखटाओ और अंदर आ जाओ। मकान मालिक देखने में चाहे रूखा-सा आदमी लगता है, पर बातचीत में बड़ा अच्छा है। यह चार सदस्यों का परिवार काफी मिलनसार है। मकान मालिक तो सिर्फ छुट्टी के दिन ही लान में कुरसी पर बैठ कर अखबार पढ़ता हुआ नज़र आता है। सप्ताह के बाकी दिन वह सुबह नौ बजे घर से निकलता और रात को देर से लौटता। उसका लड़का दसवीं कक्षा में पढ़ता है। वह सुबह स्कूल चला जाता है और शाम को हाकी खेलने। उसकी लड़की भी सुबह कालेज बस से कालेज चली जाती है और शाम को उसी बस से घर आ जाती है। पीछे रह जाती है सिर्फ मकान मालिक की पत्नी। जो सारा दिन घर के अंदर ही रहती है। कभी-कभी लान में टहलती ऐसे लगती है जैसे फूलों की क्यारी चल-फिर रही हो। सुगंध बिखेरती अति सुंदर स्त्री। हां उस घर में दम घुटने वाली कोई बात नहीं थी।

परंतु एक दिन मैं अपने कमरे की खिड़की से एक कौतुक देख कर हैरान रह गया। मेरे कमरे की खिड़की से मकान का मुख्य दरवाज़ा साफ़-साफ़ दिखाई देता है। जैसे कि मैंने पहले भी उल्लेख किया है कि मकान मालिक की लड़की कालेज में पढ़ती है, जबकि लड़का दसवीं का विद्यार्थी है। स्पष्ट है कि लड़की अपने भाई से उम्र में भी बड़ी है और कद-काठी के लिहाज़ से भी लम्बी है। हुआ यूं कि लड़का युनिफार्म पहन कर स्कूल जाने के लिए तैयार खड़ा था। वह कंधे पर स्कूल बैग लटका कर मुख्य दरवाज़े के पास पहुंचा और बड़ी आसानी से दरवाजे का कुंडा खोल कर सहज ही बाहर निकल गया। थोड़ी देर बाद लड़की भी कालेज जाने के लिए तैयार हुई। कालेज बस का हार्न सुन कर मुख्य दरवाज़े के पास पहुंची। दरवाज़े पर लगे कुंडे की तरफ देखा, फिर लाचारी से पास खडी मां को देखा। मां ने दरवाज़े की ओर न देखते हुए अपने पति की तरफ देखा। पति ने दरवाज़ा खोलने से पहले पूछा :-

''कालेज बस आ गई है या नहीं।''

''आ गई है पापा।''

---

* चमन निवास, गढ़ी-विश्ना, ज्योडियां अखनूर-181202

लड़की की आवाज़ सुन कर उसने सहज ही दरवाज़ा खोल दिया और लड़की बाहर चली गई। मेरे लिए यह सारी रहस्यमयी घटना एक अजब नज़ारा था। लड़का जो अपनी बहन से उम्र में भी छोटा और कद-काठी में भी छोटा दरवाज़ा आसानी से खोल कर बाहर चला जाता है, पर लड़की या उसकी मां से दरवाज़ा नहीं खुलता। यह तो वास्तव में एक रहस्यमयी घटना ही थी।

मैं कई दिनों तक यह नज़ारा बड़ी उत्सुकता के साथ देखता रहा और इस विषय में सोचता रहा। परंतु मुझे कुछ भी समझ नहीं आया। एक बात मैं पहले भी कह चुका हूँ और अब फिर दोहरा रहा हूं कि मकान-मालिक की पत्नी बहुत सुंदर है। जब वह बन-संवर कर बैठक में आती है तो ऐसे लगता है जैसे धूप की पहली किरण धरती पर पड़ी हो। जब वह रसोई में जाती है तो सारे बर्तन जल-तरंग की तरह बज उठते हैं। जैसे वह कोई तिलिस्म जानती हो। फिर मुझे यह जानकर और भी आश्चर्य हुआ कि उसका दिन-भर का कुल सफर रसोईघर से लेकर बैठक और बैठक से लेकर रसोई तक ही सीमित रहता है। कहीं बाहर जाने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। क्योंकि मुख्य दरवाज़े के कुंडे तक पहुंच पाना उसके बस की बात नहीं हैं। औरत चाहे सुंदर है पर इस घटना के साथ उसकी सुंदरता का क्या संबंध हो सकता है?

एक दिन शाम को लड़का हाकी उठा कर दरवाज़े के पास पहुंचा और हाकी के साथ कुंडा खोल कर बाहर चला गया। बाद में लड़की भी तैयार होकर दरवाज़े के पास पहुंची। दरवाज़ा खोलने की कोशिश की परंतु उसके हाथ कुंडे की ओर बढ़ते ही कांपने लगे। फिर उसने कपड़े धोने वाले डंडे से उसे खोलने का प्रयास किया परंतु असफलता ही हाथ लगी। निराश होकर वापिस मुढ़ने लगी कि उसकी मां ने देख लिया और गुस्से से कहा– ''तुम मर्द तो नहीं हो कि कुंडा खोल लोगी। यह तो मेरे से भी कभी नहीं खुला। भला तूं इस को कैसे खोल सकेगी। चल बैठ अंदर।''

यह रहस्य है इस घर का। घर चाहे बहुत बड़ा है पर मैंने महसूस किया जैसे धीरे-धीरे मेरी सांस घुट रही हो। मुझे हर तरफ हल्का-हल्का अंधेरा पसरता हुआ लगता। मैं ऐसे माहौल से तंग आ गया। आखिर एक दिन मैंने मकान मालिक के साथ इस दम घोटू वातावरण की बात की।

''नहीं-नहीं ऐसी तो कोई बात नहीं। हमारा मकान काफ़ी खुली जगह पर बना है। यहां पर अंधेरे या दम घुटने वाली कोई बात ही नहीं है। शायद आपको भ्रम हुआ है।''

अजीब बात है कि मकान मालिक इस घटना को केवल साधारण-सी बात कह कर टाल रहा है। जबकि समस्या बहुत गंभीर है। सच पूछो तो कुंडे में मैंने भी कोई तकनीकी खराबी नहीं देखी। आते-जाते बड़ी आसानी से दरवाज़ा खुल जाता है। परंतु हैरानी की बात यह है कि यह इस घर की औरतों से क्यों नहीं खुलता। मकान मालिक की पत्नी को भी इस बात की कोई जानकारी नहीं। एक दिन वह अपनी बैठक के दरवाज़े के पास खड़ी मुझे बता रही थी– ''यहां तो किसी प्रकार का अंधेरा या दम-घोटू वातावरण नहीं है। खुली रोशनी है, ताजा हवा है'' उस की बात चाहे संतोषजनक नहीं थी, पर उस पर किंतु-परंतु करना मैंने सुंदरता का अपमान

करने के समान समझा। मैने 'सत्य वचन' कह कर चुप रहना ही बेहतर समझा। वैसे भी उस औरत को देख कर अंधेरा या दम घुटने का अहसास तुरंत ही रफू-चक्कर हो जाता।

''हां अंकल! यहां घुटन वाला वातावरण जरूर लगता है।'' उसकी बेटी जो बैठक के अंदर हमारी बातें सुन रही थी, झट बाहर आ गई और कहने लगी-''भला मां को घुटन का अहसास कैसे हो सकता है? वह तो रसोई और बैठक के दायरे से कभी बाहर नहीं निकली। मैं जब बस से कालेज जाती हूँ या वापस घर आती हूँ तो मुझे बाहर की रोशनी और ताज़ा हवा का अंदाज़ा होता है। इसी प्रकार मुझे अपने घर के दम घोटू वातावरण की जानकारी हुई। अंकल वास्तव में हमारे घर के मुख्य दरवाज़े पर हर वक़्त लगा रहने वाला कुंडा खुली रोशनी और ताजा हवा को आंगन में आने ही नहीं देता। इसलिए घुटन तो होगी ही।''

मां ने लड़की को झिड़का परंतु लड़की मेरी बात की पुष्टी करके अंदर चली गई। चलो शुक्र है किसी ने तो मेरी बात की हामी भरी। फिर छुट्टी वाले दिन मैंने देखा कि मकान मालिक मोटे शीशे वाली ऐनक लगा कर अखबार पढ़ रहा था। मैं हैरान-परेशान होकर सोचने लगा कि घर के अंदर फैली धुंध की पतली-सी चादर के नीचे वह आदमी अखबार के बारीक शब्द कैसे पढ़ रहा होगा?-बेशक्क उसकी आंखों पर मोटे शीशों वाली ऐनक लगी हुई है। कुछ दिनों से मैंने भी लिखने-पढ़ने का काम छोड़ दिया है। पढ़ाई-लिखाई के काम के लिए भी तो स्वच्छ वातावरण चाहिए। जब मैंने पूछा तो वह बहुत ही रूखे ढंग से बोला-हां, हां! शब्द दिखाई कैसे देंगे? मैं अंधा जो हूं ?

''नहीं-नहीं जनाब। ऐसी कोई बात नहीं। पर...पर...।'' मैं कुछ हकला गया।

''तुम देख नहीं रहे कि घर की खुली रोशनी से अखबार के शब्द भी प्रकाशमान हो गए हैं।''

''पर जनाब! यह रोशनी तो सिर्फ आप तक ही सीमित है। आकाश में चमक रहे तारों की टिमटिमाती रोशनी की तरह।''

''सूरज जैसी रोशनी तो मुझे भी किसी और घर में नहीं दिखाई दी। जिन घरों में होगी वहां पर बहू-बेटियों के शरीर कपड़ों में भी नंगे ही दिखाई देते होंगे।''

''इसीलिए आप सूरज की रोशनी से डरते हो''

''चुप!''

वह खीज कर बोला-''घरों के अंदर धुंध की तरह अंधेरा ही अच्छा होता है। जो नंगेपन को ढांपता है। शर्म-हया भी कोई चीज है कि नहीं?-सुनो बाबू जी। अगर आपको इस घर में धुंध और अंधेरा ही दिखाई देता है तो मकान बदल लो और.... अपनी आंखों के साथ-साथ दिमाग का भी इलाज करवा लो-समझे।''

यह तो सीधी धमकी थी। जिसने मुझे हिला कर रख दिया। मेरे हिल जाने का कारण मेरी पत्नी थी, जो कि एक सरकारी कालेज में लैक्चरार है। कालेज में छुट्टियां पढ़ने वाली

थीं और छुट्टियों में उसने मेरे पास आना था। दूसरा इस शहर में ढंग के मकान मिलते ही नहीं। बड़ी मुश्किल से यह मकान मिला है। यदि इस आदमी ने सचमुच मुझसे मकान खाली करवा लिया तो मेरी बुरी हालत होगी। हालत तो मेरी वैसे भी बुरी हो गई है, जब से मैंने इस मकान के मुख्य दरवाज़े का रहस्य देखा है।–शायद मेरी पत्नी इस प्रकार की स्थितियों से समझौता ना कर सके। उस हालत में भी मुझे मकान बदलना पड़ेगा। इसलिए दोनों ही स्थितियों में मेरी हालत के अफसोसजनक सिद्ध होने की संभावना थी। तभी उसकी धमकी के जवाब में चुप रहने के सिवा मेरे पास कोई और चारा नहीं था।

मकान मालिक की धमकी को लेकर एक नए वहम ने मुझे परेशान करना शुरू कर दिया। मुझे यह शक अंदर-ही-अंदर घुन की तरह खाने लगा कि कहीं वह मकान खाली करने का हुक्मनामा ना जारी कर दे। मैं यह शक किसी भी हालत में दूर करना चाहता था। अगले रविवार को जब वह आंगन में बैठ कर अखबार पढ़ रहा था तो मैं भी उसके पास पड़ी एक खाली कुरसी पर बैठ गया। अखबार पर मारगरेट थेचर का फोटो देख कर मैंने बात शुरू की ''आपका इस औरत के बारे में क्या ख़्याल है।'' ''यह औरत ग्रेट ब्रिटेन की ग्रेट प्राईम मिनिस्टर है।''

''वाह! जनाब वाह! आपने इस औरत की सही व्याख्या की।'' मैंने देखा कि अपनी शान में मेरे प्रशंसा-भरे शब्द सुन कर उसके चेहरे पर एक चमक-सी पैदा हो गई। भाव यह कि मुझ पर नाराज नहीं और वह मुझे मकान खाली करने के लिए नहीं कहेगा। इसलिए मैंने इस प्रशंसा रूपी मिठास में एक कड़वी पुड़िया भी मिला दी-''जनाब! मैंने इस औरत के बारे में पढ़ा है कि यह खुली रोशनी और ताज़ा हवा में रहना पसंद करती है। बात का कड़वा हिस्सा सुन कर उसके माथे पर बल पड़ गए। परंतु मेरा उद्देश्य उसे नाराज़ करना नहीं था। इसलिए मैं झट वहां से उठ कर अपने कमरे में चला गया ताकि कहीं कोई नयी मुसीबत न खड़ी हो जाए।''

परंतु आश्चर्य की बात हुई कि मेरी पत्नी को यह घर पसंद आ गया। उसने आते ही कहा-''वाह! बहुत बढ़िया सेट है हवादार कमरे-रोशनी-ही-रोशनी। हवा और रोशनी इंसान को ईश्वर की ओर से प्रदान किये गये बहुमूल्य उपहार हैं।''

मैंने ईश्वर का धन्यवाद किया कि उसे कुछ भी धुंधला और दम घोटू नहीं लगा। मैंने इस स्थिति से लाभ उठाना चाहा और दरवाज़े के रहस्य से उसका ध्यान हटाने के लिए उसे अपने साथ ही व्यस्त कर लिया। दिन को मैं आफिस चला जाता और वह घर बैठे-बैठे मेरा इंतज़ार करती रहती। क्योंकि यह शहर उसके लिए नया है, कहीं भी जाना होता तो वह मेरे साथ ही जाती। इस प्रकार वह अकेली बाहर नहीं निकलती। शाम को हम दोनों कभी बाजार की तरफ चल पड़ते कभी फिल्म देखने चले जाते तो कभी किसी दोस्त के पास। इस प्रकार मेरी कोशिश हमेशां यही रहती कि मुख्य दरवाजे को मैं स्वयं ही खोलूं। ताकि वह उस अजीबोगरीब कुंडे से दूर ही रहे।

कुछ दिनों तक तो मैं इस प्रयास में सफल रहा। पर एक दिन मैंने महसूस किया कि शायद वह भी इस घुटन का शिकार हो गई है। वह कई बार खिड़की से लगातार कुंडे की तरफ देखती रहती। और फिर जल्दी-जल्दी सांसें लेने लगती। परंतु यह मेरा वहम भी हो सकता

है-शायद ऐसी कोई बात न हो। क्योंकि उसने इस विषय में मुझ से कभी कोई बात नहीं की। परंतु एक दिन मेरा शक सही निकला। जब मैंने देखा कि वह उस 'अलौकिक' कुंडे का करिश्मा बिना किसी परदे के देख रही थी। मुझे पैरों तले से जमीन खिसकती महसूस हुई।

उसने क्या देखा ?-बस वही पुरानी घटना। मकान मालिक का लड़का सहज ही दरवाज़ा खोल कर बाहर चला जाता है। परंतु वही दरवाज़ा उसकी बड़ी बहन से नहीं खुला। मैंने देखा मेरी पत्नी यह रहस्य देखकर बड़ी हैरान हुई और बहुत देर तक सोचती रही। दूसरी तरफ मैं भी सोच रहा था कि इस रहस्य से परेशान होकर वह मुझे जल्दी मकान बदलने के लिए कहेगी। परंतु शुक्र है भगवान का ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। मुझे बताए बिना ही वह झट से तैयार हुई और पर्स उठा कर नीचे उतर गई। दरवाज़े के पास मकान मालिक खड़ा था।

''तुझे पता होना चाहिये कि घर की दहलीज पार करने से पहले दरवाज़े का कुंडा खोलना पड़ता है, जो तुझ से नहीं खुलेगा।'' उसके माथे पर तेवर और आंखों में गुस्सा था।-''क्योंकि यह दरवाज़ा मेरे घर का है और तुम एक औरत हो।''

''आप कुंडे की बात कर रहे हो?'' मेरी पत्नी का लहज़ा कुछ तीखा था। ''आजकल औरतें जहाज चला रही हैं। आप किस दुनियां में रहते हो?''

संक्षेप में बात यह कि इन दोनों की लड़ाई मुझे ले डूबेगी। भला क्या फर्क पड़ता है कि दरवाज़ा औरतों से खुलता है या नहीं। मर्दों की सहायता से तो खुल ही जाता है। खैर अब जान सूली पर चढ़ ही गई है तो देखते चलो आगे क्या होता है। आगे हुआ यह कि मेरी पत्नी ने कुंडे की तरफ हाथ बढ़ाया। परंतु उसे उसकी पहुंच से बाहर जाते देख कर मकान मालिक के चेहरे पर ज़हरीली मुस्कान फैल गई। फिर देखते-ही-देखते मेरी पत्नी ने दायें पैर की चप्पल उतार कर जोर से कुंडे पर दे मारी और 'छन्न' की आवाज़ से कुंडा खुल गया। उसने चप्पल पहनी और दरवाज़ा खोल दिया। फिर मकान मालिक की तरफ व्यंग्यात्मक दृष्टि से देखते हुए बोली-''रोशनी और खुली हवा के लिए दरवाज़े और खिड़कियां खुली रखनी चाहिए। क्योंकि इन पर सबका बराबर का अधिकार है।''

वह बाहर चली गई। पीछे मकान-मालिक की पत्नी और बेटी हैरानी के साथ दरवाज़े की तरफ टकटकी लगाकर देखती रही। मकान-मालिक ने विवश होकर खुले दरवाज़े की तरफ देखा और चुपचाप अपने कमरे की ओर चला गया।

घर का मुख्य दरवाज़ा अभी भी खुला था। जिससे द्वारा खुली रोशनी और ताज़ी हवा घर के आंगन में आ रही थी।

०००

पंजाबी कहानियों का विवेचन

❑ अनुराधा

आदिकाल से ही कहानी मनुष्य के अंग-संग रही है। मानवता के ऐतिहासिक विकास के साथ-साथ कहानी का विकास हुआ है। रियासती पंजाबी कहानी भी धीरे-धीरे समूचे पंजाबी कहानी जगत में अपना स्थाना बनाती जा रही है। आधुनिक कहानी का विकास समाज की विशेष प्रकार की राजनैतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों से हुआ है। रियासत जम्मू-कश्मीर में कई कहानीकार पंजाबी कहानी रच रहे हैं। इनमें से कुछ एक कहानीकार ऐसे हैं जिन्होंने अपनी गल्प-योग्यता के आधार पर अपनी एक विशेष पहचान बनाई है। इनमें से प्रमुख है :- खालिद हुसैन, प्रो. प्रेम सिंह तथा हरभजन सिंह सागर। यदि इन्हें रियासती पंजाबी कहानी के आधार स्तम्भ कह दिया जाए तो शायद कोई अतिकथनी नहीं होगी। इन कहानीकारों की जिन कहानियों का मूल्यांकन किया गया है वे इस प्रकार है :-

सतीसर का प्रकाश-स्तंभ – मूल० खालिद हुसैन

तुंबकनाड़ी – मूल० प्रो. प्रेम सिंह

बंद दरवाज़े का रहस्य – मूल० हरभजन सिंह सागर

सतीसर का प्रकाश-स्तंभ

यह खालिद हुसैन की बहुचर्चित कहानी है। इस कहानी में प्रतीकात्मक रूप में कश्मीर में फैली हिंसा और कश्मीरी विस्थापितों के दर्द की चर्चा की गई है। कहानी कश्मीर का सजीव चित्र पेश करती है। कहानीकार विस्थापितों को लेकर चिंतातुर है। वह चाहता है कि कश्मीर में पहले जैसा सुख और चैन हो जाए। हिन्दू मिथ को आधार बनाकर रची गई यह कहानी साम्प्रदायिकता पर करारी चोट तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात करती है। कश्मीर में अनेक ऋषि, मुनि, सन्त, सूफी, पीर और फ़कीर हुए। इनमें से नुंद ऋषि भी एक थे। उन्होंने जात-पात के भेदभाव को त्याग कर एकेश्वरवाद की बात कही। परन्तु लोगों ने अधर्मी पाखंडियों के चक्करों में फंस कर खून की होली खेली, ''बारूद के खेल में झोंपड़ियां जलीं। मंदिर और मस्जिद तथा दरगाहें जलीं। सन्त-फकीरों के डेरे जले। और एक दिन बारूद के इस खेल में नुंद ऋषि का मज़ार भी जल गया।'' लालच, घमंड, अहंकार और ईर्ष्या का रोग फैल चुका था। अन्त में जब सब कुछ खत्म हो गया तो लोग फिर से नुंद ऋषि के पास गए और उसने लोगों को इन्सानियत का संदेश दिया।

प्रेम नगर, मीरा साहिब आर. एस. पुरा जम्मू

यह कहानी कश्मीरी संस्कृति के दर्शन करवाती है जब लेखक कहता है, ''आप नुंद ऋषि को ढूंढ़ते उन पत्थरों में जाएं जहां वासुगुप्त को शिव विचारधारा का ज्ञान मिला था। क्षीर भवानी के चिनारों और मार्तण्ड के पानी में ढूंढ़ो। मटन भवन के शारदा-पीठ में ढूंढ़ो, वैरीनाग और नागबल के नागों को पूछो।''

खालिद हुसैन काव्यात्मक भाषा का प्रयोग करते है। उसने प्रतीक बड़े ही सटीक हैं। कहानी का शीर्षक भी सार्थक है।

तुंबकनाड़ी

प्रो. प्रेम सिंह द्वारा रचित कहानी 'तुंबकनाड़ी' कश्मीरी परिवेश से सम्बन्धित कहानी है। यह कहानी एक ओर जहां कश्मीर में व्याप्त हिंसा, आतंकवाद और मानवीय कत्लेआम की बात करती है तो वहीं दूसरी ओर कश्मीरी विस्थापितों के मन में भरी देश-भक्ति और प्यार की भावनाओं को भी व्यक्त करती है। वास्तव में तुंबकनाड़ी मांगलय का प्रतीक है। जब भी कोई मंगल कार्य होता है तो कश्मीर में तुंबकनाड़ी बजाई जाती है। त्रासदी यह है कि वतन में रहने वाले लोग तुंबकनाड़ी से रिश्ता तोड़ चुके हैं परन्तु विदेशों में बसने वाले कश्मीरी विस्थापित आज भी तुंबकनाड़ी के लिए लालायित हैं। इसी प्रसंग में शकुंतला सिमरन से कहती है-''सिमरन मैं तेरा एहसास कभी नहीं भूलूंगी यदि तू वापिस आते हुए दो तुंबकनाड़ियां ले आए तो?''

वास्तव में विस्थापितों के मन में छूट चुके देश की याद कूट-कूट कर भरी हुई है। शकुंतला अपना प्राचीन साज़ बजाकर विदेश में भी अपने देश-सा आनन्द लेना चाहती है। विस्थापित निःसंदेह आर्थिक तौर पर तो संतुष्ट हो गए हैं किन्तु मानसिक तृप्ति दूर-दूर तक नहीं। ये लोग अपनी विरासत और सगे-सम्बन्धियों के साथ रहने के लिए लालायित हैं। ''वीर जी, आप फिर भी भाग्यशाली हो। ऐसे में भी अपने संगी-साथियों के साथ अपने वतन में रह रहे हो।''

लेखक ने फ्लैश-बैक विधि के द्वारा शांत और सुन्दर कश्मीर का बड़ा ही मनमोहक चित्र खींचा है। कहानी के अन्त में अमीन का अब्बू, जो कि मुसलमान है, विदेश में सिमरन के हाथ शकुंतला को तुंबकनाड़ियां भेजने के लिए तैयार हो जाता है। जातिवाद की दीवारों पर क़रारी चोट करता हुआ वह कहता है, ''क्या मैं इतना गया-गुज़रा हूं कि अपनी परदेसन बेटी को छोटी-सी सौगात भी नहीं भेज सकता।''

कहानी का शीर्षक ही पाठक को उत्सुक कर देता है। कहानी जिस बिन्दु से आरम्भ होती है अन्त में वहीं सिमट जाती है। कहानी में कुछ अंग्रेज़ी शब्द प्रयोग किए गए हैं जैसे- टैंशन, पोस्टपोन, बैलड़न, पर्सनल, कैज़ुएल्टीज़ आदि। ये शब्द कहानी को कमज़ोर नहीं करते अपितु सरकारी दफ़्तर का एक चित्र साकार कर देते हैं।

बंद दरवाजे का रहस्य

हरभजन सिंह सागर द्वारा रचित कहानी 'बंद दरवाज़े का रहस्य' एक रोचक कहानी है। यह कहानी एक ओर जहां पुरुष की संकीर्ण मानसिकता के दर्शन करवाती है, वहीं दूसरी ओर स्त्रियों में आई चेतना की तरफ संकेत भी करती है। कहानी में 'बंद दरवाज़ा' औरत के ऊपर लगे अंकुश का प्रतीक है। यह दरवाज़ा केवल पुरुषों के लिए खुलता है, स्त्री पात्रों के लिए सदैव बंद रहता है। पुरुष जब चाहे दरवाज़ा खोल कर बाहर जा सकता है परन्तु स्त्री नहीं। लेखक ने इस कहानी द्वारा यह बताने की कोशिश की है कि अब औरत बेचारी, अबला या निःसहाय नहीं। वह मर्द के पैर की जूती भी नहीं। वह मर्द के कंधे-से-कंधे मिलाकर चल रही है। मांगने पर ना मिले तो वह लड़कर अपना अधिकार प्राप्त कर लेती है। जैसे कि इस कहानी में जब औरत का हाथ बंद दरवाज़े के कुंडे तक नहीं पहुँचता तो वह चप्पल फेंक कर कुंडा खोल लेती है और अपने ऊपर लगे हुए दरवाज़े रूपी अंकुश को तोड़ कर गुलामी का अन्त करती है। कहानी के अन्त में नायिका औरत-मर्द की बराबरी की बात करती हुई कहती है, ''रोशनी और खुली हवा के लिए दरवाज़े और खिड़कियां खुली रखनी चाहिए। क्योंकि इन पर सबका बराबर का अधिकार है।'' यहां रोशनी और खुली हवा आज़ादी का प्रतीक है।

कहानीकार की विशेषता यह है कि उसने स्वयं पुरुष होते हुए एक औरत की भावनाओं का बड़ा यथार्थमयी चित्रण किया है। कहानी पढ़ते हुए आरम्भ से अन्त तक पाठक की उत्सुकता बनी रहती है। सौन्दर्य वर्णन के लिए कहानीकार कई बार काव्यात्मक भाषा का प्रयोग करता है जैसे-''कभी-कभी लान में टहलती ऐसे लगती है जैसे फूलों की क्यारी, चल फिर रही हो। सुगंध बिखेरती अति सुंदर स्त्री।''

इन तीनों कहानियों का अध्ययन किया जाए तो पता चलता है कि 'जलती बर्फ का सेक' तथा 'तुंबकनाड़ी' का विषय काफ़ी मिलता-जुलता है। ये कहानियां कश्मीर परिवेश से सम्बन्धित हैं। कहानीकार कश्मीरी विस्थापितों की व्यथा सुनाते हुए प्राचीन कश्मीर को याद करते हैं। कहानियों का मुख्य उद्देश्य कश्मीर को फिर से स्वर्ग बनाना है। कहानीकार हिन्दुओं तथा मुसलमानों में आपसी सांझ पैदा करना चाहते हैं। कश्मीर से सम्बन्धित होने के कारण दोनों कहानीयां आंचलिक रंगत लिए हैं।

जबकि 'बंद दरवाज़े का रहस्य' नामक कहानी औरत में आई चेतना की कहानी है। अब औरत मर्द के पांव की जूती नहीं रही। आज वह अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाती है और सफल भी होती है।

अतः तीनों कहानियां सफल हैं।

उर्दू कहानी

टीस दर्द की

❑ मूल – डॉ० बृज प्रेमी
❑ अनु० – अज़रा चौधरी

जब कभी मैं यादों की वादियों में विचरने लगता हूँ। तो अचानक ही तुम्हारा चेहरा आँखों के सामने घूमने लगता है जिसे एक अंधे मुसाफिर की मानिंद टटोलते हुए छूने का यत्न करता हूँ पर तुम्हारे अस्तित्व का एहसास मुझे डस जाता है। तुम्हारे कितने ही रूप, कितने अंदाज़ जीवित हो उठते हैं–कभी धूल से धूसरित चेहरा तो कभी किरणों से झिलमिलाती तुम्हारी रूह–कभी उद्दंडता की कालिमा, तो कभी महानता की उज्जवलता–तब मेरी स्मृतियों के तार टूट जाते हैं और मेरी देह जलकर राख हो जाती है। शशि से तुम्हारी घनिष्ठता–मैं हैरान हूँ, कैसे तुम उसके झाँसे में आ गई? आज तक यह मेरे लिए एक अनबूझ पहेली है। शशि की अपेक्षा मैं जब भी तुम्हारे सामने आया तो यह बात तय थी कि तुम मुझ पर मर मिटोगी। शशि प्रौढ़ावस्था में था और मैं एक नौजवान। उसकी कनपटियों पर चमकती चाँदी उसे रद्द करने के लिए काफी थी मगर तुमने उसे चूम लिया। उसकी आँखों के गहरे घेरों को सीने से लगा लिया। मेरे होठों तथा गालों की लाली, मेरे शायराना अंदाज़ को आँख उठा कर भी न देखा। आप दोनों का प्रणय-प्रसंग मेरे लिए अमीर-हमज़ा, लैला-मजनूं की दास्तान बन गया। देखते-ही-देखते तुमने अपना सर्वस्व उसको सौंप दिया।

बहुत देर तक तो मैं इसे तुम्हारी जवानी की भूल समझता रहा। आप दोनों का मिलन? यह किसी तरह से भी उपयुक्त न था। मेरी मौजूदगी को अनदेखा कर, अपनी सुरमई आँखों से जब तुम शशि को निहारती, उनमें मुझे खय्याम की रुबाइयों की मस्ती नज़र आती। मुझे तुम्हारी देह सुलगती हुई प्रतीत होती, तुम्हारे अंगों की कसमसाहट चिनार के पत्तों की सरसराहट सी जान पड़ती।–और शशि तुम्हारे गदराए जिस्म को ललचाई नज़रों से देखते हुए गले को तर करने की कोशिश में बार-बार थूक निगलता। जिसे देख मुझे हंसी आ जाती।

शशि का दावा था कि तुमने धार्मिक बंधनों को त्याग दिया है और तुम हैगल और मार्क्स के दर्शन को अपना चुकी हो। मैं यह बात कैसे मान लेता–एक कट्टरपंथी परिवार की बेटी अपने पारंपरिक संस्कारों को कैसे त्याग सकती है?–तुम तो हर बात धर्म की परिधि में रहकर करती थी। तुम्हारे हाव-भाव, जिंदगी जीने के सलीके से रिवायत झलकती थी। इसलिए शशि की बातों पर मैंने तनिक भी ध्यान न दिया।–सोचा यूँ ही बकता है। इसी बात पर कई बार उससे कहा-सुनी भी हो गई।

मित्र मंडली में बैठ वह अक्सर कहता कि उसका यह प्रेम-संबंध एक बहुत बड़ा राजनीतिक कारनामा है जिस की महिला-मंडली में काफी चर्चा थी।

एक दिन शशि ने बताया कि तुम दुल्हन बन रही हो। इस बात का तनिक भी प्रभाव उसके चेहरे पर नहीं दिखता था। एक अनलिखे कागज़ की तरह वह कोरा था, बिल्कुल भावहीन मेरा दिल धक से रह गया।

मुझे याद है उस घटना के चंद दिनों बाद जब तुम रोशनियों से नहाई रात में दुल्हन के रूप में सजी, मुस्कुराहटों के गुलाब बिखेरती, धीमे-धीमे पग धरती, अप्सरा-सी, सजे हुए दीवान की ओर बढ़ रही थी। तुम्हारी हर नज़र कहर ढा रही थी और तुम्हारी वो लचक-तोबा। तोबा। शशि अपलक तुम्हें देख रहा था।-और मैं सिगरेट के धुएं में कहीं उड़ जाना चाहता था। दिल में भावनाओं का तूफान था। अब तो तुम्हारा सर्वस्व तुम्हारे सुहाग का था। तुम्हारी आँखों में न तो कहीं प्रायश्चित के आंसू थे और न ही माथे पर मलाल के साए। दुनिया-भर की खुशियां तुम्हारे आँचल में थीं। बरात आई, बाजे-गाजे बजे, फुलझड़ियां-आतिशबाजी छोड़ी गई, रस्में निभाई गईं और तुम अपने पति की संगिनी बन विदा हो गई।

मेंहदी का रंग अभी छूटा भी न था कि तुम लौट आई, मगर क्यों?-मैं यह रहस्य कभी न जान पाया। तुम्हारे साथ ऐसा क्यों हुआ? तुम्हारे पति का क्या हुआ? क्या तुमने तलाक ले ली? यह मुझे मालूम नहीं। शशि से तुम्हारे संबंध ज्यों-के-त्यों बने रहे। तुमने एक बच्ची को जन्म दिया, पर बच्ची का पिता कौन? तुम्हारे पति ने इससे इंकार किया था।

फिर शशि....?

या....?

यह तो आज भी एक राज है।

लेकिन जब मैं तुम्हारा कुशल-क्षेम जानने हास्पिटल पहुँचा। तुम्हारा वो रूप-लावण्य फीका पड़ चुका था। तुम्हारी आँखों में हसरतों की बुझी चिंगारियां सुलग रही थीं। जिसे देख मेरा दिल भर आया। मैंने तुम्हारा माथा चूम लिया। तुम देखती रह गई, एक फीकी-सी मुस्कान तुम्हारे होठों पर फैल गई। तुम्हारी आँखें छलक गई। ये गम के आंसू थे या खुशी के? मैंने समझा शायद मेरी तपस्या रंग ले आई और ये आंसू पछतावे के हैं। अब बहार मेरा इंतज़ार कर रही है, लेकिन यह मेरा भ्रम था।

समय की नदी बहती रही। शशि और तुम्हारे संबंध ने नया गुल खिलाया। पता चला कि शशि से तुमने शादी कर ली और तुम माँ बनने वाली हो-शशि के बच्चे की मां। सुनकर मैं सुन्न-सा हो गया।

शशि पहले से ही विवाहित था-चार बच्चों का बाप एक भरे-पूरे परिवार का मालिक। उस पर धर्म की लक्ष्मण-रेखा। इन सब को तुमने कैसे भुला दिया। मैंने सिर थाम लिया लेकिन किस्सा अब सच्चाई बन चुका था।

तुम गज़ेटिड आफिसर बन गई और शशि एक जाना-माना वकील। तुम पति-पत्नी की तरह रहने लगे। मैं हैरान था कि तंग नज़र समाज ने इस बेमेल, बेजोड़ विवाह को कैसे स्वीकृति दे दी जो हर छोटी-से-छोटी, सीधी-सरल बात का भी बतंगड़ बना देता है। न जलसे-जलूस ही निकले, न कोई हो-हल्ला हुआ। हाँ कुछ बुजुर्ग लोगों ने अपना रोष प्रकट ज़रूर किया। "खुदा की मार ऐसे घर पर जहाँ इतना बड़ा पाप हुआ।" और चंद औरतों ने नल पर पानी भरते हुए कानाफूसियां भी की थीं।

शशि ने इस का मुकाबला कैसे किया, यह कहा नहीं जा सकता। हाँ तुमने एक दिन गली की नुक्कड़ पर खड़े हो लोगों से कहा था, 'सुनो लोगो! यह आदमी जिसे तुम संदिग्ध नज़रों से देख रहे हो, तुम्हारा दामाद है। इसने तुम्हारी बेटी से शादी की है। अगर किसी माई के लाल ने इसे कुछ कहने की जुर्रत की, तो मैं उसका मुँह नोच लूंगी।'

उसके बाद मानो सब को चुप्पी लग गई। सारी सरगोशियां सो गईं, फिर कभी किसी ने शशि से कुछ कहने की हिम्मत नहीं की। -तुम्हारे इस उग्र रूप को देख मैं भौचक्का रह गया। फिर तुम दोनों प्रेम के झूले झूलते रहे।

लेकिन शशि फिर प्रकट हुआ।

इस बार उसके होंठों पर अवहेलना थी-घृणा थी-कि तुम बेशर्म हो, विलासिनी हो, व्यभिचारिणी हो। हर ऐरे-गैरे को अपना-आप सौंपने को तैयार रहती हो। तुम कलंकित हो, तुम्हारी आत्मा मर चुकी है। लेकिन जाँचने पर मैंने यह सब निराधार पाया। तुम्हें पूर्णतया बेदोष पाया।

शशि अब राजनीति में सक्रिय हो चुका था। राजनीतिक व्यस्तताओं का प्रभाव उसकी प्रेक्टिस पर भी पड़ा था। तुम ने उसके लिए क्या नहीं किया। बीमारी की हालत में शशि को जेल से हॉस्पिटल पहुँचाया गया। उसका आप्रेशन हुआ तो मैंने तुम्हें एक माँ की प्रतिमूर्ति पाया। तुमने अपनी कितनी ही रातों की नींद उस पर न्योछावर कर दी। तुम्हारे कितने ही दिन आंसुओं में बह गए। कितनी दरगाहों पर जाकर तुमने दुआयें कीं, मन्नतें मांगी। लेकिन जब शशि स्वस्थ हुआ तो तुमने जश्न मनाया, भिखारियों में दिल खोलकर खैरात बांटी, दरगाहों पर चिरागां किया, मन्नतें चढ़ाईं। तन-मन-धन से शशि की हर छोटी-बड़ी इच्छा को पूरा किया। उसके बच्चों पर जान निछावर की। यह सब देख मैं नतमस्तक हो गया।

मगर तुम्हारा प्रेमी, तुम्हारा गुरू तुमसे दूर, बहुत दूर होता गया।

तुम दो बच्चों की मां थी। शशि पिता होने के नाते उनसे प्यार तो करता मगर ज्यों ही तुम से किसी बात पर ठनती तो उन पर बरस पड़ता। कई बार उसकी बातों में सच्चाई प्रतीत होती और मुझे तुमसे घृणा होने लगती। मैं सोचता शायद तुम सच में चरित्रहीन हो, व्यभिचारिणी हो।

सात साल व्यतीत हो गए।

मैंने तुम्हें एक बार भी न देखा। यद्यपि अनेकों बार तुमसे मिलने की, बातें करने की उत्कट इच्छा होती। मेरा मन मचल उठता। मैं मन मसोस कर रह जाता। तुम कहाँ थी? लोगों से मैंने तुम्हारे त्याग तथा बलिदान के अनगिनत किस्से सुने। कई बार शशि से मुलाकात हुई, उसकी जुबान पर तो क़ेवल तुम्हारी शिकायतें थीं। कभी वह प्यार के पलों को याद करता और कभी तुम्हारे प्रति उसकी वितृष्णा बातों से साफ़ झलकती। मैं विमूढ-सा उसे ताकता रहा।

शशि अब उम्र के उस पड़ाव में था, जहाँ बुढ़ापे के तपते रेगिस्तान में केवल काले साए ही नजर आते हैं। अब न तो कामनाओं के दिन थे, न ही तृप्ति की रातें। आँखों की ज्योति मद्धम पड़ चुकी थी, श्रवण शक्ति कमज़ोर हो रही थी। जिम्मेदारियों के साँप अपना फन फैलाए उसकी ओर लपक रहे थे। उसकी पहली पत्नी के बच्चे जवान हो चुके थे। समाज को अब यह संबंध मान्य न था।

शशि और तुम्हारा संबंध टूट गया।

तुम पर क्या गुज़री? मैं कुछ नहीं जानता। ऐसे में तुम्हारे पास आना चाहता था। मालूम पड़ा कि तुम हॉस्पिटल में हो, तुम्हें ग्लूकोज दिया जा रहा है।

शशि को पता चल चुका था। उसने मुझ से पूछा, "अब क्या किया जाए?" वह कुछ बेचैन लग रहा था। हम दोनों हॉस्पिटल पहुँचे। तब तक बहुत देर हो चुकी थी–तुम जा चुकी थी सदा के लिए–हम से दूर–बहुत दूर, हैलो कहे बगैर, मिले बगैर, मुस्कुराए बगैर–।

नर्स ने बताया कि अंतिम सांस तक तुम दरवाज़े की तरफ टकटकी लगाए किसी की प्रतीक्षा में थी।

शशि की आँखों से सागर वह निकला।

तुम तो साक्षात लक्ष्मी थी–तूने यह क्या किया।

मेरी आँखों में नमी नहीं है–पर दिल खून के आंसू रो रहा है–मैं दहाड़ें मार–मार कर रोना चाहता हूँ–लेकिन कंठ अवरुद्ध है, आवाज़ कहीं खो गई है। दिल के किसी सुनसान कोने में असीम पीड़ा की टीस है। इन टीसों का हार तुम्हारी कब्र पर चढ़ा तुम्हें आखरी सलाम भेज रहा हूँ। और कर ही क्या सकता हूँ मैं........?

०००

उर्दू कहानी

गवाहों का व्यापारी

❒ आनन्द 'लहर'*

सुधीर सिंह जम्वाल नया-नया थानेदार बनकर यहाँ आया था। यह थाना कई बातों के लिये प्रसिद्ध था। एस.एस.पी. साहिब की बीवी भी इसी से (थानेदार से) सामान मँगवाती थी और उन के घर खाने का इन्तज़ाम भी इसी थाने से होता था। इसलिए यहाँ के थानेदार की एक ख़ास अहमियत थी। यह थाना लोगों में बदनाम हो गया था। गोया ऑफिसरों में इसका बड़ा नाम था। लिहाज़ा सुधीर सिंह जम्वाल जो हाकी का खिलाड़ी था नया-नया पुलिस के महकमे में भरती हुआ था। इसको यहां लगाया गया था और अभी तक ईमानदारी का भूत इसके सिर से न उतरा था। बड़ी-बड़ी मीट की दुकानें, लज़ीज़ खाने वाले रेस्तरां इसी इलाके में पड़ते थे और इसके इलावा शालों की दुकानें और सिनेमा हाल भी इसी इलाके की हदूद में आते थे।

सुधीर सिंह जम्वाल की ईमानदारी के चर्चे सुन कर एस.एस.पी. साहिब की बीवी ने कुछ ऐतराज़ ज़रूर किया था। मगर आई. जी. की बीवी ने उसे यह कह कर चुप करा दिया था कि या तो सुधीर सिंह जम्वाल खुद को बदल देगा या वह उसे बदलवा देंगे। लिहाज़ा कुछ अरसा दूसरे थानों की हदूद में आये रेस्टोरेन्टों का खाना जो कम लज़ीज़ है इसी पर गुज़ारा कर लिया जाये।

रमेश, राजा, गोपी दूसरे कई लड़के स्कूल के गेटों पर शाम को खड़े हो जाते और लड़कियों को छेड़ते। राजा क्योंकि जज का लड़का था इसलिए कभी-कभी लड़कियों पर हाथ भी मार दिया करता था और बाकी लड़के सिर्फ लड़कियों को छेड़ने तक ही महदूद थे। चूंकि राजा जज का लड़का था इसलिए आज तक किसी पुलिस ऑफिसर ने उधर जाने की जुर्रत नहीं की थी अलबत्ता दूसरे स्कूलों के बाहर लड़कियों की छेड़खानी बन्द करवाने के लिए हर तरफ से कोशिश की गई। और अख़बारात ने भी इस बात के लिए पुलिस की खूब तारीफ की थी। पिछले थानेदार काज़ी हसन दीन ने कुछ लड़कियों को छेड़ने वाले लड़कों के ऊपर यूँ डन्डे बरसाये थे गोया कह रहा हो "ऑफिसरों के लड़कों की मौजूदगी में तुम्हें लड़कियाँ देखने का क्या हक है।"

सुधीर सिंह जम्वाल बेवकूफी की हद तक ईमानदार था। एक बार हॉकी के मैच में वह गोलकीपर था। पनल्टी स्ट्रोक को इसने सर से रोका और बेहोश हो गया मगर गोल न होने दिया।

---

* *प्लॉट नं. 19, बख़्शी नगर, जम्मू (जम्मू व कश्मीर)*

जब उसका ट्राँसफर यहाँ होने लगा तो डी.आई.जी. साहिब ने कहा था ऐसे ख़तरनाक आदमी को यहाँ मत लगाओ क्योंकि बड़े-बड़े ऑफिसर व सियासतदान रात को इस थाने की हदूद में आने वाले होटलों में ठहरते हैं मगर आई.जी. ने कहा :

''कुछ दिनों के लिए दूसरे थानों की हदूद में चले जायें क्योंकि अच्छे ईमानदार थानेदारों को यहाँ लगाने की माँग के पीछे बेईमान सियासतदानों की बेईमानी करने की ख़्वाहिश होती है और वह चाहते हैं कि ईमानदार ऑफिसरों को तैनात करने की माँग वह करें मगर वह मानी न जाये और सारी बात पुलिस ऑफिसरों के सिर पर आये और फिर यह जम्वाल कब तक ईमानदारी का दामन बनाये रखेगा।''

''नहीं साहिब यह ईमानदार बड़े ख़तरनाक होते हैं। यह हम जानते हैं कि दाल-फुलका खाने वाले और धोती पहनने वाले लोग, सिर्फ पढ़ाई में दिल लगाने वाले तालिब-इल्म, बच्चों को घर में मुफ़्त पढ़ाने वाले उस्ताद, ईमानदार और ऐशपरस्त ऑफिसर जदीद समाज के लिए एक ज़हर हैं।''

डी.आई.जी. ने आई.जी. को दोबारा फिर यह सलाह दी थी

''कुछ दिनों तक इस को बर्दाशत कर।''

सुधीर सिंह जम्वाल ने एक दिन राजा, रमेश और गोपी को पकड़ा क्योंकि वह लड़कियों को छेड़ रहे थे। सुधीर जम्वाल ने राजा को इसलिए मारा क्योंकि उसने एक लड़की को पकड़ भी लिया था। फिर उन्हें हवालात में बन्द कर दिया।

जज साहब ने फौरन आई.जी. को टेलीफोन किया और कहा :

''हमारा ही लड़का रह गया था।''

फिर दूसरे ही लम्हे में आई.जी. ने सुधीर सिंह जम्वाल को फोन पर कहा :

''अदलिया पर हाथ मत डालो।''

जम्वाल हैरान हो गया। फिर सब ने उसे डराया कि वह तौहीन अदालत में फंस जायेगा मगर दूसरे ही लम्हे में मालूम हुआ कि यह मुकद्दमा एक दूसरे ऑफिसर को दे दिया गया है।

फिर राजा को मुल्ज़िमों की फेहरिस्त से निकालने के बाद यह मुकद्दमा इसी को वापिस दे दिया गया और ऐसा इसलिए किया गया ताकि अदालत का वक़ार भी बच जाये और पुलिस का वक़ार भी।

इधर सुधीर सिंह जम्वाल परेशान था कि अब वह करे तो क्या करे। फिर उस पर ऑफिसरों ने मज़ीद दबाव डाला कि वह जल्दी से चालान पेश करे।

चालान तैयार हो गया। सुधीर सिंह जम्वाल बाज़ार चला गया और फिर जिन दुकानदारों के सामने उस लड़की को छेड़ा गया था उन्हें गवाही देने के लिए कहने लगा।

एक दुकानदार जिस का नाम कश्मीर सिंह था, ने सब से ज़्यादा एहतजाज़ किया था और चालान न पेश किये जाने की वजह से जो जलूस निकाले गये थे उन की अगवाई भी कर रहा था।

सुधीर उस दुकानदार के पास गया और उससे कहने लगा कि वह गवाही दे लेकिन उस दुकानदार ने साफ़ कहा कि वाक्या तो हुआ है मगर वह मुल्ज़िम को पहचान नहीं सकता है।

इस पर सुधीर सिंह जम्वाल ने उसे डराया तो उसने साफ़ कहा कि साहब अगर मैं यहाँ हाँ कह भी दूँगा तो अदालत में जाकर साफ़ इन्कार कर दूँगा।

"यह सब तुमने कहाँ से सीखा?"

सुधीर सिंह जम्वाल यह सब सुन कर हैरान था कि आम आदमी तक यह बात कैसे पँहुची कि वह इस तरह से इस कानूनी निज़ाम को दरहम-बरहम किया जा सकता है।

ऐसा सुनने के बाद सुधीर सिंह जम्वाल कुछ संजीदा हो गया। उसने फिर दुकानदार से पूछा :

"कहाँ से सीखा यह सब कुछ तुमने?"

"जनाब मैं पिछली बार जब गवाही देने के लिए गया था तो मुझे सरकारी वकील ने मदद करने का तरीका बताया था और कहा था कि जब वह पूछे तो मुल्ज़िम के खिलाफ बोलना और जब वकील सफ़ाई पूछे तो मुल्ज़िम के हक में बोलना। इस में शक का फायदा मिलते हुए मुल्ज़िम बरी हो जाएगा"

सुधीर सिंह जम्वाल आगे बढ़ गया और ऐसे कई लोगों से उसने यहाँ पर मुलाकात की ताकि किसी को गवाही देने के लिए राज़ी कर सके।

एक ने कहा :

"गवाही देने का क्या फायदा, जज पैसे खाकर मुल्ज़िम को छोड़ देगा।"

इस पर सुधीर सिंह जम्वाल ने उसे डाँटा और कहा :

"ऐसा क्यों कह रहा है यह तौहीन-ए-अदालत है।"

एक दूसरा शख़्स आया और उसने कहा कि मुल्क के चीफ जस्टिस ने कहा है कि "बीस फीसद जज रिश्वत खाते हैं" और हो सकता है कि यह मुकद्दमा उन जजों में से किसी एक के पास चला जाये।

"और यह भी हो सकता है कि पहले साल जो बीस फीसद रिश्वत खाते हैं वह अगले बरस ईमानदार हो जायें और अगले बरस जो ईमानदार थे वह बेईमान हो जायें और मुकद्दमा तो कई बरस चलता है।"

एक दूसरे शख़्स ने उस की ताईद में जवाब दिया।

एक तीसरे शख़्स ने कहा :

"कौन मुल्ज़िम के खिलाफ गवाही देगा और दे भी दे तो क्या होगा क्योंकि आई. जी. साहिब की बीवी और कमीश्नर साहब की बहन भी तो वकालत यहीं करती हैं। और पुलिस के ऑफिसरों को उनकी वकालत भी चलानी है।"

सुधीर सिंह जम्वाल ने बहुत कोशिश की मगर उसे कोई गवाह न मिल सका। उधर लोगों का एहतजाज और तेज़ हो गया। माँग बढ़ने लगी।

"चालान पेश करो।"

"चालान पेश करो।"

"पुलिस वाले हाय-हाय।"

"सरेआम वाक्या हुआ है।"

"जम्वाल हाय-हाय।"

"अगर कल तक चालान पेश न हुआ तो सारा शहर बन्द कर दिया जायेगा।"

सुधीर सिंह जम्वाल घबराया और एस.एस.पी. आज़ाद के घर गया। उसने सारी बात उन को सुनाई।

एस.एस.पी. ने कहा :

मैं इसीलिए कहता हूँ कि पुलिस वालों को ट्रेनिंग के बाद पुराने हवलदारों से भी ट्रेनिंग लेनी चाहिए।"

सारी बात समझने के बाद सुधीर सिंह जम्वाल को लगा कि अब वह सुधीर सिंह जम्वाल नहीं है बल्कि सिर्फ एक थानेदार है और उसे सिर्फ अपने ऑफिसरों का हुक्म मानना है और अपने नीचे के लोगों को वह हुक्म देना है जैसा कि ऊपर वाले उसे कहते हैं।

वह सीधा अपने थाने में गया और गोपी को मुल्ज़िम बना कर रमेश को गवाह बना लिया। रमेश चीखा मगर कोई असर न हुआ।

गोपी के एहतजाज़ पर राजा ने कहा :

''घबराता क्यों है वालिद साहिब जज हैं।''

चालान पेश हो गया। अदालत में रमेश सरकारी वकील के पास गया। वहाँ उसे उस का पुराना दोस्त हमीद मिला। हमीद उसे बाहर ले आया। हमीद का भाई एक मुकद्दमे में फंसा था। उस की ज़मानत की तारीख़ थी। हमीद का वकील नया-नया था। उसने सुना था कि वह बतौर सरकारी वकील तो रिश्वत खाता था मगर चूँकि अब वह डी.एस.पी. बन गया था मुमकिन है बड़ी पोस्ट पर आने के बाद उस ने छोटे मुकद्दमों में रिश्वत लेनी छोड़ दी हो। वह उस का मिज़ाज जानने के लिए उस के पास गया। डी.एस.पी. एक शख़्स से कह रहा था :

''अब मैं डी.एस.पी. हो गया हूँ रुपये मेरे ओहदे के मुताबिक देना।''

हमीद ने रमेश को यह सब बताया। फिर रमेश को सरकारी वकील ने समझाया कि जब वह सवाल पूछेगा तो खूब तरीक़े से मुल्ज़िम के खिलाफ बोलना मगर जब दूसरा वकील जिरह करे तो मुल्ज़िम को पहचानने से इन्कार कर देना।

डी.आई.जी. साहब की बीवी बतौर-ए-वकील पेश हुई। रमेश ने वही किया जो उसे समझाया गया था और शक की बुनियाद पर मुल्ज़िम बरी हो गया। डी.आई.जी. की बीवी का नाम अख़बार में आया। उस की वकालत खूब चमक उठी और रमेश अब सिर्फ अदालत का ही हो कर रह गया और हर केस में गवाह बनता गया। फिर उस की तरक्की होती चली गई और वह बड़े-बड़े मुकद्दमों में गवाही देने लगा जिन में क़त्ल के मुकद्दमे भी शामिल थे।

रमेश का काम इतना ज़्यादा बढ़ गया कि उसे अपने साथ और गवाह रखने पड़े। अब वह गवाहों का व्यापारी है। हर शरीफ आदमी उस से डरता है क्योंकि वह किसी के खिलाफ भी गवाही दे कर मुकद्दमे में हल-चल पैदा कर सकता है।

०००

उर्दू कहानियों का मूल्यांकन

❑ कुलविन्दर मीत

वैसे तो उर्दू कहानी का जन्म बहुत पुराना है परन्तु आलोचक इसका जन्म 18वीं शताब्दी से मानते हैं। यकीनन तब उर्दू शायरी शीर्ष पर थी। इसलिए कहानियों पर भी उसका असर स्पष्ट दिखाई देता है। उर्दू कहानी का शिल्प घटनाओं से गड़ा जाता रहा है और विषय आस-पास के वातावरण से ज्यों-का-त्यों उठा लिया जाता है। प्रेम विषय को लेकर बहुत-सी कहानियां लिखी गई है। उर्दू कहानी में आज विषयों की विविधता और नए प्रयोग भी कहीं-कहीं देखने को मिलते हैं। प्रस्तुत आलेख में उर्दू की निम्नलिखित दो कहानियों का मूल्यांकन किया जा रहा है।

1. टीस दर्द की – डॉ० बृज प्रेमी
2. गवाहों का व्यापारी – आनंद लहर

टीस दर्द की

यह कहानी डॉ० बृज प्रेमी द्वारा लिखित है। हर कहानी में एक कथानक होता है जो कहानी की विषयवस्तु बनाए रखता है अर्थात् कहानी को वेग देता है। यह कहानी भी 'प्रेम' विषय पर रची गई है। चूँकि कहानी में कहीं भी कल्पनात्मकता अर्थात् फंतासी नहीं दिखती फिर भी घटनाओं का चित्रण इसे लय देता है। कहानी का पात्र (मुख्य) 'मैं' शैली में है। यही इसके परंपरागत होने का प्रमाण भी है। चूँकि कहानी में कहीं भी कोई नाटकीयता नहीं है हर घटना पिछली की पूरक है। कहानी में ढील या स्थिरता भी नहीं है। लेखक ने बहुत कुशलता के साथ कहानी का निर्वाह किया है। कहानी की भाषा आम बोलचाल की भाषा है। उपमाओं का प्रयोग भी यथारूप देखा जा सकता है। संबोधात्मक विशेषणों का विस्तार भी कहानी को रवानगी प्रदान करता है। कहानी का आकार देखें तो यह एक लघुकथा की तरह है। परन्तु लघुकथा की सी मार्मिकता इस कहानी में नहीं है। कहानी में घटनाएँ भी बड़ी तेज़ी के साथ घटती हैं। संवेदनशीलता की कमी, विस्तृत घटनाक्रम, कथ्यक्रम की अस्पष्टता तथा विषय की न्यायहीनता कुछ ऐसे तत्व हैं जो कहानी को कमज़ोर कर देते हैं। उर्दू कहानी की विशेषता यह रही है कि वह बीच में उलझाती नहीं है। घटनाक्रम तेज़ी के साथ बदलता जाता है जो इस कहानी की भी खूबी है। परन्तु विषय के साथ कहाँ तक न्याय किया गया है यह तो पाठकों पर ही निर्भर करता है कि वह कौन-सा तंतु पकड़ते हैं।

प्रेम कहानियाँ इतनी संवेदनशील होती हैं कि पाठक हर कहानी में अपना जीवन जोड़ लेते हैं। एक नवीनता रहती है जो रूचि पैदा करती है। मस्तिष्क सदा तैयार रहता है कि कुछ विशेषता कहानी को नयापन प्रदान करे। यह कहानी भी इसी विषय पर है, जिसमें एक ऐसी प्रेम कहानी है जिसका कोई धरातल नहीं है। शशि ही केवल ऐसा पात्र है जो सामान्य संज्ञा

है बाकी पात्र विशेषणों के रूप में हैं। कहानी का मुख्य पात्र जो कि 'मैं' क्रिया विशेषण है स्त्री पात्र से प्रेम करता है परन्तु उसका प्रेम एक तरफा है। वहीं शशि भी उससे प्रेम करता है और वह भी शशि से। यहाँ यह तो दर्शाया गया है कि वे दोनों के बीच संबंध है। पर जिस प्रकार लड़की किसी और से ब्याही जाती है उसमें कोई नयापन नहीं झलकता। बीच की सारी घटना अनघटित ही रहती है। फिर लड़की का पुन: वापिस लौट आना तथा शशि का घर बसाना लड़की की सशक्त मनोदशा व्यक्त करता है। मौहल्ले की नुक्कड़ में सभी को चेतावनी देना भी उसकी सशक्त तथा निडर मनोदशा दर्शाती है। रिश्तों की उलझनें भी कहानी को आगे बढ़ाती हैं। एक स्त्री किन-हालातों में कहाँ से कहाँ तक का सफ़र तय करती है। उसका अपना क्या होता है तथा कौन उसे प्यार करता है? उसका अपना घर कौन-सा होता है? विवाह और प्रेम का क्या संबंध है? प्रेम में शादी कहाँ तक आवश्यक है? ये सभी प्रश्न इस कहानी के माध्यम से उभरकर सामने आते हैं। आज भी नारी अपने लिए जगह तलाश कर रही है। आज भी वह अपनी अस्मिता और पहचान बनाने की कोशिश कर रही है। पहला विवाह टूटने पर जब लड़की शशि से शादी करती है तो उसकी समाज से जूझने की हिम्मत का पता चलता है। वह सभी दीवारें तोड़कर शशि से शादी करती है। जिसमें धर्म की मज़बूत दीवार भी है। हालाँकि कहानी में लड़की किस धर्म से है यह पूरी तौर पर स्पष्ट नहीं होता। इस कहानी में अनमेल विवाह जैसी कुपर्था को भी चित्रित किया गया है। शशि उमर में लड़की से बड़ा था और बुढ़ापा आने पर उसका स्वभाव भी बदल जाता है। वह अपनी पत्नी पर शक करता है तथा अपनी गृहस्थी उजाड़ बैठता है। ''मैं'' अंत में स्त्री के अंत समय रोना चाहता है परन्तु उसके पास रोने के लिए कोई रिश्ता नहीं है। प्रेम का या मानवता का रिश्ता इस समाज में मान्य नहीं है। प्रेम के लिए रिश्तों में बंधना यहाँ ज़रूरी है। चाहे पति स्त्री का जितना भी शोषण करे। यह हमारे खोखले आदर्श समाज की त्रासदी है। कहानीकार ने कहानी को सहजता के साथ निभाया तो है परन्तु कहानी का विषय इतना संवेदनशील है कि वह नित नया हस्तक्षेप चाहता है।

गवाहों का व्यापारी

'गवाहों का व्यापारी' आनंद लहर द्वारा लिखित है।

यह कहानी यथारूप समाज से घटना की तरह उठा ली गई है। कहानीकार चूँकि एक वकील है इसलिए इस कहानी में न्याय संबंधी भ्रष्टाचार को अवतरित किया गया है। चूँकि कहानी में कलात्मकता, फंतासी, कल्पनाशीलता, नाटकीयता, लयात्मकता तथा रचनाशीलता की कमी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। पाठक अपने तरीके से किसी भी विधा को ग्रहण करते हैं। इसलिए इसे आलोचना के पैमाने पर परखकर नहीं देखा जा सकता। परन्तु आलोचनात्मक दृष्टिकोण ही किसी रचना को सार प्रदान करता है। पाठकों को एक आधार देता है ताकि वह उक्त रचना को एक दृष्टि से देख पहचान सकें। हर लेखक की अपनी शैली और भाषा होती है। उसका अपना दृष्टिकोण होता है। परन्तु लेखक वही सफ़ल होता है जो अपना दृष्टिकोण पाठकों के माध्यम से स्पष्ट करे। ऐसी भाषा प्रदान करें जो रचना को लय तथा गति प्रदान

करें। विचारों को लोक हित हेतू प्रयोग करें। साहित्यिक रचना तथा आम बाजारु रचनाओं में अंतर स्पष्ट तौर पर दिखता है। अतः साहित्यिक रचना मस्तिष्क को नया आयाम देती है। वह मनोरंजन की वस्तु नहीं अपितु चिंतन का कार्य करती है। 'गवाहों का व्यापारी' कहानी अदालती दाँव-पेचों का मात्र ब्यौरा पेश करती है। चिंतन या मनन प्रदान नहीं करती। कहानी का शिल्प भी फ़िल्मी है तथा इसे निभाया भी इस तरह से गया है कि एक तस्वीर सी पटल पर दौड़ने लगती है। कहा जाए तो कहानी की पटकथा काफ़ी अच्छी है। ऐसी कहानियों की दूरदर्शन या फ़िल्मों में हमेशा आवश्यकता रहती है।

इस कहानी का मुख्यपात्र एक पुलिस अफ़सर है जो ईमानदार है। और हमारे समाज में 'ईमानदारी' शब्द केवल किताबों में रह गया है। इसका व्यवहारिक तौर पर कोई प्रायोजन नहीं है। यही इस कहानी की विषय वस्तु है जो एक नियमित घटना द्वारा पेश की गई है। लेखक अपनी दृष्टि से समाज में फैले भ्रष्टाचार को देखता है। परन्तु कहानी में जिस समस्या को इंगित किया गया है। उसका पात्र द्वारा विरोध कहीं भी नहीं दशार्या गया अर्थात् अंत में पात्र (सुधीर जम्वाल) आलोप कर दिया गया है। भारतीय कानून प्रक्रिया का सीधा रूप इस कहानी में उभरकर सामने आया है। घटना का विस्तृत रूप दिखाकर कहानी कह जाना एक मज़बूरी हो सकती है। परन्तु कहानी से कहानीपन चला जाना एक दुखद प्रयास होता है। आज की उर्दू कहानी कुछ हद तक परिवर्तित अवश्य हुई है। जैसे विषयों को आज के संदर्भ से जोड़कर उसमें कल्पनाशीलता प्रदान की गई है। भाषा को अधिक लचीली बनाया गया है। प्रतीकों, उपमाओं, रूपकों तथा मुहावरों का प्रयोग भी नई कहानी के तत्व हो गए हैं। आज की कहानी कुछ उलझती तो है पर यही उलझन मस्तिष्क पर वार करती है। चिंतन पैदा करती है। समस्या का समाधान नहीं करती पर इशारा अवश्य करती है। भ्रष्टाचार की व्यापकता पर चोट व्यंग द्वारा की जा सकती है। कहानी तो मात्र कहानी होती है घटना नहीं। परन्तु इस कहानी की मुख्य विशेषता यह है कि यह सत्य घटनाओं पर आधारित है। जहाँ कहानी के तत्व विलीन हो गए हैं। इसका मुख्य कारण इसका विषय है। चूँकि लेखक स्वयं कानून व्यवस्था का हिस्सा है इसलिए कहानी में सत्य घटनाएँ पेश की गई हैं।

हर पाठक अपने दृष्टिकोण से विधा को परखता है। वस्तुएं वैसी नहीं होती जैसी वह दिखती हैं। जैसे इस कहानी में बात सिर्फ़ विषय की नहीं है अथवा कहानी तत्वों की नहीं है। बल्कि यथार्थ की बात है। सत्य की बात है। और समाज के खोखले आदर्शों की है। कितने वर्ष बीत गए हमारी संस्कृति को पनपते। कितने धर्मों ने, दर्शनों ने, विचारधाराओं ने, सभ्यताओं ने भारत को विकसित किया है। परन्तु हम आज भी स्वार्थ और भय में धँसे हुए हैं। हमारी व्यवस्था इस कदर दूषित हो चुकी है कि हम चाह कर भी नहीं स्वच्छ हो सकते। क्या हमारा इतना पुराना इतिहास व्यर्थ गया? क्या हम जड़ों से बँधे होकर भी खोखले ही रह गए हैं। ऐसा क्या डर है जो हमें सत्य के मार्ग से हटाता है? क्या हम केवल पदार्थवादी हो गए हैं? इन सब प्रश्नों का जवाब हमें ढूँढ़ना होगा। यह कहानी इसलिए भी उपयोगी हो जाती है कि यह हमें आईना दिखाती है। इसलिए लेखक का प्रयास सफ़ल कहा जा सकता है। कहानी का स्वागत है।

गोजरी कहानी

गुनगुने आंसू

❑ मूल – डॉ. रफ़ीक़ अंजुम

कभी-कभार उठने वाले गुर्दे के दर्द को छोड़कर मुंशी जवान और हट्टा-कट्टा था। किसी के घर छत छाने का काम हो या धान की रोपाई हो वह हमेशा सबसे आगे रहता। दूसरों के काम को अपना समझकर करने वाले आजकल कम ही दिखाई देते हैं।

मैं (कहानीकार) मुंशी की कहानी सुना रहा हूँ। दिन-रात काम करके भी वह अपने परिवार की जरूरतें पूरी न कर सकता था। मैं सोचता हूँ एक ईमानदार व्यक्ति जिसने कभी किसी को कोई नुकसान नहीं पंहुचाया और सब से जी कह कर बोला, उसके साथ ज़िदंगी ने ऐसा सलूक क्यों किया ?

वह अपना ऋण उतारने के लिए सर्दियों में पंजाब में जाकर मेहनत-मज़दूरी करता पैसे कमा कर लाता, पर फिर भी उसका उधार समाप्त नहीं हो रहा था। कभी दुकानदार का उधार चुकता न होने के कारण उसे बातें सुननी पड़ती तो कभी अब्दुल्ला को बैलों की रकम न देने के कारण आधी मक्की देनी पड़ती। बच्चों का नाम लेकर उसकी पत्नी ने हठ वश भैंस खरीद ली थी, सो उसका कर्जा अलग। बजाज की बड़ी-बड़ी गालियां। मुंशी हमेशा गुम-सुम, उदास अपनी ही सोच में डूबा रहता था। वह ईश्वर से सदा यही प्रार्थना करता था कि अल्ला! कभी किसी को कर्ज़दार न बनाना, चाहे उसे कब्र में डाल देना। इस वर्ष कार्तिक मास में वह कुछ खुश दिखाई दे रहा था। इस सर्दी में पंजाब की जगह दिल्ली जाने का कार्यक्रम बनाकर उसमें हिम्मत आ गई थी। चार-पांच लोगों के साथ इस वर्ष भी वह पहले ही चला गया था। अभी कुछ ही समय बीता था कि वह वापिस आ गया। भला-चंगा खुश। लगता था इस वर्ष दिल्ली में उसे ज़्यादा कमाई हुई थी। आते ही उसने सबका कर्जा चुकता किया। शाह का, अब्दुल्ला के बैलों का और भैंस की कीमत भी जिसे जान बूझकर उसकी पत्नी ने उसके गले डाला था।

इसके बाद चिंतामुक्त होकर रहने लगा। उसने पत्नी और बच्चों को उनकी इच्छानुसार कपड़े और बूट भी दिलवा दिए। पर शायद भाग्य को उसका चिंतामुक्त और खुश रहना अच्छा न लगा।

उस रात गुर्दों को चीरता हुआ दर्द उठा और वह दर्द उसे साथ ही ले गया। मुंशी सारी रात दर्द से तड़पता रहा और सुबह सोया ही रहा......।

यह बात नरसों ही उसके एक साथी ने दिल्ली से वापिस आकर बताई कि मुंशी अपना एक गुर्दा दिल्ली के किसी सेठ को बेचकर पैसा ले आया था। और अब एक बीमार गुर्दे के सहारे अपना कर्ज़, परेशानी और जान तक भी गंवा बैठा था।

अनु० नीरू शर्मा

०००

बे-घर

❑ मूल – मुहम्मद मन्शा खाकी

उसका बाप सप्ताह-भर अपने से बेखबर रह कर सोचता रहा कि अब क्या होगा ? उन दिनों उसे रोटी खाने की सुध-बुध भी नहीं थी। वह कभी लस्सी का गिलास पीकर सो जाता या रूखी रोटी खाकर लेट जाता। कभी अम्मा माखन में मिर्च मिलाकर रोटी पर चुपड़ कर लस्सी के कटोरे के साथ दे देती। घर का माहौल कुछ बदला-बदला सा लग रहा था। उसे प्रतिदिन दोपहर को गाँव के चौधरी का संदेश आता कि ''मेरी बात सुन जा।'' एक दिन बालचा तंग आकर मास्टर के पास स्कूल चला गया था।

मास्टर ने उसे सलाह देते हुए कहा था-''देख बच्चा तेरा है- वह नासमझ है- उसकी ज़िंदगी का निर्णय लेने का तुझे पूरा हक है- मैं सिर्फ सलाह ही दे सकता हूँ- चौधरी का ऋण मैं चुकता करवा दूंगा और खर्च के लिए प्रति माह चार सौ रूपये भी मिलते रहेंगे। जब ऋण चुकता हो जाएगा तो फिर पूरे पांच सौ रुपये प्रतिमाह तेरे हाथ में दे दिए जाएंगे। यदि तेरे बच्चे ने पढ़ाई में दिलचस्पी ली तो पढ़ भी जाएगा। तुम भी सुखी रहोगे। मेरे दोस्त की एक छोटी बच्ची है बस।''

''ठीक है तू आती बार पूछ आना। चौधरी को दो हज़ार नक़द देने के लिए भी लेते आना। और छोटे को साथ ले जाना।''

दूसरे दिन उसके बाप ने घर के सदस्यों से बातचीत करके उसे कहा था- ''बच्चा तू तैयार हो जा, तूने शहर जाना है। घबराना नहीं मैं तेरी खबर लेता रहूंगा।'' शाम को मास्टर जी बालचा को पैसे देकर उसे (बेटे को) अपने साथ शहर ले गए। उसके लिए शहर में सब कुछ नया-नया था। घर का मालिक संजीदा, धनी और सियाना था। यहीं से उसकी नयी ज़िंदगी शुरू हुई थी।

वह ईमानदारी से मालिक का काम करता रहा और साथ-साथ पढ़ता भी रहा। उसने दूसरे चांस में प्राइवेट दसवीं पास कर ली और अब घर की सारी जिम्मेदारी उस पर ही थी। क्योंकि मालिक अब बुज़ुर्ग हो गया था। पर मालिक को उस पर पूरा भरोसा था। मास्टर का गांव से तबादला हो गया। फिर भी सेठ ने मास्टर के पास जाकर बालचे को बुलवाया और कहा बड़ी सेवा की है तेरे बेटे ने और जाते समय पचास हज़ार का चैक थमाते हुए कहा- ''आज के बाद तेरी ज़रूरत तेरा बेटा पूरी करेगा। तेरा-मेरा हिसाब बराबर।'' उसे तब थोड़ी-थोड़ी समझ आई जब मालिक ने उसे बुलाकर पूछा-''तुझे मेरी शिब्भो पसंद है। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मैं तुम दोनों की शादी कर दूं।''

उसे अपने पांव के नीचे से धरती खिसकती महसूस हुई, उसने कभी सोचा भी नहीं था। उसका शरीर पसीने से तर-बतर हो गया। उसने अपने जज़्बात पर नियंत्रण रखते हुए कहा- ''पापा मेरी क्या औक़ात है। आप तो जानते ही हैं कि मैं गरीब घर का बच्चा हूँ। आपने पाल-पोस कर बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया, घर-बार चलाना सिखाया। आप फांसी पर झूलने को भी कहेंगे तो मैं ना नहीं करूंगा। आप मेरी सलाह पूछ रहे हैं।''

उसकी शादी शिब्भो से हो गई। माँ-बाप, भाई-बहन और कुछ नाते-रिश्तेदार शादी में सम्मिलित हुए। कुछ वर्षोंपरांत उसका बाप मर गया। उसका भाई पढ़-लिख कर मास्टर बन गया था और उसने बहन की शादी भी करवा दी। उसका बहनोई पानी के महकमे में नौकरी करता था। उसने अपना कारोबार इतना बढ़ाया कि मुलाज़मों की संख्या दोगुणी करनी पड़ी। उसे शूगर की शिकायत थी। वह प्रतिदिन सुबह-सवेरे नमाज़ से फारिग होकर सैर करने जाता था। कुछ दिनों से उसका छोटा बेटा साथ जाने की ज़िद कर रहा था। उसने उसे समझाते हुए कहा-''आसिफ ज़िद न कर, तू नहीं चल पाएगा।'' पर वह नहीं माना। दूसरे दिन अपने पापा के साथ चल पड़ा। चलते-चलते शहर के बाहर एक मोड़ कर आसिफ खड़ा होकर उसे बुलाते हुए कहने लगा-''पापा.... पापा यहाँ आओ .... ये देखो .... यहाँ कितने कुत्ते मरे पड़े हैं।''

उसने गंदगी के ढेर और मरे कुत्तों को देखते हुए कहा-''बेटा ये कचरा और मरे हुए कुत्ते नगरपालिका वालों ने गाड़ी में भर कर यहाँ फेंके हैं। आ चल यहाँ खड़े नहीं होते।''

आसिफ ने फिर पूछा- ''ये एक साथ कैसे मर गए।''

उसने प्रत्युत्तर में कहा-''देखो बेटा, ये आवारा कुत्ते हैं। नगरपालिका वालों ने ज़हर देकर इन्हें मारा है।''

आसिफ ने दूसरा प्रश्न किया- ''पापा ! ये आवारा क्या होता है ?''

''बेटा, जिनका कोई घर-ठिकाना या स्वामी नहीं होता।''

आसिफ चुप हो गया तो उसने चैन की सांस ली।

दूसरे दिन भी आसिफ पापा के साथ सैर करने जाने के लिए तैयार हो गया। उस दिन उसने दूसरी तरफ का रुख किया ताकि वह आसिफ के प्रश्नों से बच सके। मेन चौक से गुज़रते हुए आसिफ की नज़र फुटपाथ पर सोए हुए लोगों पर पड़ी। बस फिर क्या था .... प्रश्नों की बौछार शुरू हो गई। ''पापा! पापा! ये लोग यहाँ क्यों सोए हैं? उसने संक्षिप्त-सा उत्तर देते हुए कहा- बेटा, ये मजदूर हैं। दिन-भर काम करके रात फुटपाथ पर गुज़ारते हैं।''

''मगर यहाँ क्यों सोते हैं ? अपने घर क्यों नहीं जाते ?''

पापा को चुप देखकर आसिफ ने कहा-''पापा! पापा! बोलो न।'' ''देखो बेटा, इन लोगों का शहर में कोई घर-ठिकाना नहीं। इसलिए ये यहीं सोकर रात गुज़ारते हैं।'' आसिफ झट से बोल पड़ा- ''पापा, नगरपालिका वाले इनको ज़हर क्यों नहीं दे देते ?''

वह अपने लाडले का प्रश्न सुन कर कांप गया क्योंकि उनमें उसके बचपन के एक-दो साथी भी थे। जो गर्मियों में शहर मज़दूरी करने आए थे।

पापा! पापा.... बताओ न।

आसिफ की आवाज़ उसे दूर से आती हुई महसूस हो रही थी और वह सर पकड़ कर उसी फुटपाथ पर बैठ गया।

०००

गोजरी कहानियां समीक्षक की दृष्टि में

❑ अज़रा चौधरी

लोक कहानियों का चलन बहुत पुराना है परंतु आधुनिक गोजरी साहित्य में कहानी लेखन कार्य अभी बाल्यावस्था में है। गोजरी कहानीकारों ने इस विधा में लिखना कुछ वर्षों से ही आरंभ किया है। यही कारण है कि उनकी भाषा-शैली में अभी वह प्रौढ़ता-परिपक्वता नहीं मिलती है जो दूसरी भाषाओं की कहानियों में मिलती है। प्रस्तुत आलेख में निम्नलिखित दो गोजरी कहानियों पर बात करेंगे।

1. गुनगुने आंसू (कोसा अत्थरूं) : डा० रफ़ीक़ अंजुम
2. बेघर : मुहम्मद मन्शा खाकी

गुनगुने आंसू (कोसा अत्थरूं)

''गुनगुने आंसू'' डॉ० रफ़ीक़ अंजुम द्वारा लिखित गोजरी कहानी है जो गुज्जर समुदाय से संबंधित परिस्थितियों तथा उनकी भावनाओं का प्रत्यक्ष चित्रण हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। मुंशी नामक पात्र इस कहानी का नायक है जिसके इर्द-गिर्द सारा घटनाक्रम प्रस्तुत किया गया है। वह एक ईमानदार, परिश्रमी तथा सहयोगी प्रवृत्ति का इंसान है। कठिन परिश्रम करने के बावजूद उसका परिवार अभावों में जीवन व्यतीत करता है। उसके खून-पसीने की कमाई का अधिकतर भाग सूद की भेंट चढ़ जाता है। सर्दियों में मज़दूरी करने के उद्देश्य से वह पंजाब आदि राज्यों में जाता है ताकि वह ऋणमुक्त हो सके। लेकिन इतना सब कुछ करने के उपरान्त भी वह न तो अपने बीवी-बच्चों के लिए कपड़े-जूते इत्यादि आवश्यक वस्तुएं जुटा पाता है और न ही ऋण-मुक्त हो पाता है। अब की बार सर्दियों में वह पंजाब की अपेक्षा दिल्ली जाता है तथा वहाँ से बहुत-सा धन कमाकर लौटता है। जिससे वह अपना सारा कर्जा भी चुकता कर देता है और अपने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में भी सफल रहता है। यद्यपि मुंशी स्वस्थ दिखता था परंतु एक रात, वह गुर्दे दर्द से तड़पता रहा और दिन निकलने से पूर्व ही उसने दम तोड़ दिया। इस बात का रहस्य उसके मरणोपरांत खुला कि इतना पैसा वह दिल्ली में अपना एक गुर्दा किसी सेठ को बेच कर लाया था।

पूरे घटनाक्रम से यह तो स्पष्ट है कि मुंशी एक कर्मठ पुरुष था। जिसके माध्यम से लेखक ने पूरे समुदाय को पेश आने वाली समस्याओं, परेशानियों, गरीबी इत्यादि का उल्लेख किया है जो कठिन परिश्रम करने पर भी उन्हें सहन करनी पड़ती हैं। लेखक ने पाठकों के समक्ष यह तथ्य रखने का प्रयास किया है कि यद्यपि यह समाज अनपढ़ता तथा पिछड़ेपन के कारण

गरीबी की मार झेल रहा है तब भी इनमें ईमानदारी तथा स्वाभिमानिता जैसे गुण कूट-कूट कर भरे हुए हैं। अपने व्यवसाय से उन्हें गहरा लगाव है। ऋणी होने के बावजूद मुंशी की पत्नी उसे भैंस खरीदने के लिए ऋण लेने को मजबूर करती है जो इस बात को प्रमाणित करता है कि वह जिस वर्ग से है उसका मुख्य धंधा पशुपालन है और उसे उससे बहुत प्यार है।

इस सदी में जबकि विज्ञान ने इंसान का जीवन इतना सरल व सुखद बना दिया है। लेकिन अभी भी कुछ ऐसे पिछड़े हुए प्रदेश हैं, जहाँ साहूकारों, चौधरियों द्वारा गरीब लोगों का शोषण किया जाता है। उनके परिश्रम पर डाका डाला जाता है, सूदखोरी द्वारा या बैलों इत्यादि को उधार रूप में देकर। कठिन परिश्रम करने के उपरांत भी मुंशी जैसे लोग अपने परिवार का भरण-पोषण ठीक तरीके से नहीं कर पाते। कर्जे जैसी बीमारी से छुटकारा पाने तथा परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मुंशी जैसे लोगों को अपने शरीर के अंग तक बेचने को बाध्य होना पड़ता है। जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें असमय ही मौत को गले लगाना पड़ता है।

लेखक ने कहानी का कथानक मुंशी नामक पात्र को केंद्र बिंदु बनाकर रचा है, जो पूरे वर्ग, पूरे समुदाय का आईना प्रस्तुत करता है। कहानी को चरम तक पहुंचाने के लिए उचित वातावरण चित्रित किया गया है। भाषा का प्रयोग पात्रानुकूल है। अंग बेचने जैसे कृत्य के माध्यम से वर्तमान दौर के इस पहलू को उजागर करने का प्रयास किया है जिसमें धनी लोग तो पैसे के बल पर इंसानी अंगों तक को खरीद सकते हैं, तथा उनका प्रत्यारोपण करवा पुनः स्वस्थ हो सकते हैं। जबकि गरीबी तथा लाचारी की मार झेल रहे निर्धन लोग अपने शरीर के अंगों तक को बेचकर बेमौत मरते हैं।

बे-घर

'बे-घर' नामक कहानी मुहम्मद मन्शा खाक़ी द्वारा रचित है। इसमें भी बालचा वह पात्र है जिसने चौधरी से ऋण लिया हुआ है। जिसे चुकता करने के लिए उसे अपने बेटे को शहर किसी सेठ के यहाँ नौकर के रूप में भेजना पड़ता है। नौकरी के साथ-साथ उसका बेटा पढ़-लिख भी जाता है। उसकी ईमानदारी, सच्चाई, लग्न तथा परिश्रम को देख सेठ अपनी लड़की की शादी उससे कर देता है। सेठ के कारोबार को वह बुलंदियों तक पहुंचाता है मगर शूगर का रोगी बन जाता है जिस कारण वह प्रतिदिन सुबह सैर करने जाता है। एक दिन उसका नन्हा बेटा आसिफ भी उसके साथ सैर पर जाने की जिद्द करता है तथा वहाँ एक स्थान पर बहुत से कुत्तों को मरा हुआ देखकर अपने पिता से पूछता है कि पापा! इतने ज्यादा कुत्तों को किसने और क्यों मारा है? प्रत्युत्तर में ऐसा कहने पर कि यह आवारा कुत्ते हैं और इन्हें म्यूनिसिपैलिटी वालों ने ज़हर देकर मारा है आसिफ चुप हो जाता है। दूसरे दिन वह पुनः अपने पापा के साथ सैर करने जाता है तथा फुटपाथ पर सोए कुछ लोगों को देखकर पूछता है कि यह सब यहाँ पर क्यों सोए हैं ? पापा के यह कहने पर कि इनका कोई घर नहीं है

इसलिए ये यहाँ सोए हैं, आसिफ झट से बोल पड़ता है कि पापा अगर इन सब का अपना कोई घर नहीं है तो इन्हें भी म्यूनिसिपैलिटी वाले ज़हर देकर क्यों नहीं मार देते ? बच्चे के मुंह से यह बात सुन उसे चक्कर आ जाता है। क्योंकि फुटपाथ पर सोने वाले लोगों में उसके कुछ बचपन के साथी भी थे। वह सोचने लगता है कि यदि वह पढ़-लिख कर वर्तमान स्थिति में न पहुंचा होता तो संभवत: वह भी आज उन्हीं में शामिल होता।

उपरोक्त कहानी पहाड़ी प्रदेश के एक निर्धन परिवार की है जिसमें कथानक बालचा के बेटे के गिर्द बुना गया है। आजकल प्राय: देखने में आता है कि शहरों में लोग पहाड़ों से बच्चे लाकर घरों में नौकर का काम करवाते हैं। ये गरीब लोग सीने पर पत्थर रख अपनी आंख के तारों को अपना ऋण उतारने की विवशता के कारण शहरों में भेजते हैं। उनकी इस दशा का सजीव चित्रण लेखक ने अपनी इस कहानी में किया है। कहानी का उज्जवल पहलू लेखक ने यूँ प्रस्तुत किया कि नौकर के रूप में काम करते हुए, अपने परिवार का भरण-पोषण करते हुए भी वह पढ़ाई पूरी करता है। उसकी ईमानदारी, सच्चाई, परिश्रम इत्यादि गुणों को परखकर सेठ ने अपनी बेटी का विवाह उसके साथ कर देता है।

कहानी का निर्वाह सुंदर, सरल एवं भावमयी भाषा में किया गया है। उचित वातावरण प्रस्तुत कर कथानक को गति एवं रोचकता प्रदान की है। भाषा पात्रानुकूल है। कहानी का शीर्षक यथोचित प्रतीत होता है। दूरदराज पहाड़ी प्रदेश के लोगों के समक्ष आने वाली समस्याओं तथा वातावरण का भी सजीव चित्रण किया गया है।

इन दोनों कहानियों में हमें कुछ समानताएं मिलती हैं। यह दोनों कहानियां पर्वतीय प्रदेश में रहने वाले पिछड़े वर्ग से संबंधित हैं। दोनों में गरीब परिवार जो ऋणग्रस्त हैं, का वर्णन है, जिन्हें ऋण-मुक्त होने के लिए शहर का रुख करना पड़ता है। एक में जहाँ मुंशी सर्दियों में शहर मज़दूरी करने के उद्देश्य से जाता है तो दूसरी में बालचा को अपना बेटा शहर में एक सेठ के घर नौकर के रूप में भेजना पड़ता है।

चौधरी एवं साहूकार लोग गरीब लोगों का कैसे शोषण करते हैं। दोनों कहानियों में इस का विस्तृत उल्लेख मिलता है। कठिन परिश्रम करने के बाद भी अपने परिवार के लिए दो जून रोटी, कपड़े, जूते आदि न जुटा पाने का यथार्थ चित्रण मिलता है।

दोनों कहानियों में वातावरण पात्रानुकूल है। ऐसा नहीं है कि गोजरी भाषा में कहावतों, मुहावरों, अलंकारों की कमी है मगर उनको यथोचित वर्णन करने की आवश्यकता है। कहानीकारों को इस ओर भी ध्यान देना चाहिए ताकि भविष्य में उच्चकोटि की कहानियों का सृजन हो सके।

ooo

पहाड़ी कहानी

काला आदमी : काली करतूत

❑ मूल – निसार राही

टेलीफोन सुनते ही उसके माथे से ठंडे पसीने की बूंदें उसकी गोद में गिरीं। वह अपने सिर को दोनों हाथों से पकड़कर सोचने लगा। पास बैठी उसकी पत्नी ने उसे टेलीफोन के बारे में पूछा .... पर वह क्या बताये ? टेलीफोन किसी अनजान लड़की का था। वह ऊल-जलूल बातें कर रही थी। क्षण-भर तो वह सोचता रहा। फिर उसे याद आया कि यह लड़की उससे घने जंगल में मिलने की बात कर रही थी। उस लड़की की आवाज़ स्पष्ट नहीं थी, पर लगता था कि उसकी किसी सुप्त इच्छा के किवाड़ खुल गए हों। क्योंकि जवानी की दहलीज़ पर पांव रखते ही ऐसे विचारों का आना स्वाभाविक ही होता है। वह एक ईमानदार पुलिस आफिसर था। पर उस लड़की ने अपनी बातों से उसकी सुप्त इच्छाओं को जगा दिया था।

वह टेलीफोन पर बातें करने के लिए उत्सुक दिखाई देने लगा .... पर बातें किससे करे। थोड़ी देर बाद वह छड़ी हाथ में लेकर बाहर निकल पड़ा। उसने गाड़ी एकांत सड़क के किनारे खड़ी कर दी। वह अकेला .... पहाड़ी रास्ते के मोड़ पर खड़ा .... घने जंगल में मात्र चिड़ियों का कलरव .... आस-पास सन्नाटा .... सड़क के दूसरी तरफ ढलान थी .... वह नीचे उतरने लगा .... और फिसलता हुआ दूर तक लुढ़कता चला गया .... तभी उसे एक लाल दुपट्टा दिखाई दिया .... दुपट्टा देखकर वह रुक गया .... और कल्पना में खो गया– ''आप अकेले धीरे-धीरे आएं .... देखिए किसी को साथ न लाना .... मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही हूँ।'' टेलीफोन पर हुई ये बातें उसे याद आ रही थीं। वह आगे जाने ही वाला था कि उसके पीछे दो नकाबपोश खड़े हो गए। उसने जैसे ही पलट कर देखा उन दोनों ने झपट कर उसके हाथ पीछे बांधे और उसे अपने साथ घसीटने लगे। उसने शोर मचाना चाहा पर सुनसान जंगल में उसकी आवाज़ कौन सुनता ?

रास्ता कठिन था। कंटीली झाड़ियों में से गुज़रना था, पर इन दोनों नकाबपोशों ने उसे घसीटते हुए एक अंधेरी गुफा में धकेल दिया। वहाँ धीमी-सी रोशनी जल रही थी। और एक काला-कलूटा आदमी किसी के साथ टेलीफोन पर बातें कर रहा था। उसे एक पत्थर पर बिठा दिया गया और वह काला आदमी टेलीफोन से फारिग होकर उससे मुखातिब होते हुए पहले तो खिलखिला कर हंसा– फिर कहने लगा ''अरे आफिसर तुझे पता है न कि तू इस समय सबसे शक्तिशाली व्यक्ति के सामने बैठा हुआ है। तूने ज़िंदगी-भर खूब लूटपाट की, आज तुझे सारा हिसाब देना पड़ेगा'' .... बेचारा पुलिस आफिसर उस चूहे की तरह सहमा बैठा था-जिसके सामने घात लगाकर बिल्ली बैठी हो। उसके होंठ सूख गये थे। घबराहट उसके चेहरे से झलक रही थी।

काले आदमी ने उससे पांच लाख रुपये मांगे और उसे मोबाइल पकड़ाया ताकि वह घरवालों से पांच लाख रुपये भिजवाने को कहे। पुलिस आफिसर ने घर की जगह बिट्टू के नाम से थाने के मुंशी के साथ बड़े ढ़ंग से बात की– ''बिट्टू मैं घने जंगल में एक गुफा में बैठकर तुझे फोन कर रहा हूँ। मुझे पाँच लाख की जरूरत आन पड़ी है। ये पैसे जैसे-तैसे भी मुझे पहुंचा दे, ताकि मैं अपने आस-पास की जरूरतें पूरी कर सकूं। यह पैसे शाम के अंधेरे में मेरे पास पहुंच जाने चाहिए। कहते हुए उसने पैसे पहुंचाने की जगह का संकेत-मात्र दिया।

बिट्टू समझदार था। वह समझ चुका था कि आफिसर को अगवा कर लिया गया है। उसने थाने से पुलिस नफरी को बुलाया और उन्हें एक मिशन के लिए तैयार करके रात को उस जंगल की ओर जाने का आदेश दिया और स्वयं दल का अगुआ बन चल पड़ा।

सिपाहियों को घने जंगल में बिठाकर बिट्टू खड्ड की तरफ चला। छोटी-सी कूल के पास पीपल का वृक्ष था उसके पत्ते धरती पर फैले थे। धीरे-धीरे बिट्टू बताये गए स्थान पर पहुंच गया। उसे देखते ही वह काला आदमी गुस्से से पूछने लगा– ''कौन .... कैसे .... किधर से ?''

बिट्टू ने सहजता से कहा– ''मैं पांच लाख रुपये ले आया हूँ। रुपयों का बैग मैं छुपाकर आपको ढूंढ़ता-ढूंढ़ता यहाँ तक पहुंचा हूँ। आप अपने साथी मेरे साथ भेजें, ताकि वे बैग ले आयें।'' काले आदमी ने ज़ोर का ठहाका लगाया और अपने कुछ साथियों को बिट्टू के साथ जाने को कहा।

जैसे ही वे ढलान के पास पहुँचे कि बिट्टू ने ज़ोर से छींक मारी। छींक सुनते ही सारे सिपाही सामने आ गए और उन्हें घेर कर गिरफ्तार कर लिया। बिट्टू वापिस खड्ड की ओर दो सिपाहियों को लेकर चल पड़ा। वहाँ पहुँचते ही काले आदमी पर दोनों सिपाही झपट पड़े और पुलिस आफिसर को बचा लिया। पुलिस आफिसर ने सारी कहानी सुनाई कि वह कैसे एक लड़की की आवाज़ पर भटक गया था और वह लड़की इस काले आदमी की भाभी थी.... जो दिन-भर एयर-होस्टैस का काम करती और रात को ऐसे नापाक काम को चला रही थी। अगले दिन .... वह लड़की .... काला आदमी .... उसके दो साथी जेल में थे।

अनु० नीरू शर्मा

०००

पहाड़ी कहानी

लाल

❑ मूल – राजा शाहिद शुजात

एक दिन तफतीशी थका-मांदा तफतीश से वापिस आया तो अपनी पत्नी और माँ को थाने में देखकर स्तब्ध रह गया। उसकी माँ का सिर फटा था और पत्नी की नाक पर चोट आई थी। लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। कोई कह रहा था कि तफतीशी साहब की पत्नी बड़ी बहादुर है। सास को घायल कर, उसका सेर-भर खून बहा दिया .... कोई कहता हवलदारनी ने छक्का मारा .... बुढ़िया को छे टांके लगे हैं .... एक व्यंग्य कसते हुए बोला- बहुत तगड़ा मैच था .... हवलदारनी की तो नाक ही उड़ गई। कोई कहता .... हराम की कमाई .... नाक के रास्ते निकली .... सभी कुछ-न-कुछ कह रहे थे।

बेचारा इकबाल सोच रहा था कि अभी धरती फटे और वह उसमें समा जाए। बड़ी मिन्नत करके उसने पत्नी की ज़मानत करवाई और उन दोनों को घर भेज दिया। स्वयं अपमान को सहता हुआ बैरक में जाकर अपने बिस्तर पर लेट गया। पर उसे आराम कहाँ .... बार-बार घटित घटना उसकी आंखों के आगे घूम जाती। उसके कानों में आवाज़ें गूंज रही थीं .... हवलदारनी ने छक्का मारा .... हराम की कमाई नाक के रास्ते निकली .... ''मेरे अल्ला! मैं अब इस थाने में सब को कैसे मुंह दिखाऊं। .... इतना कुछ सुन कर भी मैं ज़िंदा हूँ .... मैं मर क्यों नहीं जाता?''

इसी उधेड़बुन में उसने कंबल जिसे सिर से पांव तक ओढ़ा हुआ था .... उठाकर पटक दिया .... तभी उसकी नज़र चौधरी मुहम्मद ऐवान के बक्से पर पड़ी .... उस पर कपड़े पर रखा खून थक्का देखकर वह भली-भांति समझ गया कि यह खून उसकी माँ का है .... जिसे तफतीशी मुहम्मद ऐवान ने तफतीश दौरान ज़ब्त किया होगा। क्योंकि यह केस उसे ही मिला था और वह इकबाल से अपना पुराना हिसाब चुकता करना चाहता था।

इन्सानी जज़्बात .... ? स्वयं तफतीशी होते हुए भी उससे रहा न गया। झटपट उठकर उसने कपड़ा उठाया और अपनी आंखों से लगा कर रोने लगा। अचानक उसमें से एक पत्थर नीचे गिरा .... जिस पर खून के धब्बे थे और कलम से उस पर कुछ लिखा था .... यह पत्थर उसने पहले भी कहीं देखा था .... पर कहां .... उसे याद नहीं आ रहा था। उसने अपने दिमाग पर ज़ोर डाला तो उसे याद आया कि वह पत्थर नहीं लाल है .... उसकी आंखों के आगे शादी का दृश्य घूम गया। उसे याद आया .... जब तीसरे दिन भी बारिश नहीं रुकी तो सारे घर के सदस्य परेशान हो गए। लोग भी बातें करने लगे .... कोई कहता दूल्हा मन्हूस है .... कोई कहता इसने दूध की कड़ाही चाटी है। .... यह बिना हाथ-मुंह धोए चाय पीता था .... आओ चलें .... आओ .... आओ घर चलें .... कौन अपने बच्चों को इतनी सर्दी में निमोनिया कराना चाहेगा .... इस अभागे के लगन बांधे हुए हैं तभी तो बारिश चिड़िया

तक को पानी नहीं पीने दे रही .... उफ कितना मन्हूस दिन था वह। सभी अपने-अपने घर जाने लगे। इतने में नानी ने किवाड़ खोला .... उसकी आंखें भीगी हुई थीं .... वह सांत्वना देते हुए कहने लगी- ''बेटा इनकी बातें अपने मन से न लगाना .... यह ईश्वर की करनी होती है .... तुम आज के मशीनी युग के बच्चे बात सुनते तो नहीं हो .... अगर तुझे कहा तो तुम कहोगे कि बुढ़िया सठिया गई है .... उठ .... जा बाबा गफ़ूर शाह की ज़ियारत से 'लाल' निकाल ला .... फ़िर देख खुदा क्या करता है ....?''

''कहते भी हैं कि डूबते को तिनके का सहारा। वह इसी तरह दूल्हा बना नंगे पांव ज़ियारत की ओर भागा था और रो-रोकर बारिश रोकने की मिन्नतें कीं, दुआ मांगी और ज़ियारत से यह गोल पत्थर उठा कर घर ले आया।'' सभी कहने लगे कि दूल्हा लाल ले आया है अब 'निंबल' (आसमान साफ़) हो जाएगा। नानी के कहे अनुसार लाल उसने जलते चूल्हे में स्वयं फेंका था। खुदा की शान .... देखते-ही-देखते आसमान साफ़ हो गया। बड़ी धूम-धाम से उसकी शादी हुई। उस लाल की ओर किसी का ध्यान नहीं गया और न ही उस ज़ियारत की ओर। पर नानी जंती से सुनकर कइयों ने कहा-''बच्चा लाल ज़ियारत से लाया है- पीला पुलाव बनाकर ले जा और लाल ज़ियारत पर छोड़ आ।''

पर इकबाल ने एक कान से सुना और दूसरे से निकाल दिया। उसे कहते-कहते जंती भी मर गई। वह सोच रहा था- ''यदि मैंने नानी की बात मानी होती तो आज इस लाल से मेरी पत्नी मेरी माँ का सिर न फोड़ती और न ही इतनी बदनामी होती-मगर पता नहीं मेरी पत्नी को क्या हो गया है। वह तो अम्मा की सौगंध भी नहीं उठाती थी। यदि मैं माँ से छुपा कर कोई चीज़ ले जाता तो वह तब तक उसके हलक से नीचे न उतरती, जब तक वह माँ को न खिला लेती .... वह तो अम्मा पर जान न्योछावर करती थी .... फिर अचानक यह सब कैसे हुआ .... ? ज़ियारत वाले बाबा मुझ से नाराज़ लगते हैं .... मैं यह लाल ज़ियारत से अमानत के रूप में लाया था .... तो वापिस क्यों न किया .... जबकि नानी बार-बार कहती रही .... मगर मैंने यह लाल वापिस न छोड़ा .... यदि यह लाल ज़ियारत में वापिस न रखा तो पता नहीं और कौन-सी मुसीबत आन घेरे ....।'' फिर उसने इधर-उधर देखा। बैरक में उसके इलावा कोई न था .... खिड़की से बाहर झांक कर देखा तो बाहर अंधेरा हो गया था। उसने मन-ही-मन सोचा .... ''रात का समय है किसी को कानों-कान खबर नहीं होगी .... मैं यह अमानत ज़ियारत पर छोड़ आऊं।''

उसने लाल उठा कर श्रद्धापूर्वक अपनी दायीं और बायीं आंख से लगाया और जेब से रूमाल निकालकर उसमें लपेटा और जियारत की ओर दौड़ा। ज़ियारत पर पहुंचते ही लाल ज़ियारत में फेंक कर, ज्यों ही पलटा तो चौधरी मुहम्मद ऐवान और थानेदार हथकड़ी लेकर खड़े थे। थानेदार बोला- ''मि० इकबाल मुझे अफ़सोस है कि तुम्हारी ईमानदारी की पोल आज खुल गई। मैं तुम्हें सबूत मिटाने के अपराध में गिरफ्तार करता हूँ।''

अनु० नीरू शर्मा

ooo

पहाड़ी कहानी के अंतर्गत

❑ इछुपाल

कहानीकार अपने परिवेश में से ज्वलंत समस्या को लेकर कहानी का रूप देता है। उसमें वर्णित पात्र भाषा और वातावरण उसके अपने प्रदेश का होता है जिससे कहानी में आंचलिकता झलकती है और वह कहानी कहानीकार की न रहकर आम जन की कहानी महसूस होती है। प्रस्तुत आलेख में निम्नलिखित दो पहाड़ी कहानियों का मूल्यांकन किया गया है।

1. काला आदमी काली करतूत : निसार राही
2. लाल : राजा शाहिद शुज़ात

काला आदमी काली करतूत

काला आदमी काली करतूत – यह निसार राही द्वारा लिखित कहानी है। कहानी के शीर्षक से ही पाठक का माथा ठनकने लगता है। एक तो काला आदमी दूसरा उसकी काली करतूत; निस्संदेह कोई-न-कोई ऐसा काम होगा जिसे काले आदमी ने अपने कार्य का एक हिस्सा बना लिया है। यह कैसा काम है? दूसरा कहानी के आरंभिक शब्द "टेलीफोन सुनते ही उसके माथे से ठंडे पसीने की बूंदें उसकी गोद में गिरीं।" ये शब्द किसी ऐसी घटना का संकेत दे रहे हैं, जिससे टेलीफोन सुनने वाला परेशान हो जाता है। यह एक ऐसी घटना है जिसे कहानीकार ने पाठक/श्रोता की रूची एवं कहानी में आगे क्या हुआ की भावना को जागृत करने के लिए इस्तेमाल किया है। टेलीफोन सुनने से लेकर कहानी को अंतिम शब्द "अगले दिन.. लड़की ... काला आदमी ... उसके साथी जेल में थे।" यहाँ कहानीकार पाठक के समक्ष एक प्रश्नचिन्ह खड़ा कर देता है। पाठक/श्रोता को टेलीफोन से लेकर जेल में बंद होने के बीच की कड़ी के विषय में जिज्ञासा बनी रहती है। टेलीफोन करने वाली लड़की उसे सुनसान जंगल में बुला रही थी। यह बात वह अपने पास बैठी पत्नी को भी नहीं बता सकता था।

कहानीकार कहानी को एक मोड़ देता है। पुलिस आफिसर ऊंचे किरदार का और ईमानदार है। कहानी अनुसार– "वह एक ईमानदार पुलिस आफिसर था पर उस लड़की ने अपनी बातों से उसकी सुप्त इच्छाओं को जगा दिया था। वह टेलीफोन पर बातें करने के लिए उत्सुक दिखाई देने लगा, पर बात किससे करे।"

यह एक ऐसा उफान था जो उसे टेलीफोन करने वाली लड़की से जल्द-से-जल्द मिलने के लिए उकसा रहा था। फोन पर बताए स्थान पर पहुंचकर उसे वहाँ कब्रिस्तान जैसा सन्नाटा महसूस हुआ। दूर से लाल दुपट्टा देखकर उसे अपनी मंज़िल दिखाई देने लगी। वह कल्पना में खो गया। उसे आवाज़ सुनाई दी– "आप धीरे-धीरे आएं .... देखिए किसी को साथ न

लाना .... मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही हूँ।'' यह एक षड्यंत्र था। पर प्रश्न उठता है कि पुलिस आफिसर को कौन-सा आकर्षण इस सुनसान जंगल में खींच लाया।

पर जब उसे नकाबपोशों ने घेर लिया तब वह समझ गया था कि वह किसी षड्यंत्र का शिकार हो गया है। प्रश्न यह भी उठता है कि पुलिस आफिसर ऐसी घटनाओं से अनजान कैसे था और इस साजिश का शिकार कैसे हो गया ? यहाँ कहानीकार ज़ल्दी ही घटना के ब्यौरे के लिए पुलिस आफिसर को अंधेरी गुफा में काले आदमी के सामने लाते हैं। जहाँ वह पांच लाख रुपये की मांग पुलिस आफिसर के आगे रखता है। आफिसर थाने में अपने किसी अधिकारी को चालाकी से सब कुछ समझा कर पांच लाख रुपये लाने के लिए वह उसे उस स्थान की जानकारी देता है। रातों-रात पुलिस आफिसर को आज़ाद करवा लिया जाता है। काला आदमी और उसके साथी जेल में डाल दिये जाते हैं।

निस्संदेह इस कहानी में टेलीफोन की घंटी से लेकर काले आदमी और उसके साथी जिनमें एक औरत भी शामिल है को जेल में बंद करने तक से इस बात की जिज्ञासा बनी रहती है कि काला आदमी और उसके साथी ही नहीं एक औरत भी इस गिरोह में शामिल है। यह कहानी एक छोटी-सी घटना पर आधारित है और आतंक फैला रही शक्तियों का आभास दिलाती है। कहानी का वातावरण सजीव एवं भाषा पात्रोनुकूल है।

लाल

इसे राजा शाहिद शुजात ने लिखा है। कहानी का शीर्षक ''लाल'' जिसका भाव दो बातों के प्रति आकृष्ट करता है। पहला कोई ऐसा पत्थर जिसे जौहरी ही पहचानते हैं। दूसरा ''लाल'' बच्चों को भी कहते हैं।

कहानी की शुरुआत इकबाल तफतीशी के थाने में आने से होती है। जब वह अपनी ड्यूटी से वापिस आता है तो थाने में माँ और पत्नी को हवालात में बंद देखकर वह चिंतित हो जाता है। माँ के सिर पर गहरी चोट आई है, बीवी के नाक पर चोटें हैं। और उस पर व्यंग्य कसे जाते हैं – ''तफतीशी साहब की पत्नी बड़ी बहादुर है। सास को घायल कर उसका एक सेर खून बहा दिया .... बुढ़िया को छः टांके लगे हैं....। कोई कहता बहुत तगड़ा मैच था .... हवलदारनी की तो नाक ही उड़ गई।'' कहानीकार के उपरोक्त कथन से पाठक इकबाल तफतीशी की मानसिक अवस्था का अनुमान लगा सकते हैं। साथियों के व्यंग्य उसे परेशान कर रहे थे। एक तो उसे माँ और पत्नी के झगड़े का दुख था दूसरा साथियों के व्यंग्य से परेशान था। उसे थानेदार के आगे बीबी की जमानत के लिए हाथ जोड़ने पड़ रहे थे। ऐसी हालत में वह कंबल ओढ़ कर सोने का यत्न करता है। पर नींद उसकी आंखों से उड़ गई थी। उसकी दृष्टि जब चौधरी मुहम्मद ऐवान के बक्से पर पड़ती है तो वह देखता है कि जमे खून के थक्के को कपड़े में लपेट कर रखा हुआँ था। उसकी माँ और पत्नी के केस की तफतीश मुहम्मद ऐवान कर रहा था। इकबाल से उसकी अनबन थी। माँ के खून की पोटली को देखकर वह रह न सका :

''इन्सानी जज़्बात ....? स्वयं तफ़तीशी होते हुए भी वह रह न सका। झट-पट उठकर उसने जमे खून को आंखों से लगा लिया और रोने लगा। अचानक उसमें से एक पत्थर नीचे गिरा .... जिस पर खून के धब्बे थे और कलम से उस पर कुछ लिखा हुआ था ....।'' यहाँ एक बेबसी और बेबसी में घिरे एक ऐसे व्यक्ति की बात है जो अपने ही साथियों/सहकर्मियों के आगे लाचार है।

एक ओर खून का रिश्ता दूसरी ओर अपनी पत्नी इसलिए वह दुविधा की स्थिति में था। अपने आफिसर को हाथ जोड़कर प्रार्थना करने के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं था। कपड़े में रखे हुए पत्थर के नीचे गिरने पर वह समझ गया था कि यह पत्थर कोई मामूली पत्थर नहीं अपितु ''लाल'' है। ज़ियारत से लाया गया लाल। उसे कुछ याद आ जाता है। आज की ही भांति उसे पहले भी व्यंग्य सहन करने पड़े थे। उस समय व्यंग्य कसने वाले अपने ही रिश्तेदार थे। जब उसकी शादी में लगातार बारिशें हो रही थीं और सूरज़ देवता जैसे उसके साथ रुष्ट हो गए थे। तब जंती दादी ने कहा था ज़ियारत से एक 'लाल' (पत्थर) उठा ला और उसे जलती आग में फेंक दे। उसने ऐसा ही किया और बारिश रुक गई। दादी ने कई बार उससे कहा कि लाल ज़ियारत पर छोड़ आ। पर उसने सुनी-अनसुनी कर दी। दादी तो चल बसी पर 'लाल' उनके घर में ही रहा। शायद यह घटना इसी कारण हुई। यह बात अब इकबाल को महसूस हो रही थी। दादी की बात न मानने का नतीजा उसकी आंखों के सामने था।

उसने 'लाल' उठा कर श्रद्धापूर्वक अपनी दायीं और बायीं आंख से लगाया और जेब में से रूमाल निकालकर उसमें लपेटा और ज़ियारत की ओर दौड़ा, ज़ियारत पर पहुंचते ही लाल को ज़ियारत में फेंक दिया।

पर हर बात को करने का निश्चित समय होता है और वह समय गंवा बैठा था। वह ज्यों ही पलटा तो चौधरी मुहम्मद ऐवान और थानेदार हथकड़ी लेकर खड़े थे।''

थानेदार बोला, ''मिस्टर इकबाल मुझे अफसोस है कि तुम्हारी ईमानदारी की पोल आज खुल गई। मैं तुम्हें सबूत मिटाने के अपराध में गिरफ्तार करता हूँ।''

यूं उपरोक्त कहानी में इकबाल तफतीशी मायूसी और लाचारी की अवस्था में अपने ही साथियों के हाथों गिरफ्तार हो जाता है। इस थाने में उसकी इज्जत, मान, सबसे ज़्यादा था क्योंकि वह एक ईमानदार व्यक्ति था पर अब वह संकट की स्थिति से घिरा था।

इन कहानियों के अध्ययन उपरांत कह सकते हैं कि पहाड़ी कहानियां अपने धरातल के साथ घुलमिल के अपनी मिट्टी की सुगंध बिखेर रही हैं। कहानियों की भाषा पात्रोनुकूल है और कहानीकार ने यथा स्थान मुहावरों का प्रयोग भी किया है।

अपने प्रदेश की छोटी-छोटी समस्याओं में से गुज़रते हुए पात्र एक विशेष महत्त्व रखते हैं।

अनु० नीरू शर्मा

०००

लद्दाखी कहानी

बुरी आदत

❐ मूल० युपस्तन पलदन

❐ अनु० डॉ० प्रेम सिंह जीना

स्कितपा नोरबू का विवाह पांच वर्ष पूर्व स्तनजिन डोलमा से हुआ। अभी तक बच्चा न होने के कारण परिवार में सभी चिन्तित थे। नोरबू के माता-पिता ने पोते की चाहत के लिए लद्दाख के धर्म-गुरुओं, इष्ट देव-देवियों से प्रार्थना की जिन्होंने जैसा कहा वैसा ही किया। सभी इष्ट देव-देवियों की पूजा की। अपने लड़के नोरबू को स्तनजिन डोलमा के साथ लद्दाख के सभी प्रमुख बौद्ध मठों में पुत्र-प्राप्ति हेतु पूजा अर्चना के लिए भेजा। कुछ समय बाद नोरबू के पिता ने अपने घर के 'जो' और पुश्तैनी वृक्षों की दौलत को ठोक थापा के हाथों बेचकर प्राप्त हुए धन का नोरबू को देकर कहा-'तुम दोनों इस रुपये से भारत के प्रमुख बौद्ध मन्दिरों में जाकर पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना करो। आशा है भगवान तुम्हारी प्रार्थना सुनेगा।'

नोरबू और स्तनजिन डोलमा बौद्ध मन्दिरों के दर्शन करने भारत भ्रमण के लिए चले गये। लौटने पर डोलमा गर्भवती हो गई। यह किसकी कृपा हो सकती है। लद्दाख के बौद्ध गुरुओं, इष्ट देव-देवियों, भारत में स्थित बौद्ध मन्दिरों की अथवा गर्भधारण का समय आ जाने से। नौ मास बाद नोरबू के घर पुत्र हुआ। दादा-दादी ने पोते को बारी-बारी से अपने आंचल से लगाया तथा बार-बार पुचकारते हुए कहने लगे-पोते! अब हम मर भी जायेंगे तो हमें मरने का दुःख नहीं होगा।

एक माह बाद 'दागंग'[1] का आयोजन बड़ी धूम-धाम के साथ किया गया। सभी नाते-रिश्तेदारों को आमंत्रित किया। दावत लगभग तीन दिन तक चली। अतिथियों के लिए सभी प्रकार के लद्दाखी पकवानों के साथ छंग एवं रम (शराब) की भी समुचित व्यवस्था की गयी। मांसाहारियों के लिए दस भेड़-बकरियां काटी गयीं। दावत में सम्मलित लोग यही कह रहे थे कि-"स्कितपा के दागंग में मज़ा आ गया। आज की जैसी धूम-धांम हमने पहले कभी नहीं देखी।"

धीरे-धीरे नशे में घुत्त सभी अतिथि गाते हुए अपने-अपने घरों को चले गये।

बच्चे का पालन-पोषण बड़े प्यार से किया जाने लगा। उसे अच्छे कपड़े और खाना खिलाया जाता। मां समयानुसार दूध पिलाती, दादी लोरियाँ गा-गाकर उसे सुलाती। बच्चे को रोगमुक्त रखने के लिए उसके हाथों तथा गले में 'शुआ'[2] डाला गया। इस खुशी के माहौल

---

1. *दागंग-बच्चे के जन्म के एक माह बाद मनाया गया वाला एक उत्सव।*
2. *शुआ- रक्षक धागा*

में पता ही नहीं चला कि कब एक वर्ष बीत गया। मां-बाप ने लद्दाखी परम्परा के विपरीत 'बर्थ-डे' मनाने की योजना बनाई। सभी नाते-रिश्तेदारों, जान-पहचान के लोगों के बच्चों को आमंत्रित किया गया। 'बर्थ-डे केक' के ऊपर एक मोमबत्ती जलायी गयी। 'केक' काटकर 'हैपी बर्थ डे टू यू' कहकर बच्चे का 'बर्थ डे' मनाया गया। आधुनिकता के दौर में नई सभ्यता के अनुरूप बच्चे का नाम 'जिमि' रखा गया। माँ को 'मम्मी' पिता को 'डैडी' कहकर पुकारा जाने लगा। माँ-बाप बच्चे से पलास्टिक की बंदूक से निशाना साधने और दुश्मन को मारने का खेल खेलने लगे। बच्चा भी खिलौने की बंदूक के साथ किलकारियों लगाकर खेलता। लोग कहते-'बच्चा बहुत तेज़ है।' प्रतिदिन कभी मां की गोद में, कभी पिता की पीठ पर बैठकर बंदूक चलाता 'डोम.....डोम....' कहकर सभी को खुश रखता। धीरे-धीरे जिमि बड़ा हो गया। उसकी बन्दूक से खेलने की आदत नहीं गयी। वह पशु-पक्षियों और आने-जाने वाले लोगों पर बन्दूक से निशाना लगाता, प्लास्टिक की गोली के साथ जब 'डम्म' की आवाज़ आती तो खुश होता। इस तरह उसके मन से दया और करुणा की भावना हट गयी। वह निर्दयी, हिंसक और हठी हो गया। छोटी-छोटी बातों पर गुस्सा करने लगता। वह माता-पिता की परवाह नहीं करता था। हर समय खेलता रहता, लोग उसे 'शरारती बच्चा' पुकारते। माता-पिता भी उसकी शरारतों से तंग आ गये। माता-पिता ने उसे विद्यालय में भेज दिया।

विद्यालय में भी वह दूसरे बच्चों के साथ लड़ाई-झगड़ा करता। सभी अध्यापक 'जिमि' के झगड़ालूपन से परेशान हो गए। उनकी जुबान में स्वतः यह कहावत आती। 'ठुगु तंग खिगु ला चुग लहब' अर्थात् इन्सान और कुत्ते के बच्चे में अच्छी आदतें बचपन से ही डालनी चाहिए। 'जिमि' की आदतें बचपन से ही उसके माँ-बाप ने बिगाड़ दी थीं। पढ़ाई के प्रति उसकी रुचि नहीं रही। पड़ोसी का बच्चा स्पलबर 'जिमि' के साथ ही विद्यालय गया था। आज वह आठवीं कक्षा में है।

'जिमि' चकोर, कबूतर और मछलियों का शिकार करने लगा। वह हिंसक तथा पापी हो गया। किसी तरह रो-धोकर उसने आठवीं कक्षा पास की। माता-पिता के लाख मनाने पर भी उसने अपनी बुरी आदतें नहीं छोड़ी। वह शिकारियों के साथ पहाड़ियों पर जाता, जंगली जानवरों का शिकार करता। उसे न माता-पिता की इज्ज़त का डर था न समाज का। वह बुरे कार्यों में लिप्त होता गया। उसकी इन आदतों से माता-पिता दुःखी रहने लगे। पर अब बहुत देर हो गयी थी। 'पौधे को यदि प्रारम्भ से सीधा किया जाए तो वह सीधा बढ़ता है।' आखिर नौबत यहाँ तक पहुँच गयी कि आस-पास के लोग 'जिमि' के माता-पिता को बुरा-भला कहने लगे। 'जिमि' अपनी मर्जी का मालिक बन गया। उसे न कपड़े की चिन्ता थी न खाने की। सारा दिन इधर-उधर घूमता। छंग पीता एक दिन तो उसने अपने ही घर में चोरी कर डाली। दादा के बक्से का ताला तोड़ पांच हजार रुपए चुरा लिये। इसके बाद माता-पिता ने उसे घर

से निकाल दिया। वह सारा दिन तरह इधर-उधर घूमता रहता। उसकी उम्र के लड़कों को सरकारी नौकरियाँ भी मिल गयी। वे अपने पैरों पर खड़े हो गये। जिमि बेकार अकेला घूमता रहता। उसका घर से भी नाता टूट चुका था। एक दिन मौका पाकर उसने अपने कुछ साथियों के साथ मिलकर पड़ोसी की दुकान पर चोरी की। दुकानदार ने पुलिस रिपोर्ट दर्ज करा दी। 'जिमि' और उसके साथी पकड़े गये। पुलिस ने उनकी खूब पिटाई की और जेल में बन्द कर दिया। 'जिमि' के माता-पिता से भी पुलिस ने पूछताछ की और उन्हें जुर्माना लगाया। 'जिमि' की इन हरकतों के कारण दादा जी भी बहुत दुःखी थे। जब 'जिमि' जेल चला गया दादा जी को इसका गहरा सदमा लगा। इसे वह सह नहीं सके और उनका देहान्त हो गया।

छः माह बाद जिमि को जेल से रिहा किया गया। पुलिस ने जिमि को रिहा करने से पूर्व माता-पिता से लिखवाया-''यदि जिमि ने दुबारा ऐसी हरकत की तो उसके जिम्मेवार हम रहेंगे।'' एक गवाह के भी हस्ताक्षर करवाये गये। जिमि के माता-पिता ने उसके लिए नौकरी हेतु बहुत दौड़-धूप की। कहीं नौकरी नहीं मिली। अन्त में उसको पुलिस या सेना में भर्ती करना चाहा, पर वहाँ भी उन्हें सफलता नहीं मिली। उन्होंने उसका विवाह करना चाहा। लड़की ढूंढ़ने कई जगह गये, परन्तु असफल रहे। 'जिमि' अपने माता-पिता और सभी संबंधियों की नज़र से गिर चुका था। उसे देखकर लोग मज़ाक उड़ाते हुए कहते 'स्कितपे चोर न काम का न काज का।' जब कहीं चोरी होती सबसे पहले पुलिस जिमि को पकड़कर ले जाती और उससे पूछताछ करती। एक दिन पुलिस से तंग आकर जिमि ने आत्महत्या कर ली। जिमि को मरा देख दादी ने शोर मचाया। सभी पड़ोसी इकट्ठा हो गये। पुलिस ने घर वालों से पूछताछ की। माँ-बाप दुःखी होकर बोले- ''देखो जब जिमि जिन्दा था तब भी हमें सुख से नहीं जीने दिया अब मरकर भी..........?''

ooo

विशेष

लद्दाख में कविता तो लिखी जाती है पर कहानी लेखन अभी विकसित नहीं हुआ है। हमारा प्रयास था कि लद्दाख में जैसी भी कहानी लिखी जा रही है उसे प्रकाशित करें ताकि इससे वहाँ के कहानीकारों को प्रोत्साहन मिले।